ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला ग्रन्थांक–१३३

सम्पादक एवं नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन

Lokodaya Series Title No 133

ADHUNIK
HINDI HASYA VYANGYA
(Humour & Satire)
Edited by
KESHAVCHANDRA VERMA

Published by
BHARATIYA JNANPITH

Second Edition 1965
Price Rs 4 00

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ
प्रधान कार्यालय
९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५
विक्रय केन्द्र
३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली ६
द्वितीय संस्करण १९६५
मूल्य ४ ००

सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी-५

यह सकलन

आदरणीय नानाजी
( यानी 'बच्चन' जी )
को,

आदरणीय मामाजी
( यानी मामा वरेरकर )
को,

सहज बन्धु
( यानी विश्वम्भर 'मानव' )
को

सौंपना चाहता हूँ ।

# एक पक्षधर वक्तव्य

इस युगमे लेखक होना ही पूर्व जन्मके कुकर्मोका फल है और फिर उसमे हास्य-व्यंग्यका लेखक होना तो पूर्वजन्मके कुकर्मोंके साथ निकृष्ट योनिका भी स्पष्ट संकेत देता है। इस देशकी विशिष्ट परम्परा यह रही है कि जो भी बात कहनी हो उसे दाढ़ी लगाकर, मुँह लटकाकर, इस सजधज-के साथ कहा जाये कि श्रोता डरके मारे ही सब-कुछ सुन ले। जिन लेखकों-ने अपना कथ्य प्रस्तुत करनेके लिए हास्य या व्यंग्यका माध्यम चुना उन्हें स्पष्ट ही अपनी इस रुचिका (यानी 'मेक-अप' करके न उतारनेका) पूरा मूल्य चुकाना पड़ा। अपने पाठकोंमे हास्य-व्यंग्यका लेखक भले ही सर्वप्रिय रहा हो लेकिन साहित्यके क्षेत्रमें उसे केवल ऐसा हलका माध्यम अपनानेके कारण सदा सौतेलेकी तरह 'ट्रीट' किया गया है। एक तो ईमानदार-आलो-चक यूँ ही सहाराका नखलिस्तान बन गया है पर जो है भी वह सदासे 'दाढ़ीदार चेहरों'का ही वक्तव्य सुननेका आदी रहा है। उसने कभी यह परखनेकी आवश्यकता नहीं समझी कि आजका हास्य-व्यंग्य एक मनोरंजना-त्मक शैलीमात्र बनकर रह गया है अथवा उसके माध्यमसे जीवनके किसी विशिष्ट सन्दर्भको पकड़नेका यत्न किया जा रहा है। मानव व्यापारके व्यापक सन्दर्भमें, जहाँ 'कथनी' और 'करनी'का भेद सहज ही व्यंग्यको जन्म देता रहता है, इस माध्यमकी जितनी नयी सम्भावनाएँ विकसित हुई हैं, उसका आकलन साहित्यिक धर्मके अन्तर्गत अभीतक नही आ सका है। जिसने इस सम्बन्धमें कुछ भी लिखा है वह एहसान जताते हुए लिखा है तथा हास्य-लेखकोंसे 'आजन्म ऋणी'का पट्टा लिखवानेका परोक्ष संकेत भी किया है। कुछ 'आचार्यों'ने इस सम्बन्धमें अपने विचार देते हुए इन लेखकोंके मनमें एक हीन-भावनाको जन्म देनेकी भी चेष्टा की है। हास्य व्यंग्यके लेखकोंके प्रति इस प्रकारका दृष्टिकोण अपने देश तक ही सीमित नही था। अन्य

युरॅपीय देशोंमें भी लगभग इसी प्रकारकी समानान्तर स्थितियाँ रही हैं किन्तु वहाँकी जटिल विषमताओंने 'दाढ़ीदार-चेहरे'के बहुप्रचारित भ्रमका शीघ्र ही निराकरण कर दिया। हास्य-व्यंग्यकी उत्कृष्टतम रचनाओंके अनेकानेक ख्यातिप्राप्त संकलन इस बातके प्रमाण हैं कि वे जीवनकी कुरूपताओंको पहचान रहे हैं और उन्हें हँसकर सँवारनेके लिए कृतसंकल्प हैं।

'हास्य'के साथ एक कठिनाई रही है। दार्शनिकोंसे लेकर चिकित्सकों तकने इस विषयपर अपने मत प्रकट किये हैं और कुल मिलाकर केवल एक महान् 'उलझाव' ( कन्फ्यूज़न ) पैदा करनेके अतिरिक्त कुछ नहीं कर सके हैं। अरस्तू, बर्गसाँ, फ्रायड, लूकास—जिसे देखिए उसे ही हास्यके बारेमें कुछ-न-कुछ कहना है। इस सम्बन्धमें मानवके शरीर-विज्ञानसे लेकर उसके मस्तिष्क-विज्ञानकी समस्त 'शल्य-क्रियाएँ' हो चुकी हैं, किन्तु जहाँपर हास्य ( या व्यंग्य भी ) मानवीय जीवनके जटिल जीवन-सन्दर्भको नया अर्थबोध देता है, उस प्रक्रियाको साहित्यिक परिप्रेक्ष्यमें रखकर देखनेका यत्न विशेष नहीं हो पाया। हास्य हमारे संस्कृत व्यक्तित्वकी सहजता, ऋजुता एवं पवित्रताका द्योतक रहा है जो समस्त कल्मषको अपनी 'सुरसरिधारा'में नहलाता हुआ, 'सब कहँ हित' करता हुआ प्रवहमान होता रहता है। विषमताओं, अपूर्णताओं, दुर्बलताओं और अनकही किन्तु स्वीकृत रूढ़ि परम्पराओंके विरुद्ध अपने समस्त आक्रोशको जो मुसकानोंकी सीमाओंसे बाँधकर नयी मानवताके स्वागतके लिए चेतना जाग्रत करते हैं, उन्होंने ही हास्यके शुभ्रतम रूपको पहचाना है। अतः हास्यका शुद्ध रूप जाननेके लिए उन्हें पढ़ना ही श्रेयस्कर होगा। 'हास्य' और 'व्यंग्य'का शास्त्रीय विवेचन करना न तो यहाँ अभीप्ट ही है और न उसकी आवश्यकता ही।

यह संकलन हिन्दी हास्य-व्यंग्यका प्रतिनिधि संकलन होनेका दावा नहीं कर सकता। पहले तो इसमें बहुत-से ऐसे हास्य-लेखकोंकी रचनाएँ छूट गयी

है जो हो सकता है कि हिन्दीके ऐतिहासिक हास्य-लेखक हो किन्तु जिनकी रचनाएँ न मुझे 'हास्य'के नामपर आकृष्ट कर सकी है और न 'आधुनिकता'-के नामपर ही। दूसरे, इसमे ऐसे बहुत-से लेखक है जिनके नाम 'हास्य-व्यग्य लेखकोकी स्वीकृत सूची'में है ही नही। 'वर्गभेद'के नामपर उन्हे 'सीरियस-रस'का लेखक माना जाता रहा है। इन लेखकोने वस्तुत जहाँ इस माध्यमको पकडा है वहाँ उसकी नयी शक्ति विकसित हुई-सी लगती है। अत मैने इस सकलनमें उन्हें रखना चाहा है। तीसरे ऐसे भी है जिनकी कुछ चीजें प्रकाशमे आयी थी किन्तु किन्ही कारणोसे जनमते ही वे विस्मृतिके गर्भमें समा गयी। उन्हें फिरसे सामने लानेका मेरा आग्रह स्पष्ट है। सकलित सभी रचनाओमें वे तत्त्व सहज ही मिल सकेंगे जो आजकी 'आधुनिकता'की उपलब्धि है। इसीलिए 'आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यग्य'में उनके सकलनकी सार्थकता है। किन्तु फिर भी यह सग्रह प्रतिनिधित्वका दावा नही करता। यदि करता भी है तो केवल मेरी 'सकीर्ण-अभिरुचि'का।

सात-आठ वर्ष पूर्व सकलन करनेका काम प्रारम्भ किया था केवल 'आनन्द'के लिए। विदेशी सकलनोको देखकर मोह हुआ कि हिन्दीमें भी इस प्रकारका एक सग्रह हो। अच्छा तो वह होता कि यह काम किसी दूसरे 'भलेमानुस'ने किया होता कि मैं यहाँ तो अपनी 'पक्षधरता'से मुक्ति पा जाता। पर इस युगमें जहाँ सबके पास केवल अपनी ही 'ढपलियाँ' है जिन-पर केवल उन्हीका राग अलापा जा सकता है वहाँ अपनी 'ढपली'को भी 'टपली'की सज्ञा दिलानेके लिए यदि शोर मचाना ही पडे तो मेरा गला सबके आगे रहेगा। मै उन समस्त लेखकोका बहुत आभारी हूँ जिन्होने इस 'सकलनमे अपनी रचनाएँ देकर एक टोन' बनानमें मेरी सहायता की है।

१ जनवरी १९६१
प्रयाग

— केशवचन्द्र वर्मा

# अनुक्रम

आधुनिक
हिन्दी हास्य-व्यंग्य

• • •

# माई लॉर्ड

माई लॉर्ड ! लडकपनमे इस बूढे भगडको बुलबुलका बडा चाव था। गांवमे कितने ही शौकीन बुलबुलबाज़ थे। वह बुलबुले पकटते थे, पालते थे और लडाते थे। बालक शिवशम्भु शर्मा बुलबुलें लडानेका चाव नही रखता था। केवल एक बुलबुलको हाथपर बिठाकर ही प्रसन्न होना चाहता था। पर ब्राह्मण कुमारको बुलबुल कैसे मिले ? पिताको यह भय था कि बालकको बुलबुल दी तो वह मार देगा, हत्या होगी। अथवा उसके हाथसे बिल्ली छीन लेगी तो पाप होगा। बहुत अनुरोधसे यदि पिताने किसी मित्रकी बुलबुल किसी दिन ला भी दी तो वह एक घण्टेसे अधिक नही रहने पाती थी। वह भी पिताकी निगरानीमे !

सरायके भटियारे बुलबुलें पकडा करते थे। गांवके लडके उनसे दो-दो तीन तीन पैसेमे खरीद लाते थे। पर बालक शिवशम्भु तो ऐसा नही कर सकता था। पिताकी आज्ञा बिना वह बुलबुल कैसे लावे और कहां रखे ? उधर मनमे अपार इच्छा थी कि बुलबुल जरूर हाथपर हो। इसीसे उडती बुलबुलको देखकर जी फडक उडता था। बुलबुलकी बोली सुनकर आनन्दमे हृदय नृत्य करने लगता था। कैसी-कैसी कल्पनाएँ हृदयमें उठती थी। उन सब बातोका अनुभव दूसरोको क्या होगा, आज यह वही शिवशम्भु है, स्वय इसीको उस बालकालके अनिर्वचनीय चाव और आनन्दका अनुभव नही हो सकता।

बुलबुल पकडनेकी नाना प्रकारकी कल्पनाएँ मन-ही-मनमें करता हुआ बालक शिवशम्भु सो गया। उसने देखा कि ससार बुलबुलमय है। सारे

गाँवमें वुलवुले उड रही है। अपने घरके सामने खेलनेका जो मैदान है, उसमे सैकडो वुलवुलें उडती फिरती है। फिर वह सब ऊँची नही उडता हैं। उनके वैठनेके अड्डे भी नीचे-नीचे है। वह कभी उडकर इधर जाती है और कभी उधर, कभी यहाँ वैठती है और कभी वहाँ, कभी स्वय उडकर वालक शिवशम्भुके हाथकी उँगलियोपर आ वैठती है। शिवशम्भु आनन्दमें मस्त होकर इधर-उधर दौड रहा है। उसके दो तीन साथी भी उसी प्रकार वुलवुले पकडते और छोडते इधर-उधर कूदते फिरते हैं।

आज शिवशम्भुकी मनोवाछा पूर्ण हुई। आज उसे वुलवुलोकी कमी नही है। आज उसके खेलनेका मैदान वुलवुलिस्तान वन रहा है। आज शिवशम्भु वुलवुलोका राजा ही नही, महाराजा है। आनन्दका सिलसिला यही नही टूट गया। शिवशम्भुने देखा कि सामने एक सुन्दर वाग है। वहीसे सव वुलवुलें उडकर आती है। वालक कूदता हुआ दौडकर उसमे पहुँचा। देखा, सोनेके पेड-पत्ते और सोने ही के नाना रगके फूल है। उनपर सोनेकी वुलवुलें वैठी गाती हैं। और उडती-फिरती है। वही एक सोनेका महल है। उसपर सैकडो सुनहरी कलश हैं। उनपर भी वुलवुलें वैठी है। वालक दो-तीन साथियोसहित महलपर चढ गया। उस समय वह सोनेका वगीचा सोनेका महल और वुलवुलोसहित एक वार उडा। सब कुछ आनन्दमे उडता था। वालक शिवशम्भु भी दूसरे वालकोसहित उड रहा था। पर यह आमोद वहुत देरतक सुखदायी न हुआ। वुलवुलोका खयाल अव वालकके मस्तिष्कसे हटने लगा। उसने सोचा—है! मै कहा उडा जाता हूँ? माता-पिता कहाँ? मेरा घर कहाँ? इस विचारके आते ही सुख-स्वप्न भग हुआ। वालक कुलवुलाकर उठ वैठा। देखा और कुछ नही, अपना ही घर और अपनी ही चारपाई है। मनोराज्य समाप्त हो गया!

आपने माई लॉर्ड! जवसे भारतवर्षमें पधारे है, वुलवुलोका स्वप्न ही देखा है या सचमुच कोई करनेके योग्य काम भी किया है? खाली अपना

ख़याल ही पूरा किया है या यहांकी प्रजाके लिए भी कुछ कर्त्तव्य पालन किया ? एक बार यह बातें बड़ी धीरतासे मनमें विचारिए। आपको भारतमे स्थितिकी अवधिके पांच वर्ष पूरे हो गये। अब यदि आप कुछ दिन रहेंगे तो सूदमे, मूलधन समाप्त हो चुका। हिसाब कीजिए, नुमायशी कामोंके सिवा कामकी बात आप कौन-सी कर चले है और भड़कबाज़ीके सिवा ड्यूटी और कर्त्तव्यकी ओर आपका इस देशमे आकर कब ध्यान रहा है ? इस बारके बजटकी वक्तृता ही आपके कर्त्तव्यकी अन्तिम वक्तृता थी जरा उसे पढ़ तो जाइए। फिर उसमे आपकी पांच सालकी किस अच्छी करतूतका वर्णन है ? आप बारम्बार अपने दो अति तुमतराकसे भरे कामोका वर्णन करते है। एक विक्टोरिया-मिमोरियल हॉल और दूसरा दिल्ली-दरबार। पर ज़रा विचारिए तो यह दोनो काम "शो" हुए या "ड्यूटी" ? विक्टोरिया-मिमोरियल हॉल चन्द पेट-भरे अमीरोके एक-दो बार देख आनेकी चीज़ होगी। उससे दरिद्रोका कुछ दु:ख घट जावेगा या भारतीय प्रजाकी कुछ दशा उन्नत हो जावेगी, ऐसा तो आप भी न समझते होगे।

अब दरबारकी बात सुनिए कि क्या था। आपके ख़यालसे वह बहुत बड़ी चीज़ थी। पर भारतवासियोकी दृष्टिमें वह बुलबुलोंके स्वप्नसे बढ़कर कुछ न था। जहां-जहांसे वह जुलूसके हाथी आये, वहीं-वहीं सब लौट गये। जिस हाथीपर आप सुनहरी झूलें और सोनेका हौदा लगवाकर छत्र-धारणपूर्वक सवार हुए थे, वह अपने कीमती असबाबसहित जिसका था, उसके पास चला गया। आप भी जानते थे कि वह आपका नही और दर्शक भी जानते थे कि आपका नहीं। दरबारमे जिस सुनहरी सिंहासनपर विराजमान होकर आपने भारतके सब राजा-महाराजाओंकी सलामी ली थी, वह भी वहींतक था और आप स्वयं भली-भांति जानते है कि वह आपका न था। वह भी जहांसे आया था, वहीं चला गया। यह सब चीज़ें खाली नुमायशी थीं। भारतवर्पमें वह पहले ही से मौजूद थीं। क्या इन सबसे आपका कुछ गुण प्रकट हुआ ? लोग विक्रमको याद करते है या उसके

सिंहासनको, अकबरको या उसके तख्तको ? शाहजहाँकी इज्जत उसके गुणोसे थी या तख्तेताऊससे ? आप जैसे बुद्धिमान् पुरुषके लिए यह सब बाते विचारनेकी है।

चीज वह बननी चाहिए, जिसका कुछ देर कयाम हो। माता-पिताकी याद आते ही बालक शिवशम्भुका सुख-स्वप्न भग हो गया। दरबार समाप्त होते ही वह दरबार-भवन, वह एम्पीथियेटर तोडकर रख देनेकी वस्तु हो गया। उधर बनाना, इधर उखाडना पडा। नुमायशी चीजोका यही परिणाम है। उसका तितलियोका-सा जीवन होता है। माई लॉर्ड! आपने कछाडके चायवाले साहबोकी दावत खाकर कहा था कि यह लोग यहां नित्य है और हमलोग कुछ दिनके लिए। आपके वह 'कुछ दिन' बीत गये। अवधि पूरी हो गयी। अब यदि कुछ दिन और मिलें, तो वह किसी पुराने पुण्यके बलसे समझिए। उन्हीकी आशापर शिवशम्भु शर्मा यह चिट्ठा आपके नाम भेज रहा है, जिससे इन माँगे दिनोमे तो एक बार आपको अपने कर्त्तव्यका खयाल हो।

जिस पदपर आप आरूढ हुए, वह आपका मौरूसी नही। नदी-नाव सयोगकी भाँति है। आगे भी कुछ आशा नही कि इस बार छोडनेके बाद आपका इससे कुछ सम्बन्ध रहे। किन्तु जितने दिन आपके हाथमे शक्ति है, उतने दिन कुछ करनेकी शक्ति भी है। जो आपने दिल्ली आदि-में कर दिखाया, उसमें आपका कुछ भी न था, पर वह सब कर दिखाने-की शक्ति आपमें थी। उसी प्रकार जानेसे पहले, इस देशके लिए कोई असली काम कर जानेकी शक्ति आपमे है। इस देशको प्रजाके हृदयमे कोई स्मृति-मन्दिर बना जानेकी शक्ति आपमें है। पर यह सब तब हो सकता है कि वैसी स्मृतिकी कुछ कदर आपके हृदयमें भी हो। स्मरण रहे, धातुकी मूर्तियोके स्मृति-चिह्नसे एक दिन किलेका मैदान भर जायगा। महारानीका स्मृति-मन्दिर मैदानकी हवा रोकता था या न रोकता था, पर दूसरोकी मूर्तियाँ इतनी हो जावेगी कि पचास-पचास हाथपर हवाको टकराकर

चलना पड़ेगा। जिस देशमें लॉर्ड लैंसडौनकी मूर्ति बन सकती है, उसमें और किस-किसकी मूर्ति नहीं बन सकती? माई लॉर्ड! क्या आप भी चाहते हैं कि उसके आस-पास आपकी भी एक वैसी ही मूर्ति खड़ी हो?

यह मूर्तियां किस प्रकारसे स्मृति-चिह्न हैं? इस दरिद्र देशके बहुत-से धनोंकी एक ढेरी है, जो किसी काम नहीं आ सकती। एक बार जाकर देखनेसे ही विदित होता है कि वह कुछ विशेष-पक्षियोंके कुछ देर विश्राम लेनेके अड्डेसे बढ़कर कुछ नहीं है। माई लॉर्ड! आपकी मूर्तिकी वहां क्या शोभा होगी? आइए, मूर्तियां दिखावें। वह देखिए, एक मूर्ति है, जो किलेके मैदानमें नहीं है, पर भारतवासियोंके हृदयमें बनी हुई है। पहचानिए, इस वीर पुरुषने मैदानकी मूर्तिसे इस देशके करोड़ों गरीबोंके हृदयमें मूर्ति बनवाना अच्छा समझा। वह लॉर्ड रिपनकी मूर्ति है और देखिए, एक स्मृति-मन्दिर यह आपके पचास लाखके संगमरमरवालेसे अधिक मजबूत और सैकड़ों गुना कीमती है। यह स्वर्गीया विक्टोरिया महारानीका सन् १८५८ ई० का घोषणा-पत्र है। आपकी यादगार भी यही बन सकती है, यदि इन दो यादगारोंकी आपके जीमें कुछ इज्जत हो।

मतलब समाप्त हो गया। जो लिखना था, वह लिखा गया। अब खुलासा बात यह है कि एक बार शो और ड्यूटीका मुकाबला कीजिए। शोको शो ही समझिए। शो ड्यूटी नहीं है। माई लॉर्ड! आपके दिल्ली-दरबारकी याद कुछ दिन बाद उतनी ही रह जावेगी, जितनी शिवशम्भु शर्माके बालकपनके उस सुख-स्वप्नकी है।

•

## वकील

यह जानवर ब्रिटिश राज्यके साथ ही-साथ हिन्दुस्तानमे आया है। पुराने आर्योंके समय इनका कहीं पता भी नही लगता। मुसलमानोंकी सल्तनतमे वकील वही कहलाते थे जो छोटे राजा या रईसोंकी ओरसे किसी चक्रवर्ती बडे राजाके दरबारमें रहा करते थे। पर किसी न्यायकर्ताके सामने वादी प्रतिवादीकी ओरसे अबके समान वादानुवादमे उस वकीलको कोई सरोकार न था। वास्तवमे अँगरेजी शासनने इस पेशेको बडी उन्नति दिया। सच पूछो तो यह एक परम स्वच्छन्द व्यवसाय है और बडी बुद्धिका काम है। कोई ऐसा विषय नही है जिसको कभी-न-कभी वकीलको अच्छी तरह जान लेना नही पडता। कभी इसे राजकीय विषयोंमे घुमना पडता है कभीको वाणिज्य और तिजारतको ऐसा जानना पडता है जैसा किसीने जन्म-भर वही काम किया हो। कभी जमीदारीका रस बिना अगुल-भर जमीन अपने अधिकारमें रखनेके भो उसको चखना या अनुभव करना पडता है। इस पेशेकी आमदनीका कुछ ठिकाना नही है, जिसकी दूकान चल गयी लक्ष्मी उसके सामने हाथ जोडे खडी रहती है। जिसकी न चली उसको रोज रोजा रखना पडता है, रोजी उसको दुर्लभ हो जाती है। जिसका काम चलता है नही भी चलता उसका वह हाल रहता है जैसा जुआरीका। दांव पडता गया, नया गहनापाती खाना कपडा सभी कुछ बढियासे बढिया तैयार हो गया। न पडा तो पेटमें चूहे उछला किये। किसीको मुंह दिखानेमें शरम होती है। बहुतोंकी समझ है कि इस काममें पुलिसकी नाई झूठ जरूर बोलना पडता है। पर यह किसी तरह सच नही

है। हमने अच्छे अच्छे तजरिबेकार वकीलोसे सुना है कि वकीलोको विजय नामवरी और प्रतिष्ठा सत्य ही से होती है। बहुत लोग कहते है इस पेशेमे मेहनत नही करना पडता है, यह भी मिथ्या है। मन और मस्तिष्क दोनोको बडा परिश्रम पडता है। दूसरेका दुःख अपना समझ उसको दूर करनेके लिए भिड जाना पडता है। मसल है एक गडरियेके ऊपर भेड चुरानेका अभियोग लगाया गया। गडरियेके वकील साहबने जजके सामने वहस कर उसे छुडा लिया। गडरिया और उसका मित्र दोनो घर लौटे आते थे। मित्रने पूछा—भाई, सच बतलाओ तुमने भेड चुराया था या नही? उसने कहा—भाई, चुराया तो था पर जबसे वकील साहबकी बात सुनी तबसे मनमे सन्देह है कि हमने सचमुच चुराया था या नही।

वैद्योने निश्चय किया है, वीर्यके क्षयसे भी वाणीका क्षय अधिक निर्बल करता है। सो वकालतके पेशेमे कितना बकना पडता है इसकी कोई हद नही है, तब वकीलोके परिश्रमका क्या कहना? सच तो यो है कि जिन लोगोने अदालतकी सैर की है वे जान सकते है कि वकील कितनी मेहनत करते हैं और कितना मुअक्किलका उपकार अदालतमें इनसे होता है। जब दो वकील तीतर-बटेर-से लडते है तब जो सुननेवाले होते है वे प्राय दो तरहके होते है, या तो वादीसे उनका सम्बन्ध रहता है या निरे तमाशबीन होते है जो केवल दिल-बहलाव और सैरके लिए अदालत गये थे। जो दो फ़रीकमे किसी एकके सम्बन्धी होते हैं वह अपने वकीलकी तक़रीर सुन प्रसन्न हो जाते है। उसके प्रत्येक शब्दको वेदवाक्य मानते है और प्रतिवादीके वकीलकी तकरीर बडे क्रोधसे सुनते है, यहाँ-तक कि बस चलें तो मार बैठे। जो सैर-सपाटेके लिए गये है वे अचम्भेमे आ जाते है कि दोनो देखनेमे प्रतिष्ठित है पर सच्चा दोमे कौन है। फौज-दारी हो चाहे दीवानी हो, अपने मुअक्किलकी बात पुष्ट कर देना और सत्यको चमका देना वकील ही का काम है। इग्लैण्डमें एक राजवधूने राज-कुमारपर अभियोग किया। राजवधूके वकीलने अपनी वक्तृतामे कहा, हम

लोगोका काम शुद्ध और पवित्र है, हमको केवल अपने मुअक्किलोकी वात सिद्ध करना है। यद्यपि मैं इस समय इस देशके राजकुमारपर अभिक्षेप कर रहा हूं, इसका मुझे कुछ चित्तमें सकोच नही है। जिसका मैं वकील हूं उसके फायदेपर मेरी दृष्टि है चाहे देश विरुद्ध हो जाय तो मैं उसे कुछ खयाल न करूंगा।

सच तो यो है देशके उद्धारक इस समय वे वकील ही देखे जाते है। वडे-वडे राजकीय विषयोके समझने और उसपर तर्क-वितर्क, ऊहा-पोह करनेवाले यही तो देखे जाते है। वैसे ही इनका स्वच्छन्द व्यवसाय भी है कि औरोके समान ये गवर्नमेण्ट या कर्मचारियोके बाधित नही हो सकते। धैर्य, हिम्मत, साहस ये तीन वातें इस पेशेकी जान हैं। अच्छा लायक वकील चलता-पुरजा वही होगा जिसमे ये तीनो वाते होगी। गवर्नमेण्ट कानून हिन्दोको त्रिन्दी निकालते हुए मुल्ककी तरक्कीमें मानो जहर-सा घोल रहा है, उसका "ऐण्टीडोट" प्रतीकार ये वकील ही है। वडे-वडे शहरोकी शोभा हैं। जो चलते वनै तो औवल दरजेकी प्रतिष्ठाका द्वार है। पर सोच होता है जव खयाल करो कि वन्दरके हाथमें मणिके समान कितने इस पेशेको ऐसा विगाड रहे है कि वकील झूठको सच, सचको झूठ कर देनेके लिए वदनाम हो रहे है सो न किया जाय तो वकालत आदमीको अपनी इज्जत वनानेके लिए वडा उमदा जरिया है। वह जमाना गया जव वकीलोकी तवायफके साथ तुलना दी जाती थी। अव इस समय सभ्य सुशिक्षित जिन्होने अँगरेजीकी उमदा तालीम पायी है उनको अपने उत्तम गुणकौशल्य, सजीदगी, सच्चाई, ईमानदारीके प्रकट करनेको यह काम एक मात्र सहारा है और अंगरेजो राज्यमें वडी उत्तम जीविका है चलते वन पडै तो। इत्यादि।

•

# दाँत

इस दो अक्षरके शब्द तथा इन थोडी-सी छोटी-छोटी हड्डियोमे भी उस चतुर कारीगरने यह कौशल दिखलाया है कि किसके मुँहमे दांत है जो पूरा-पूरा वर्णन कर सके। मुखकी सारी शोभा और यावत् भोज्य पदार्थोका स्वाद इन्हीपर निर्भर है। कवियोने अलक (जुल्फ), भ्रू (भौं) तथा वरुनी आदिकी छवि लिखनेमे बहुत-बहुत रीतिसे बालकी खाल निकाली है, पर सच पूछिए तो इन्हीकी शोभासे सबकी शोभा है। जब दांतोके बिना पुपला-सा मुँह निकल आता है, और चिबुक (ठोढी) एव नासिका एकमें मिल जाती है उस समय सारी सुघराई मिट्टीमे मिल जाती है।

कवियोने इसकी उपमा हीरा, मोती, माणिकसे दी है। वह बहुत ठीक है, वरच यह अवयव कथित वस्तुओंसे भी अधिक मोलके है। यह वह अग है जिसमें पाकशास्त्रके छहो रस एव काव्यशास्त्रके नवो रसका आधार है। खानेका मजा इन्हीसे है। इस बातका अनुभव यदि आपको न हो तो किसी बुड्ढेसे पूछ देखिए, सिवाय सतुआ चाटनेके और रोटीको दूधमें तथा दालमें भिगोके गलेके नीचे उतार देनेके दुनिया-भरकी चीजोंके लिए तरस ही के रह जाता होगा। रहे कविताके नौ रस, सो उनका दिग्दर्शन मात्र हमसे सुन लिजिए—

शृगारका तो कहना ही क्या है। अहा हा! पान-रग-रँगे अथवा यो ही चमकदार चटकीले दांत जिस समय बातें करने तथा हँसनेमे दृष्टि आते है उस समय नयन और मन इतने प्रमुदित हो जाते है कि जिनका

वर्णन गूँगेको मिठाई है। हास्य रसका तो पूर्ण रूप ही नही जमता जब-तक हँसते हँसते दाँत न निकल पडे। करुण और रौद्र रसमे दु:ख तथा क्रोधके मारे दाँत अपने होठ चबानेके काम आते है एव अपनी दीनता दिखाके दूसरेको करुणा उपजानेमे दाँत दिखाये जाते है। रिसमे भी दाँत पीसे जाते है। सब प्रकारके वीर रसमे भी मात्रवानोमे शत्रुकी सैन्य अथवा दु खियोके दैन्य अथवा सत्कीर्तिकी चाटपर दाँत लगा रहता है। भयानक रसके लिए सिंह-व्याघ्रादिके दाँतोका ध्यान कर लीजिए, पर रातको नही, नही तो सोतेसे चौंक भागेंगे। बीभत्स रसका प्रत्यक्ष दर्शन करना हो तो किसी तिब्बती साधुके दाँत देख लीजिए, जिनकी छोटी-सी स्तुति यह है कि मैलके मारे पैसा चिपक जाता है। अद्भुत रसमे तो सभी आश्चर्यकी बात देख-सुनके दाँत बाय मुँह फैलायके हक्का-बक्का रह जाते है। शान्त रसके उत्पादनार्थ श्री शकराचार्य स्वामीका यह महामन्त्र है—

"भज गोविन्द भज गोविन्द गोविन्द भज मूढमते।"

सच है, जब किसी कामके न रहे तब पूछे कौन ?

"दाँत खियाने खुर घिसे, पीठ बोझ नहिं लेइ।"

जिस समय मृत्युकी दाढके बीच बैठे हैं, जलके कछुए, मछली, स्थलके कौआ, कुत्ता आदि दाँत पैने कर रहे हैं, उस समयमें भी यदि सत्चित्तमे भगवान्का भजन न किया तो क्या किया ? आपकी हड्डियाँ हाथीके दाँत तो हुई नही कि मरनेपर भी किसीके काम आवेगी। जीते जी ससारमे कुछ परमार्थ बना लीजिए, यही बुद्धिमानी है। देखिए, आपके दाँत ही यह शिक्षा दे रहे है कि जबतक हम अपने स्थान, अपनी जाति (दन्तावली) और अपने काममे दृढ है तभीतक हमारी प्रतिष्ठा है। यहाँतक कि बडे-बडे कवि हमारी प्रशसा करते है, बडे-बडे सुन्दर मुखारविन्दोपर हमारी मोहर 'छाप' रहती है। पर मुखसे बाहर होते ही हम एक अपावन, घृणित और फेंकने योग्य हड्डी हो जाते है—"मुखमें मानिक सम दशन बाहर निकसत हाड" हम जानते है कि नित्य यह दर्पण भी आप अपने

मुख्य देश भारत और अपने मुख्य सजातीय हिन्दू-मुसलमानोंका साथ तन-मन-धन और प्रान-पनसे क्यों नही देते ? याद रखिए—"स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते, दन्ता केशा नखा नरा ।"

हाँ, यदि आप इसका यह अर्थ समझे कि कभी किसी दशामे हिन्दुस्तान छोड़के विलायत जाना स्थान-भ्रष्टता है तो यह आपकी भूल है । हँसनेके समय मुँहसे दाँतोका निकल पडना नही कहलाता, वरच एक प्रकारकी शोभा होती है । ऐसे ही आप स्वदेश-चिन्ताके लिए कुछ काल देशान्तरमे रह आयें तो आपकी वडाई है । पर हाँ, यदि वहाँ जाके यहाँकी ममता ही छोड दीजिए तो आपका जीवन उन दाँतोके समान है जो होठ या गाल कट जानेसे अथवा किसी कारण-विशेपसे मुँहके वाहर रह जाते है और सारी शोभा खोके भेडिये-जैसे दाँत दिखाई देते है । क्यो नही, गाल और होठ दाँतोका परदा है । जिसके परदा न रहा, अर्थात् स्वजातित्वकी गैरतदारी न रही, उसकी निर्लज्ज जिन्दगी व्यर्थ है । कभी आपको दाढकी पीडा हुई होगी तो अवश्य यह जी चाहा होगा कि इसे उखडवा डालें तो अच्छा है । ऐसे ही हम उन स्वार्थके अन्धोके हकमें मानते है जो रहें हमारे साथ, बनें हमारे ही देश-भाई, पर सदा हमारे देश-जातिके अहित ही मे तत्पर रहते है । परमेश्वर उन्हे या तो सुमति दे या सत्यानाश करे । उनके होनेका हमे कौन सुख ? हम तो उनकी जैजैकार मनावेंगे जो अपने देशवासियोसे दाँत काटी रोटीका बरताव ( सच्ची गहरी प्रीति ) रखते है । परमात्मा करे कि हर हिन्दू-मुसलमानका देशहितके लिए चावके साथ दाँतो पसीना आता रहे । हमसे बहुत कुछ नही हो सकता तो यही सिद्धान्त कर रक्खा है—

'कायर कपूत कहाय, दाँत दिखाय भारत तम हरो'

कोई हमारे लेख देख दाँतो तले उँगली दवाके सूझ-वूझकी तारीफ करे, अथवा दाँत वायके रह जाय, या अरसिकतावश यह कह दे कि कहाँकी दाँताकिलकिल लगायी है तो इन वातोकी हमे परवाह नही है ।

हमारा दाँत जिस ओर लगा है, वह लगा रहेगा, औरोंकी दाँतकटाकटमे हमको क्या ?

अत हम इस दन्तकथाको केवल इतने उपदेशपर समाप्त करते है कि आज हमारे देशके दिन गिरे हुए हैं। अत हमे योग्य है कि जैसे बत्तीस दाँतोके बीच जीभ रहती है वैसे रहे, और अपने देशकी भलाईके लिए किसीके आगे दाँतोमे तिनका दबाने तकमे लज्जित न हो तथा यह भी ध्यान रक्खें कि हर दुनियादारकी बातें विश्वास-योग्य नही है। हाथीके दाँत खानेके और होते हैं दिखानेके और।

●

# मै हज्जाम हूँ

मैं हज्जाम हूँ। अच्छी हजामत बनाता हूँ। जी लगाकर बना दूँ तो केश पखवारे तक न पनपें—रोएँ भी न अकुरे। मगर जी लगता नही जबतक मेरे छुरेको छप्पन छुरा कोई छैल-छबीला नही मिलता। मिल गया तो छुरा रसे-रसे चलने लगता है। अगर सयोगसे कोई गण्डपाताली मिल गया तो छुरा छूटकर चल पडता है। इसलिए कपोलपाताली मेरे टिग फटकते नही। मेरी उन्मादिनी उँगलियाँ जब गालोको गुदगुदाने लगती है तो रसज्ञोका नीद आने लगती है।

नीतिशास्त्रानुसार शस्त्रधारी कभी विश्वसनीय नही होता, किन्तु मेरे शास्त्रसज्जित लोखरको देखकर भी बडे-बडे राजा-रईस और सेठ-साहूकार बडी आस्थाके साथ मेरे छुरेके आगे गरदन झुका देते है। जो सारी दुनियाको उलटे छुरेसे मूडते हैं उन्हे मै सीधे छुरेसे ही मूड डालता हूँ। मनमाने पैसे भी गिना लेता हूँ और मनमाना कर ठोठ भी मसल देता हूँ।

किसी सशस्त्र व्यक्तिके हाथमे कोई विश्वास पूर्वक अपना सिर नही सौंपता, पर मेरे 'विश्वसनीयमायुध'के सामने सबके सब स्वत आत्म-समपण कर देते है—मेरे स्पर्शसुखावह छुरेको अपना गला सौंपनेमे कोई कभी हिचकता नही, यहाँतक कि मेरी इच्छाके विरुद्ध कोई रच-मात्र भी टससे मस नही होता।

जिस समय मनचाहा व्यक्ति मिल जाता है उस समय मेरी नृत्यशीला उँगलियाँ मन्थर गतिसे अपना लोच दिखाने लगती है। मेरी अगुलि-

अंगनाओंके अभिनयके लिए कमनीय कपोल ही रमणीय रंगमंच है। मेरी भाव-भंगिमा-भरी कनक शलाका-सी उँगलियोंके लिए चितचोर चिबुक ही 'सुचिर चिर कसौटी' है।

किन्तु मैं कपोलानन्दी होकर भी सर्वथा निर्लिप्त और अनासक्त हूँ, इसलिए मैं प्रमदाओंका प्रतिद्वन्द्वी नहीं कहला सकता। हाँ, ठग और चोरके बीचका ठाकुर अवश्य हूँ, इसलिए ठसकके साथ कहता हूँ कि ठाकुरका भोग कभी जूठा नहीं कहलाता, प्रसाद कहा जाता है। न भौंरा फूलको जूठा करता है, न चोटी चोलीको। यदि सोच समझकर देखिए तो मैं ललनागणकी सुख वृद्धिका साधक हूँ।

याद रहे मैं हाथरसका हज्जाम हूँ। मगर रहता हूँ बनारसमें। व्रज-बसिया और बनरसिया होनेके कारण ही तो रसिया हूँ। सचमुच मेरे हाथोंमें ही रस है। टटका-टटका टें दूँ तो टकटकी बँध जाय और टटोल-टटोल टीप दूँ तो विरहीकी हराम नींद भी चुपकेसे चली आये।

मैंने जैसे स्पृहणीय श्वास सौरभोंका रसास्वादन किया है वैसा तो बहुतोंको नसीब न होगा। जिन मानिनी मूँछों तक बड़े-बड़ोंके हाथ नहीं पहुँच सकते उनको कुकुर पूँछ बनानेके लिए मेरे हाथ बड़े कौशलके साथ सरसते-विलसते हैं। हाँ, जनाब, लोखर लिये फिरनेके कारण मुझे निरा लोफर ही न समझिए।

नेत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और त्वगिन्द्रिय—तीनोंका ( त्रिविध ) सुख मैं एक साथ ही लूटता हूँ, इसलिए मैं सौभाग्य-शाली भी किसीसे कम नहीं हूँ। मेरी अनुभूतियाँ यदि किसी कविके हाथ लग जायें तो उसमें बिहारी लालकी आत्मा चहक उठे।

'आदमीमें नौआ, पक्षीमें कौआ'—इस प्रसिद्ध कहावतके अनुसार मेरी धूर्तता भी जग-जाहिर है। इसलिए वर्तमान युगमें सर्वत्र ही मेरी जातिका बोल-बाला है। सभी देशों और सभी क्षेत्रोंमें मेरी जातिके लोग पाये जाते हैं। भले ही वे जन्मना हज्जाम न हों पर कर्मणा तो निश्चय

ही हैं। मेरे छुरेसे घुटी हुई दाढ़ी तो पनपती भी है, पर कर्मणा हज्जाम—क्षौर व्यवसायी 'मुण्डन मर्चेण्ट'—जिसकी हजामत बनाते हैं उसकी चाँद गंजी कर डालते हैं एक-एक खूँटी उखाड़ लेते हैं। फिर उसके सफाचट चेहरेपर बाल उगते ही नहीं। मानव-जातिके भाग्यके हरे-भरे क्षेत्रको चर जानेवाले ये 'वैशाखनन्दन वस्तुत दूर्वाकन्दनिकन्दन' हैं। इनकी चरी हुई खेती कभी फलती नहीं, इनके मूँडे हुए सिर सदाके लिए 'लुण्ड मुण्ड' बन जाते हैं।

आज-कल हजामतका पेशा बहुतोंने अपना लिया है। आँखें खोलकर चारों ओर देख लीजिए। यदि कोई नयी उमगका नेता है तो निस्सन्देह नापित भी है, क्योंकि जनताकी हजामत बनाना ही उसका धन्धा रोजगार है। दुनियाकी सरकारें प्रजाकी हजामत बनाती हैं। निरकुश लेखक भाषाकी हजामत बनाता है। स्वयम्भू कवि छन्दोंकी, डॉक्टर मरीजोंकी, वकील मुवक्किलोंकी, टिकिट चेकर मुसाफिरोंकी, दुकानदार ग्राहकोंकी, पण्डा तीर्थ-यात्रियोंकी, समालोचक लेखकोंकी, सम्पादक पुरस्कारकी, प्रकाशक पाठकोंकी और अनुवादक मूल भावोंकी हजामत बनाता है। कहाँतक गिनाऊँ, सब तो हज्जाम ही हज्जाम हैं, तब भी विज्ञापनदाताओंसे बढ़कर होशियार हज्जाम नहीं नजर आता। इन लोगोंने कचहरीके अमलोंके भी कान काट लिये हैं। हाँ, ऊँचे इजलासकी कुरसी तोड़नेवाले भी अब न्यायको खूब मूँड रहे हैं—निगोड़ी तोपें भी किलोंकी वैसी कपालक्रिया नहीं कर सकती। ये लोग अफगानोंके हज्जाम हैं। स्वनामधन्य बाबू रामचन्द्र वर्माने अपनी अच्छी-हिन्दी पुस्तकमें एक स्थलपर लिखा है कि अफगान लोग हज्जामको सरतराश कहते हैं और उनके यहाँ हज्जामकी दुकानोंकी तख्तियोंपर 'हेड कटर' लिखा है।

बलिहारी है शेविंग स्टिक और ब्लेडके आविष्कर्ताकी, जिसने सभी सुशिक्षितोंको हज्जाम बना दिया है। इससे मेरी जातिकी रोजीमें खलल जरूर पड़ा है, लेकिन एक काम बड़े मजेका हुआ है। कामिनियाँ विशेष

लाभान्वित हुई है—वे ही असीमती होगी आविष्कर्ताको। मूँछ तो अब मर्दानगीकी पूँछ मात्र है। इस युगमें भला मूँछकी मर्यादा ही क्या है? जब थी तब थी। अठारहवी सदीके आरम्भमे मरमी कविने ठीक कहा था—

"जिन मुच्छन धरि हाथ, कछू जग सुजस न लीनो।
जिन मुच्छन धरि हाथ, कछू पर काज न कीनो॥
जिन मुच्छन धरि हाथ, दीन लखि दया न आनो।
जिन मुच्छन धरि हाथ, कबाँ पर पीर न जानो॥
अब मुच्छ नहीं वह पुच्छ सम, कवि मरमी उर आनिए।
चित दया दान सनमान नहिं, मुच्छ न तेहि मुख जानिए॥"

•

# अपना परिचय

आरम्भसे ही आरम्भ करता हूँ।

मेरी खोपड़ी मेरे शरीरका वह उन्नत भाग है जो अकसर चौखटोंसे भिड़ा करता है।

इसी शिखरपर एक शिखा है जिसकी चकबन्दी गायके खुरकी परकार-से नापकर की गयी थी।

लोगोंका कहना है कि मेरी इस शिखासे मूर्खता टपकती है। लेकिन मेरा कहना है कि मूर्खता भी मूर्खता करती है जो टपकनेके इतने स्थान छोड़ चुटियासे टपकती है।

कुछ साल पहले मैं कुल डेढ़ हड्डीका एक दमटुट और मरजीवा आदमी था। पूरा व्याधि-मन्दिरम् था। हूल और शूलमें चूल-चूल ढीला पड़ गया था। माजून और मात्राके बलपर शरीरयात्रा हो रही थी।

उन्हीं दिनोंकी बात थी कि एक रिक्तताका विज्ञापन देखकर मैंने अरजी भेजी और इण्टरव्यूके लिए बुला लिया गया। पर दफ्तरका बड़ा बाबू मुझे देखते ही चीख पड़ा—'अजी तुम्हारा चेहरा तो बिलकुल चमरखमा है।'

'यह एक रही।' मैं कुड़बुड़ाया तो, पर बोला नहीं। उसने फिर कहा 'और तुम्हारी सूरत भी क्या खूब चमरपिलई-सी है।'

अब अति हो रही थी। मैं कुछ हूँ ट्ँ करता पर वह बोलता गया—'नहीं, तुम मेरे ममरफके नहीं हो। तुम्हारी शकल कहती है कि तुम अनेक रुग्णता और इल्लतोंके शिकार हो।'

'जी हाँ, हूँ तो।'—मैंने कुढ़कर कहा—'गाँजा पीता हूँ, गंजीफा खेलता हूँ।'

'नहीं, कुश्ता खाया करो, कुश्ती लड़ा करो।' उसने तड़ाकसे उत्तर दिया। था वह एक नम्बरका चटबोल आदमी।

ताव-पेंच खाता मैं उस दिन घर लौटा। उसकी चमरपिनईवाली बात मुझे लग गयी थी। पाठा बननेकी धुन मनमें हवा बाँध रही थी। यह तो मेरा देखा हुआ था कि मिक्सचरसे शरीरका शनिश्चर नहीं जाता, और न चिरायतासे चिरायुता मिलती है। काँटेमें काँटा तो निकल जाता है लेकिन अरिष्टसे अरिष्ट नहीं निकलता। निदान मैंने उसी दिनसे डण्ड पेलना शुरू किया। अब मैं चीरे चार बघारे पाँच हूँ।

पर मेरी पढ़ाई-लिखाई विशेष लिखने-पढ़नेकी वस्तु नहीं है। बड़ोंने, बूढ़ोंने, लाख सर मारा लेकिन मेरी शिक्षा-दीक्षा अस्ति और नास्तिके बीच-की क्षीण रेखा सदृश रह गयी।

एक तरहसे अच्छा ही हुआ। अधिक पढ़-लिखकर फाजिल होता तो जा दिल्लीमें काज़ी हो जाता। यों अपनेको और किसी अर्थका न पाकर मैं लेखक हो गया।

और लेखक अपनी लेखनीसे अपने कान खुजलाते हैं, मैं अपनी लेखनी-से औरोंके दिल गुदगुदाता हूँ।

पर इसी लेखनीसे, जवान था तो मैंने पापड़ बेला, अधेड़ हूँ, तो चौका लगा रहा हूँ, वृद्ध हूँगा तो शायद रहीमकी तरह भाड़ भी झोंकूँ। सबसे अच्छा बचपन था जब लेखनीसे बस जाँघियोंमें इजारबन्द डालना जानता था।

एक बार बौखलाकर मैंने अपनी इसी लेखनीसे कितने गुरुओंको गोरु बना दिया। लोग तब खड़बड़ाकर कहने लगे कि साहित्य-गगनमें यह झाड़ू-तारा कहाँसे उदय हुआ।

यों तो मैं सभी अलंकारोंको अपनी लेखनीकी पकड़में समेट लेता (

पर उपमा और उत्प्रेक्षाका मुझे पूरा प्रेत ही समझिए। ऐसे-जैसेका मैं ऐसा अभ्यासी हूँ जैसे माछेर-झोलके बंगवासी। मेरे लिए कोई चीज सुन्दर है तो कश्मीरकी झीलकी तरह, अनिवार्य है तो मुकदमेमे वकीलकी तरह, प्रिय है तो लडकोकी तालीलकी तरह, आवश्यक है तो चमरौधेमें कीलकी तरह।

लेखकोमे मैं बूढे विधाताको अपना आदर्श मानता हूँ जो एक बार गलत-सही जैसा कुछ लिख मारता है, उसके संशोधन-परिवर्तनका फिर नाम नही लेता।

अपनी कलमका मैं ऐसा कलन्दर हूँ कि उसे जैसे चाहूँ नचाऊँ, पर वह खिलखिलाती अगर है तो दूसरोकी खिल्ली उडानेमें। दूसरोके गुण देखनेमें मैं अन्धा हूँ, दूसरोके गुण गानेमें वह गूँगी है।

पर मैं खबरदार रहता हूँ कि खुद मेरी खिल्ली कोई न उडाये। यही कारण है कि साहित्यके क्षेत्रमें एक समालोचकोको छोड, मेरी हर तरहके लोगासे पटरी बैठ जाती है। मेरी समझमे आज तक यह न आया कि साहित्य उपवनमे इन निमकौडी बटोरनेवालोकी आखिर क्या आवश्यकता थी। मेरी पक्की धारणा है कि नितान्त पचकल्यानी लोग ही साहित्य-सेवाके नामपर यह पुलिस-वृत्ति अख्तियार करते होगे।

मैं अपने हृदयके पेंदमे उन बखेडियाकी भर्त्सना करूँगा जो हिन्दीमें व्याकरण बनाते चले जा रहे है। आप अगर चाहते है कि साहित्य खुल-कर सांस ले तो व्याकरणरूपी बोआ नागकी जकड-बन्दीसे उसे बचाइए। आज व्याकरण बनाइएगा, कल जेल बनाइएगा, परसों व्याकरण न माननेवालोको उन्ही जेलोमे ठूँस दिया जायेगा। व्याकरणका ज्ञान सच पूछिए तो, केवल वही तक अपेक्षित है जहाँतक हम सन्तरीको सन्तरेका स्त्रीलिंग न समझें, खटको खटीका पुंलिंग न समझें, और भावजको अगर भाभी पुकारते हो तो बडे भाईको भाभा न पुकारें।

मेरी इन बातोको पढकर मुझे कोई बौडम पुकारे तो मैं उसे

क्षमा कर दूँगा, जैसे सूर्य उन लोगोको क्षमा कर देता है जो उसे पतग पुकारते है ।

मेरा घरेलू जीवन इस अर्थमे बडा सुखमय है कि घरकी मालकिन महोदया मुझे काठ कबाड समझकर अधिक छेडती नही । हाँ, यह जरूर है कि मेरा पति-परमेश्वर-पन वे बहुत पनपने नही देती ।

पर इसका अर्थ नही कि हम दोकी दुनियामे कही कोई दरार है । जीवनकी एकरसताको दूर करनेके लिए कभी कोई झडप हो जाये—वह दूसरी बात है । यो हम दोनो गणितको व्यर्थ करते हुए १ + १ = १ हो है ।

अपने दीर्घ दाम्पत्यके दौरानमे सदा गाँठ बाँध रखनेकी जो बात मैने सीखी है वह यह है कि यदि आप चाहते हो कि आपकी स्त्री ज्वालामुखी न बने तो उसे आप फुलझडी बननेसे रोकें ।

मेरे दूषणोका दफ्तर खोलकर जब वे मेरे ऊपर स्फुलिंग बरसाने लगती है तब मै खीस काढकर खगोल निहारने लगता हूँ ।

मै पूछता हूँ कि उन्हीकी तरह और जो लोग मेरी चिन्दी निकालते है वे यह क्यो नही सोचते कि मेरे दो ही तो हाथ है, उनसे मै क्या-क्या करूँ । एकसे करम ठोकता हूँ, दूसरेसे मुँहकी मक्खी पुकारता हूँ । बाकी काम हमारे चतुर्भुजी भगवान् हमारे लिए करे न । उन्हे हमने चार हाथ दे किसलिए रक्खे है ?

पर सच यह नही है कि मै कुछ करता नही । राष्ट्र सेवा मै बहुधा कर लेता हूँ । अभी कल ही मैने कई प्रकारसे राष्ट्र-सेवा की । राष्ट्रीयताके कई विरोधियोका मन-ही मन विरोध किया, और राष्ट्रीयतापर एक लेख पढता पढता सो गया ।

राष्ट्र सेवाके अनेक रूप हो सकते है । मै तो बैठकमे राष्ट्रनायकोके चित्र लटका लेना भी कम राष्ट्रीयता नही मानता । एक बार एक बडे नेताके साथ एक ही शतरंजीपर बैठनेका एक सयोग प्राप्त हुआ । उसके कई दिन बाद तक मुझे अपने मस्तकके चारो ओर एक तेजोमण्डलका आभास

मिलता रहा। बिना राष्ट्र-सेवाकी भावनाके यह कहाँ सम्भव था ?

पुरुष पुरातनकी वधूने मेरी ड्योढी कभी पार नही की। इसलिए अपनी शानको मै पुरवटके घानसे अधिक नही समझता। कोई कान पकड-कर थोडी देरके लिए हाथी-घोडा-जीनपर बिठा भी दे तो मै अपने करवा और कौपीनको न भूलूँ।

भूख अच्छी लगती है, माँड भी बसौंधीका मजा दे जाता है। आज खाता हूँ कलको झखता नही। चरबी इतनी चढती नही कि दुशाला और दुशालाका प्रयोग किसी जाडेमे आजमानेकी सोचूँ। बाजार यहाँ पहलेका लूट चुका है, रमैयाकी दुल्हिन अब क्या लूटेगी ?

नीद भी अच्छी आती है, कुकुरझपकी नही बल्कि घोडाबेच। फर्श-पर एक टुकडा टाट हो तो छप्पर-खटकी बाट न देखूँगा। लोगोका कहना है कि नीदमे जो मै नशाहीन होता हूँ वो उसकी मजा है कुम्भकर्णका।

भोजनके रसोमे मुझे मधुर अतीव प्रिय है। केवल इस मिष्टान्नपर मै महीनो आनन्दपूर्वक टेर ले जाऊँ। अवश्य ही यह उत्कट सस्कार पूर्वजन्मोमे बारम्बार ब्राह्मणका चोला पानेसे प्राप्त हुआ होगा। जो हो, मीठा-विषयक मेरा प्रेम कमजोरीकी हदको भी पार कर गया है। एक तबलीगी मुल्लाने मुझे मुसल्लम-ईमान बनानेके लिए अनेक प्रलोभनोमें एक यह भी प्रलोभन दिया था कि मरोगे तो तुम्हें शक्करके बोरेमे दफनाऊँगा।

रहनी अपनी रहस्योसे रहित और असाधारण रूपसे साधारण है। अपनेमे कोई विशेषता नही है। यही अपनी विशेषता है। जैसे वन्दरको आदी है, भैसको बीन है, खरको आखर है, वैसे ही अपने लिए साहित्य सगीत और कला है।

पर फुटकर बातोका ज्ञान मेरा बहुत है। उसमे कोई डाडी नही मार सकता। मै जानता हूँ कि लाल स्याही और नमकीन मिठाई कहना गलत है। मै जानता हूँ कि बालूसे तेल न निकले पर मिट्टीका तेल बराबर निकलता है। मै जानता हूँ कि तसली धातुकी होती है और तसल्ली

वातकी । मैं जानता हूँ कि मैं दिया जलाऊँगा, लम्प भी जलाऊँगा, पर दोनो मिलाकर दम्प नही जलाऊँगा । मैं जानता हूँ कि मेरे पुरखेने किसी पेशवाको पेशराज पुकारा होता तो क्या होता और मैं किसी मल्लको मल्लू पुकारूँगा तो क्या होगा ?

दुनियादारीमे, दुनियादारोंकी दुनियामे मैं काफी रम चुका हूँ। सहस्रो बातें मैंने देखी है, सुनी है, समझी हैं और मनोनोट की है । अनुभवकी आँचपर मैं पाकठ हो चुका हूँ । घाघकी, सन्त और चण्टकी पहचान कर लेता हूँ । साँटीसे काम नही चलता तो बेवडा उठाता हूँ । व्यवहारकी शिक्षा देना साँभरके इलाकेमे नमक भेजना है ।

अद्धा पेटमे हो और अधेलो टेटमे हो तो राजाधिराजाओको भी अपने पैरोका धोवन समझूँ । कोई रघुवशी, सोमवशी, यदुवशी रहा हो पर मैं गोवशी हूँ । मेरा आदर्श वह सन्तोष है जो किसी बैलका पूरा भूसा पाने-पर प्राप्त होता है ।

एक बार एक दुर्घटना हुई । किसी निराहार व्रतके पारणके अवसर-पर ठाकुरजीको भोग लगाते समय, मन्त्रोच्चारणके लिए मैंने मुँह जो खाला तो नैवेद्यकी थालीमे ही मेरी राल चू पडी । तबसे मैं व्रत उपवास भी कभी नही करता ।

यो अपने धर्म-कर्मसे मैं चौकस रहता हूँ पर दान-दक्षिणाकी गुंजाइश समायी अपनी थोडी कमाईमे है नही । हाँ, एक काम जरूर करता हूँ, अपने कर्ज सदैव कृष्णार्पण कर दिया करता हूँ ।

और किसीने भगवान्को न देखा हो, पर मैंने देखा है । अंतिम बार जब मेरा उसका साक्षात् हुआ था, वह मेरी आशाओं और अभिलाषाओं की समाधिपर सुखासन लगाकर बैठा हुआ था । मुझे देखकर उसके सुचिक्कण भालस्थलपर जो सिलवटें प्रकट हुई वे वैसी शान्त और कमनीय थी जैसे रच-पचकर लगाया हुआ खौर । आमद आनन और आरक्त उसके विलोचन यों खिल रहे थे जैसे अरुणारविन्दके सुन्दर सुरग दल ।

उसके एक हाथकी तर्जनी हेम-दण्डिका सी मेरी ओर विचलित हो रही थी। कज-कोश-सी वद्ध, दूसरे हाथकी मुष्टिका मेरी हो दिशामे भर-पूर तनी हुई थी। तीसरा हाथ महामनोहारी अर्द्धचन्द्र मुद्रामे मेरे नटवेकी ओर उठा हुआ था। चौथेमे तडित्-प्रभायुक्त वह दुरमुस विराजमान था जिससे कई बार कूट-पीटकर वह मुझे मटियामेट कर चुका है।

उसके सब हाथ इस प्रकार फँसे देख मुझे प्रसन्नता हुई कि इस बार भी वह, सदाकी भाँति, झट अपने कानोमें उँगली तो नही डाल सकेगा, और मेरी छोटी-सी प्रार्थना अब उनमे पड तो रहेगी। फिर मानना न मानना उसकी मरजी।

अत मैंने, तुरन्त बद्धाजलि होकर, महाकवि चच्चाके शब्दोमे कह डाला—

"है जलपान समान तुम्हें हलाहल पान प्रभु।
किन्तु चचा वरदान चाहत भोजन रुचिर चिर।
सपथ चचाकी सांच निहचै तारहु नाथ मोहि।
पै लघनकी आंच भव-बन्धन जिन जारियो॥"

●

# मेरा मकान

मुसलमानोंके यहाँ मुसव्वरी करना गुनाह समझा जाता है, क्योंकि चित्रकार एक प्रकारसे खुदाकी बराबरी करनेकी स्पर्द्धा रखता है। शायद इसीलिए अल्लाहताला लेखकोंसे भी नाराज रहते हैं क्योंकि वे भी अपने रचनात्मक कार्य-द्वारा परमात्माकी होड करते हैं। कवियोंने अपनी रचनाको एकदम परमात्माकी सृष्टिसे भी बढ़ा हुआ बतला दिया है। काव्य प्रकाशके कर्ता मम्मटाचार्यने कहा है कि कविकी भारती नियतिकी सृष्टिसे परे और शुद्ध आह्लादसे बनी हुई है। भगवानकी सृष्टिमें तो शुद्ध आह्लाद बिजलीके प्रकाशमें भी खोजनेपर बड़ी मुश्किलसे मिलता है किन्तु लेखक अपनी कल्पनाकी उड़ानमें उसे सुलभ बना देते हैं। फिर परमात्मा लेखकोंसे क्यों न रूठे? यदि लेखक लोग शब्दोंके महल और हवाई किलोंके अलावा ईंट-चूनेके मकान बनानेका साहस करें तो नीम चढ़े करेलेकी बात हो जाये। ईश्वर मनुष्यकी इस दुहरी स्पर्धाको कहाँ सहन कर सकते?

मेरे साथ भी कुछ ऐसा हुआ। ठोक-पीटकर लोगोंने मुझे लेखक-राज बना ही दिया और मैं स्वयं भी अपनेको पाँचवें सवारोंमें गिनने लगा। अपनेको बड़ा आदमी समझनेके कारण ही छतरपुरकी नौकरी छोड़नेके पश्चात् दूसरी जगहकी नौकरी न निभा सका। नौकरी करना [illegible] टेढ़ा खेल है। उसमें बड़े आत्म-संयमकी जरूरत है किन्तु मैं [illegible] आखिर हाउसके [illegible] कायदेको [illegible] बन्द करनेका [illegible] सँभाल सका। अब यदि इतनेपर भी सन्तुष्ट रहता तो गनीमत थी—

बाप-दादोकी नही, अपनी ही भलमनसाहत लिये बैठा रहता तबतक विशेष हानि नही थी ।

दूसरे प्रोफेसरोंको कोठियामे रहते देख ( मै भी पोफेसरोमे करीब करीब वेमुल्क नवाब हूँ ) मुझे भी कोठी बनानेका शौक चर्राया । मेरे सामने दो आदर्श थे । श्री भोदारामजी ठेकेदार तो चाहते थे कि अकवर-की इस नगरीमे कमसे कम लाल पत्थरके किलेकी टक्करका एक दूसरा किला बनवाऊँ और मेरी इच्छा थी कि अपने पडोसके काछियोके अनु-करणमे एक झोपडी डाल लूँ । इन्ही परस्पर विरोधिनी इच्छाओके फल-स्वरूप मेरा मकान तैयार हो गया जो अभी सामनेमे एक मजिल है और पीछेसे दो मजिला है ।

मै चाहता तो झोपडी ही बनाता, परन्तु जिस प्रकार पूर्वजन्मके सस्कारोपर विजय पाना कठिन हो जाता है उसी प्रकार नीवकी दीवारें चौडी चिनकर उनपर झोपडी बनाना असम्भव हो गया । प्रत्यक्ष रूपसे मूर्ख कहे जानेका भार अपने ऊपर लेनेको तैयार न था । जब लोग इतनी वडी ब्रिटिश सरकारको 'टापहैवी' कहनेमे नही चूकते तो मेरे मकानको 'वाटम हैवी' कहनेमे किसका मुँह बन्द किया जाता । टाप हैवीके लिए तो एक वहाना भी है—सिर वडा सरदारका—मेरे पास ऐसा कोई वहाना भी न था । मै शहरमे रहकर गँवार नही बनना चाहता था । मकान फूसमे क्या लकडीसे भी न पटा । उसमे डाटें लगायी गयी । उस सम्बन्धमें मेरे छोटे भाई बाबू रामचन्द्र गुप्त तथा मेरी श्रीमतीजीने बडे भाई लाला कालीचरणजी ठेकेदार महोदयको कई वार डाट-फटकार बतानेका मौका पाया ।

अब मै डाटका अर्थ समझ गया—डाट ईंट-चूनेकी उस बनावटको कहते है जो सदा अपना भार लिये धूप और मेहके साथ रणमे डटी रहती है । किन्तु उसे डटी रहनेके लिए स्वय धूप और मेहकी परवाह न करके डटा रहना पडता है और समय-समयपर ठेकेदारको भी डाट देनी पडती

है। इस प्रकार मेरा शब्द-कोश (अर्थ कोश नही) बहुत बढ़ गया है, अब मै कुछ, डाढा, चीरा, हाफ सेट, हौल पाम, नासिक, नग्मा, ठेसी आदि वस्तुकलाके पारिभाषिक शब्दोका अर्थ समझने लगा हूँ। एक बात और भी मालूम हो गयी है। आजकलकी सभ्यताकी काट छाटका प्रभाव वस्तुकलापर भी पडा है। इस युगमे मूँछे कट छँटकर तितली बनी और फिर तितली बनकर उड गयी। कोट आधे हो गये। पण्ट भी शोर्ट हो गयी। कमीजकी बाँहे और गले मुख्तसर बनने लगे। जूताका स्थान चप्पल और सेण्डलोने ले लिया। नाटक एकाकी ही रह गया। इसी प्रकार मकानोमे चौखट न बनकर तिखट बनने लगी। आजकलकी चौखटोके नीचेकी बाजू नही होती। सूरके बालकृष्णको देहली लाँघनेमे जो कठिनाई हुई थी वह मेरे नाती पोतोको नही होगी।

अर्थ-कोषके क्षयके साथ शब्दकोशकी वृद्धि उचित न्याय है—'गाज मावजा गिला न दारद।' इधर लेखा उधर बराबर हो गया। और नही तो परिवृत्ति अलकारका एक नया उदाहरण मिल गया है। बेर देकर मोती लेना कहूँ या इसका उलटा ?

जिस प्रकार शुरूमे जनमेजयके नागयज्ञकी तरह ईंट-चूनेका स्वाहा होता था उसी प्रकार पीछे धनका स्वाहा होने लगा, और मै भी घर फूँक तमाशा देखनेका अस्पृहणीय सुख अनुभव करने लगा। एकके बाद दूसरी पास बुक चुकती हुई, फिर केश सर्टिफिकेटोपर नौबत आयी, और पीछे रिजर्व बैंकके शेयर वारण्ट भी जो भाग्यशालियोको ही मिले थे, अछूते न रहे। ये भी काम आये। मै पुरुष पुरातनकी वधूके मादक मायामे मुक्त हो गया। अस्तु यह थोडा लाभ नही। कविवर बिहारीलालने कहा है—

"कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
वा खाये बौराय नर, वा पाये बौराय॥"

अब मुझे कनक (धन) मद न सता पायगा और मै 'बौरहा' न कहाऊँगा। दार्शनिकके नाते यदि कोई मुझे पागल कह लेता तो मै इस

दार्शनिक होनेका प्रमाण-पत्र मानकर प्रसन्न होता, किन्तु धन-मदसे लाछित होना मै पाप समझता हूँ। कांग्रेसी, मन्त्रिमण्डलपर अनन्त श्रद्धा रखता हुआ भी मै यह कहनेको तयार हूँ कि धनके मदमे तो भग भवानी और वारुणी देवीका मद ही श्रेयस्कर है। इसमे अपना ही अपमान होता है दूसरेका तो नही।

एक महाशयने मेरे घरके तहखानेको देखकर कहा कि आपके घरमे ठण्डक तो खूब रहती होगी ? मैंने उत्तर दिया कि जी, हाँ। जब रुपयेकी गरमी न रही तब ठण्डक रहना एक वैज्ञानिक सत्य ही है। इसपर उन्होने तहखानोके सम्बन्धमे सेनापतिका निम्नलिखित छन्द सुनाया—

"सेनापति ऊँचे दिनकरके चुवति लुवै
नद नदी कुवै कोपि डारत सुखाइ कै।
चलत पवन मुरझात उपवन वन,
लाग्यो है तपन डारचौ भूतलौ तपाइ कै।
"भीषम तपत रितु, ग्रीषम सकुचि तातै
सीरक छिपी है तहखाननमे जाइ कै।
मानो सीत कालै, सीत लताके जमाइवे कौ,
राखे है विरचि वीज धरामे धराइ कै।"

मैंने कहा भाई साहब वस्तु हाथसे गयी, फिर छाया भी न मिले, तो पूरा अत्याचार ही ठहरा। पहलेके लोगोके तहखाने धनसे भरे रहते थे, अब छाया ही सही। यदि गेहूँ नही तो भूसा ही गनीमत है।

धनका रोना अधिक न रोऊँगा। अब और लाभ सुनिए। बाहर मकान बनानेका सबसे बडा प्रलोभन यह होता है कि उसमें थोडी-सी खेती-वारी करके अपनेको वास्तवमे शाकाहारी प्रमाणित किया जाये। मेरी खेती भी उन्ही लोगोकी-सी है जिनके लिए कहा गया है "कर्महीन खेती करै, वर्ध मरै या सूखा परै।"

जब घर बनानेके लिए डेढ रुपया रोज़ खर्च करके दूसरेके कुएँसे पैर

चलवाकर हौज़ भरवा लेता था तबतक ही खेती खूब हरी-भरी दिखलाई देती थी। माली महोदय भी 'माले मुफ्त दिले बेरहम'की लोकोक्तिका अनुकरण करते हुए पानीकी कज्मी न करते थे। उन दिनों चाँदीकी सिंचाई होती थी, फिर भी शाक-पातके दर्शन क्यों न होते? पालकके शाककी क्यारी तो कामधेनु सिद्ध हुई। जितनी काटते उतनी ही बढ़ती। वह वास्तविक अर्थमें पालक थी। गोभीके फूल भी खूब फूले। उन्हें अधिकारसे खाया भी क्योंकि श्रीमद्भगवद्गीतामें फलोंका ही निषेध किया गया है, पत्तों और फूलका नहीं। भगवान्ने कहा है—"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" किन्तु जब मकान बन चुका तो अपने-ही-आप पानी देनेकी नौबत आयी। अब तो श्रीमद्भगवद्गीताका वाक्य अक्षरशः सत्य होता दिखलाई देता है। दिन-रात सिंचाईके बाद भी पत्र और पुष्प ही दिखलाई देते हैं। खेत सींचनेमें निष्काम कर्मका आनन्द मिलता है। मेरी खेतीपर मालूम नहीं, अगस्त्यजीकी छाया पड़ गया है कि जलमें प्लावित क्यारियोंमें शाम तक पानीका लेशमात्र भी नहीं रहने पाता। बाबा तुलसीदासजीका अनुकरण करते हुए कह सकता हूँ जैसे खलके हृदयमें सन्तोंका उपदेश। भगवान्की तरह मैं भी कुएँपर खड़ा हुआ रीताको भरा और भरेको रीता किया करता हूँ। मालूम नहीं भगवान् इस सेवाका क्या बदला देंगे? इतना सन्तोष अवश्य है कि मेरे कुएँका पानी खारा निकला है। इसमें पूर्वजोंका पुण्य-प्रताप ही रहा होगा। कुएँका जल ऐसा है कि कभी-कभी मुझे कसम खाना पड़ती है कि यह खारा नहीं है। "तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति" अर्थात् [illegible] ऐसा कहकर कायर पुरुष खारा पानी पीते हैं। सौभाग्य [illegible] लिए ऐसा न कहा जायेगा।

मेरी खेतीमें-से सिर्फ इतना ही लाभ है कि मुझे [illegible] पहचान हो गयी है। मैं खीरा और [illegible], [illegible] विवेक कर सकता हूँ। मैं इतनी दरवाज रहते हुए भी [illegible]

मेन्ने नही हूँ जिन्होने कभी अपनी उम्रमे चनेका पेड नही देखा। बहुत कुछ जमा लगनेपर मै यह तो न कहूँगा कि कुछ न जमा। जमा सिर्फ इतना ही कि मेरे यहाँकी भूमि वन्ध्या होनेके दोषसे बच गयी। जिस प्रकार हजरत नूहकी किश्तीमे सब जानवरोका एक जोडा नमूनेके तौरपर बच रहा उसी प्रकार मेरी खेतीमे विद्यार्थियोंकी शिक्षाके लिए दो-दो नमूने हर एक चीज-के मिल जायेगे और बाबा तुलसीदासजीके शब्दोमे यह कहना न पडेगा—

"ऊसर बरसे तृण नहि जामा।
सन्त हृदय जस उपज न कामा।"

जमीनको क्यो दोष दूँ। मेरी खेतीपर चिडियोकी भी विशेष कृपा रहती है, ये मेरे बोये हुए बीजको जमीनमे पडा नही देख सकती और मै भी खेत चुग लिये जानेके पूर्व सचेत नही होता। फिर पछतावेसे क्या ?

मै अपनी छोटी-सी दुनियामे किसानोकी अतिवृष्टि, अनावृष्टि, शलभा, शुका सभी ईतियोका अनुभव कर लेता हूँ। सोचा था वर्षाके दिनोमे खेतीका राग अच्छा चलेगा किन्तु गढेमे होनेके कारण साधारण वृष्टि भी अतिवृष्टिका रूप धारण कर लेती है। दो रोजकी वर्षामें ही जलप्लावन हो गया। सृष्टिके आदिम दिनोका दृश्य याद आ गया। मुझे भी अभावकी चपल बालिका चिन्ताका सामना करना पडा। पसीना बहाकर सीचे हुए वृक्ष, जिन्हे बडी मुश्किलसे ग्रीष्मके घोर आतपमे बचा पाया था, जल-समाधि लेकर विदा हो गये। जीवन ( जल ) ही उनके जीवनका घातक बना।

शहरसे कुछ दूर होनेके कारण मेरे नापित महोदय मेरे ऊपर अब कृपा नही करते। यद्यपि मेरे नापितदेव धूर्त तो नही है तथापि नापितको शास्त्रोमे ऐसा ही कहा है—'नराणा नापितो धूर्त।' इस प्रकार मेरा एक धूर्तसे पीछा छूटा। जो तृतीय श्रेणीके न्यायी ब्राह्मण मेरे ऊपर कृपा करना चाहते है उनपर कृपा करनेमे मुझे सकोच होता है। अब मै स्वय सेवक ( स्वय क्षौर करनेवाला ) बन गया हूँ और देशके हितमे टमाटर और

पालकके विटामिन बाहुल्यसे बने अपने अमूल्य रक्तके दो-चार बिन्दु नित्य समर्पण करना सीख गया हूँ। शायद सर कटनेकी कभी नौबत आये तो इतना सकोच नही होगा। सरके बजाय बाल तो दो-चार महीनेमे और नाखून दो-एक सप्ताहमें कटवा ही लेता हूँ। फिर भी लोग कहते है बलि-दानका समय नही रहा।

मैं अपने मकान तक पहुँचनेके रास्तेके सम्बन्धमे दो-एक बात कहे बिना इस लेखको समाप्त नही कर सकता। उससे मुझे जो लाभ हुआ है वह उमर-भर नही हुआ था। मैंने अपने जीवनमे इस बातकी कोशिश की थी कि दूसरेको धोखा न दूँ। इसलिए मुझे गालियाँ भी शायद ही मिली हो। लेकिन इस सडककी बदौलत मुझे इक्के-ताँगेवालोसे रोज गालियाँ सुननी पडती है। पीठ फेरते ही वे कह उठते है—बेईमान दिल्ली दरवाजे-की कहकर गाँवके दगडेमे खीच लाया है। मैं भी उनकी गालियोका विवाह-की गालियोके समान आदर करता हूँ और तुलसीके [illegible] स्मरण कर लेता हूँ 'कबहुँक दीन दयालके भनक पडेगी कान।' गाडी सडकें भी इसकी प्रतिद्वन्द्विता नही कर सकती। बन जाते हुए श्रीरामचन्द्रजीके सम्बन्धमे तुलसीदासजीने कहा है कि 'कठिन भूमि कोमल पद गामी।'

[illegible] ब्रज रज तथा [illegible] धूसरित पूर्ण इस सडकमे जब इस प्रकारसे [illegible] जाते है जैसे किसी [illegible] कुशलसे [illegible] सारा शरीर। यदि कोई जवाहर [illegible] के [illegible] बनाकर [illegible] ज्ञान रखना चाहे, तो दूसरोकी ट्रेन पास करनेके अतिरिक्त और [illegible] उपाय नही। किन्तु इसमे मेरी शान जाती है। दूसरी [illegible] वाणीसे नही किन्तु कभी-कभी मधुर [illegible] अवश्य [illegible] है। रात्रिको जब घर लौटता था कबीरके बतलाये हुए [illegible] और कामिनी रूपिणी बाधाओके समान कूद और [illegible] मिलती है। मेरी पगध्वनि सुनते ही उनके स्वागतमे उन्मुक्त कण्ठसे [illegible] है। इनके लिए मुझे दण्डधारी होकर कभी-कभी [illegible] है।

अब मुझे इन स्वाभाविक पशुओंके नाम भी याद हो गये हैं। एकका नाम टाइगर है, दूसरेका कमल। नामोच्चारण करनेमे दण्डका प्रयोग नही करना पडता। जब इन घाटियोंको पार कर लेता हूँ तभी जानमे जान आती है। हमारे घरमे ही बिजलीका प्रकाश है किन्तु रास्तेमे पूर्ण अन्धकारका साम्राज्य रहता है। और मुझे उपनिषदोंका वाक्य याद आता है 'असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता।' मालूम नही उसके लिए कौन-से पापका उदय हो जाता है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'की प्रार्थना करता हुआ जैसे-तसे राम-राम करके घर पहुँचता हूँ। रोज सवेरा होता है और उन्ही मुसीबतोंका सामना करना पडता है।

इन सब आपत्तियोंको सहकर भी बस इतना ही सन्तोष है कि उन्मुक्त वायुका सेवन कर सकता हूँ और बगीचेके होते हुए मुझे यह समस्या नही रहती कि क्या करूँ? जूतियाँ सीनेसे अधिक श्रेयस्कर काम मिल जाता है। शास्त्रकारोंका कथन है

'बेकार मुबाश कुछ किया कर
यदि कुछ न हो तो जूतियाँ सिया कर।''

और कुछ नही होता तो खुरपी लेकर क्यारियोंको ही निराता रहता हूँ, और चतुर किसानोंमे अपने गिने जानेकी स्पर्द्धा करता रहता हूँ.

'कृषी निरावहि चतुर किसाना।' प० रामनरेश त्रिपाठीने सनकी गाँठके आधारपर बाबा तुलसीदासजीको किसनईका पेशेवाला प्रमाणित किया है। इस बातसे मुझे एक बडा सन्तोष हो जाता है कि और किसी बातमे न सही तो खेतोंके काममे ही भक्तशिरोमणिकी समानता हो जाये।

अब मेरा यह निष्कर्ष है कि मुझ जैसे बेकार, सकल साधनहीन आदमी-को, जिसके यहा न कोई सवारी-शिकारी और न दो-चार नौकर-चाकर है, (वैसे तो हमारे उपनिवेशके सभी लोग 'स्वय दासास्तपस्विन' वाले सिद्धान्तके माननेवाले है ) कोठी बनाकर न रहना चाहिए।

●

# दवाई

मियाँ रहमतने चेहरेपर तौलिया रगडते-रगडते फरमाया—'अरे ता खुदाके वास्ते बिस्तर छोडो। देखती नही कितना दिन चढ़ आया है। सहनपर धूप चमक रही है। हाथ-मुँह धो डालो, एक प्याला चाय पी लो, ऊपरसे दो बीडे खा लो, तबीयत तरो-ताजा हो जायेगी। यों सारा दिन-भर सोया करो, सुस्ती ही बढेगी। और तुम्हे है क्या? जुकाम ही न? दो-एक रोजमे आप ही पच जायेगा। चाहो, तो अदरककी एक टिकिया खा लो। मगर तुम्हे समझाये कौन मानो तब न। जरा सर दर्द हुआ और खाट पकड ली। हमारी अम्मीजान चढे बुखारमे चायकी पीया करती थी। उनका कहना था कि चायकी सौ बीमारियोकी दवा है। एक तुम हो, जैसे लाजवन्तीका पौधा, उँगली दिखलायी और कुम्हला गया। मेरी बात मानो, एक महीना चायको पीओ, चेहरा मानिन्द सबके सुर्ख न हो जाय तो मेरा जिम्मा। मजदूरनियोको देखो, दिनभर मेहनत मशक्कत करती है, रूखा सूखा खाती है, मगर उनकी तन्दुरुस्ती रश्कके काबिल होती है। तो इसकी वजह क्या? यही कि '

बेगम साहबा शायद उनकी कडियाँ गिन रही थी। [illegible] बैठ गयी और मियाँ रहमतकी तरफ [illegible] बोली— 'तो तुम्हारी यही मंशा है कि मैं मजदूरी करूँ, [illegible] बात है यही करूँगी। मगर एक बात बताओ। [illegible] बिगडती है, तुम आपसे बाहर क्यो हो जाते हो? मुझे बीमार [illegible] नही है, मगर अपने फूटे नसीबका क्या [illegible]

हूं, जैसे मछली। मारे दर्दके सर फटा जाता है, हड्डी-हड्डी टूटी जाती है, भीतर-ही-भीतर बुखार तमाम जिस्मको तोड रहा है। नाकसे साँस लेने तो बनती नही, और जुकाम तुम्हारे लेखे कोई मर्ज नही है। तबीयतका हाल पूछना दूर रहा, दवा-दारूकी फिक्र भाडमे गयी, चक्की और मजदूरीका तराना लेकर बैठ गये। लगे अपनी अम्मीजानकी तारीफ मारने। कोई मरे चाहे जिये, तुम्हारी बलासे। एक मै हूँ तुम्हारी तबीयत जरा बिगड जाती है, तो यहाँ दम फूल उठता है। अल्लाहसे दुआ माँगती हूँ, मन्नते मानती हूँ। मगर तुम्हे इन बातोसे क्या मतलब। तुम्हारी तो वही मसल है कि अपने लिए पाचका गण्डा, गैरके लिए तीनका गण्डा। पारसाल ही की बात है, हजरतको तीन-चार रोज बुखार आ गया था। घर-भरको सिरपर उठा लिया था। यह डॉक्टर कुछ नही जानता, हकीम साहबको बुलाओ। हकीमजी तो पहले दरजेके गधे है, दवा करना तो बस, वैदजी जानते है। कह दो, मै झूठ कहती हूँ। कही उस वक्त मालूम होता चक्कीका नुस्खा, तो मै तुम्हे चक्कीपर ही बिठाती, और फिर बताती।' यह कहते-कहते बेगम साहबाके होठोपर मुसकराहट आ गयी।

मियाँ रहमत भी मुसकराकर बोले—'ए लो, तुम तो इल्जाम पर-इल्जाम लगाने लगी। मै, और फिक्र न करूँ, भला कभी ऐसा हुआ है? जरा तो सच बोला करो। तुम्ही कहो सालमें कितनी मर्तबा हकीमो और वैद्योकी चौखटोपर एँडियाँ रगडा करता हूँ। तुम्हारे ही लिए या किसी गैरके लिए! अच्छा भई, खता माफ करो, अभी किसीको बुलाये लाता हूँ।'

बेगम साहबाने कहा—'तो मै यह कहाँ कहती हूँ कि तुम मेरी फिक्र नही करते? पर, तुम्हारी फिक्र ऐसी है कि मियाँ खिलाते तो बहुत हां, मगर जूतियाँ बुरी मारते हो। और तुम इस सिकन्दरको क्यो नही डांटते? घडीमे आठ बज रहे होगे और वह मुई अबतक लापता है। इसने तो मेरा जी जला डाला। न बात-चीत करनेका शऊर, न काम-काजका सलीका। घण्टो एक ही कामके लिए बैठी रहेगी। तुम्हे और अच्छी नौकरानी नही

मिलती क्या ? क्या कहा, बेचारी बहुत गरीब है । गरीब है तो क्या, उससे मुफ्त काम लेते हैं । खाना-कपड़ा देते हैं, ऊपरसे महीनेके महीने चार रुपये अलग । बीबी और कहीं होती, तो आटे दालका भाव मालूम पड़ जाता । मगर यहाँ तो 'मुद्दई सुस्त, गवाह चुस्त' वाला मजमून है और यह ठीक भी है, परेशान तो वह मुझे करती है तब तुम्हें उससे क्या वास्ता ? अरे, तो अब आइना-कंघा लेकर बैठ गये । क्या कहा, बालोंमें कंघा न करूँ ? नहीं साहब खूब शौकसे माँग-पट्टी सँभालो । मगर इसके क्या मानी, कि औरतोंके माफिक चार घण्टे सिंगार-पटारमें गुजार दिये । तीन महीनेसे वह किताब लिख रहे हैं, और पूछो, लिखा कितना, केवल पचास सफे । इसीको कहते हैं—नौ दिन चले अढाई कोस । लिखा भी कैसे जाये । सात बजे सोकर उठे, डेढ़ घण्टे हाथ-मुँह धोया किये । डेढ़ घण्टे बाल सँवारते और कपड़े पहनते रहे । लीजिए साहब, दस बज गये । हबर-हबर खाना खाया और ताबड़तोड़ दफ्तरका रास्ता लिया । लौटेंगे आप किस वक्त—कभी आठ बजे, कभी नौ बजे । अब पूछती हूँ कि छुट्टी तो पाँच बजे हो जाती है, आप अबतक कहाँ रहे, तो जवाब मिलता है—रास्तेमें पण्डितजी मिल गये थे, उन्होंने पीछा ही न छोड़ा । गोया वह इनको बाँधकर बिठा लेते हैं । जोड़ी खूब जुटी है जैसी रूह वैसे फरिश्ते । दोनों जहाँ सड़ रहा जायेंगे, तो धरती हाय-हाय करेगी । खुदा जाने, काहेके मुँह लगाये हैं कि घण्टों बातें करते हैं मगर थकना नहीं जानते । जब पास-पड़ोस तकरार करेगा, तो मेरी बीमारीका बहाना बना-बनाया है । मानो मैं हमेशा बीमार बनी रहती हूँ, और आप चौबीसों घण्टे मेरी तीमारदारीमें लगे रहते हैं ।'

इसी समय वहाँ सिकन्दरने दबे पाँवों प्रवेश किया । [illegible] बारगी तब्दील हो गया और तमाम बौछार उसीपर जा पड़ी—'अच्छा ! आप हैं । आये तो बहुत जल्दी । अभी आठ ही तो बजे हैं । क्या कहा, कौन बहुत देर हो गयी है । जी नहीं, बिल्कुल देर नहीं हुई । [illegible] तब कहलाती, जब आपकी सवारी दस बजे तशरीफ लाती । [illegible],

साफ बात है, तुम्हें काम न करना हो, इनकार कर दो। कुछ जबरदस्ती नही है। मगर मुझे रोज-रोजकी यह माया पच्ची पसन्द नही। हज़ार मर्तबा समझा दिया कि बीबी जल्द आया करो, बातकी बातमें दस बजते है। उन्हे दफ्तर जाना है, मगर तुम्हारे कानोपर जूँ भी नही रेंगती। भले घोडेको एक चाबुक और शरीफ आदमीको एक बातकी ज़रूरत रहती है। मगर यहाँ तो जब देखो, कुत्तेकी दुम टेढीकी टेढी। अरे! तो अब खडी ही रहोगी? पैरोमे मेहदी तो रची नही है? लोटेमें पानी ले लो, और उनको धोकर भीतर आ जाओ।'

मियाँ रहमत जूते पहचानने लगे, तो बेगम साहबा बोली—'अब कहाँ चले? नीमवालोको बुलाने। मगर ऐसी भी क्या जल्दी, चाय तो पी लो। अभी दम-भरमें तैयार होती है। सिकन्दर, जल्दीसे आग सुलगाकर चूल्हे-पर पतीली चढा दो। अरे, तुम मानोगे नही? तुम्हारी यही जिद्द मुझे अच्छी नही लगती। मगर लौटना जल्दी। मैं तुम्हे खूब जानती हूँ। जहाँ गये वहींके हो गये। रास्तेमे कोई दोस्त-आशना मिल गया, उसीसे गप्पें हाँकने लगे। सिकन्दर, तुम्ही बताओ, मैं झूठ कहती हूँ?'

'झूठसे तुम्हे वास्ता ही क्या? अच्छा, घबराओ नही, तुम्हें ज्यादा इन्तजार करना न पडेगा।' कहते हुए मियाँ रहमत लपककर बाहर चले गये। मगर बेगम साहबाकी तक़रीर ज्योकी त्यो जारी रही, 'इनसे तो बात करना मुश्किल है। दवा-दारूका जिक्र किया बस वह दौड पडे नीम-वालोको बुलाने। पूछो, उनके पास रखा क्या है—हर्रे, बहेडे और आवलेका चूरन। भला आदमी दुनिया-भरका तो परहेज़ बतलाता है। आलू और चावल बादी होते है, गोश्त और अण्डे गरमी करते है, दूध, दही और घीसे कफ पैदा होता है। तब खाओ क्या सिर्फ मूँगकी दाल और रोटी! तौबा-तौबा! अच्छा भला आदमी भी दस-पाँच रोज़ बँधकर खाये तो बीमार पड जाये। मगर वह तो नीमवालोके मुरीद है। और इन डॉक्टरोसे तो खुदा बचाये। बदमाश दोनो हाथोमे लूटते हैं। नब्ज़ देखनेकी तमीज़

नही है, आँखे बताओ, जीभ दिखाओ, बस बीमारीकी शिकायत दूर हो गयी। अब लाओ दो रुपये फीसके, आठ आने ताँगेके, और छह आने तीन खुराक दवाके। और इन सबके एवज मिलेगा क्या? जहरका घूँट। दिन-भर मुँह कड़ुआ रहे, और थू थू करते बीते। अलबत्ता वैद्य-हकीम ऐसे डाके नही डालते। बेचारे एक रुपया फीस लेते है। और दवा साथ देते है। सच है, दुनियामे मुफ्ती चीजकी कदर नही होती। क्यो जिज्जी, तुम तो कभी-कभी नीमवालोके यहाँ जाती हो? कैसी चलती है उनकी वैदक। बहुत मरीज आते है? है भी तो बेचारे बहुत शरीफ और तजरबेकार। नब्जकी जाँच तो इतनी अच्छी करते है कि वाह! तीन चार साल हुए, मै मलेरियामे सख्त बीमार हो गयी थी। उन्हीकी दवासे सहत पायी थी।

अरे तो तुम बाते सुन रही हो या कुछ काम कर रही हो? अब-तक आग भी नही सुलगी। इस फू फूके क्या माने? बोतल उठाओ, थोड़ा-सा तेल छिड़क दो और दियासलाई रगड़कर फेंक दो। अभी भक-से जल उठेगी। जल्दी करो मेरी बहन जल्दी। बस ठीक है। अब पतीली चढ़ा दो। और हाँ, अभी चाय न छोड़ देना। पहले अदरक [illegible] डाल दो और खूब उबलने दो। क्या कहा—अदरक नही है? तो [illegible]। ये बड़े-बड़े दीदे किसलिए दिये है। इनसे तलाश करो। अरे हाँ, खूब याद आया, अदरक तुम्हे मिलेगा कहाँसे वह तो [illegible] है—[illegible] नाचे। अब तुम अदरक [illegible]। बुआ, तुम्हारा [illegible] हो [illegible]। [illegible] नही-नही, [illegible] नही है। [illegible]। [illegible] आयेगा, [illegible] अदरकका [illegible]। [illegible], तो दस-पाँच [illegible] भी छोड़ दो। मगर [illegible] और [illegible] डालना। दूध कितना है, [illegible]। और सुनो, दो [illegible] टिकिया भी बना [illegible]। [illegible]



आ [illegible]

नमक-मिर्च खूब बारीक पीसना। तबतक मैं हाथ-मुँह धोये डालती हूँ।'

जिस समय बेगम साहबा गुसलखानेसे बाहर आयी, पतीलीपर भापके बादल मँडरा रहे थे, और सिकन्दर सिलपर लोढा रगड रही थी। बेगम साहबाने उससे कहा—'चाय तैयार हो गयी? अण्डोमें प्याज मिला दी गयी है या खाली नमक-मिर्चपर ही जोर आजमा रही हो? क्या कहा—अभी तो अदरक ही उबल रहा है? ऐ वाह! तो अदरक न हुआ, बुड्ढी बकरी-का गोश्त हो गया। बुआ, तुम्हारे किये कभी कोई काम हुआ है, या आज ही होगा? खुदाने नाहक तुम्हे इनसानका जिस्म दिया। उमर तो तुम्हारी तीससे ऊपर होगी, मगर तुम्हें चाय बनानेका भी शऊर न आया। बुरा माननेकी ज़रूरत नही है। 'खानेको रोटी दस-बारा, काम करनेको नन्हा बेचारा' वाले मज़मूनसे मुझे सख्त नफरत है। वह वैद्यको लेकर आ रहे होगे और यहाँ चाय भी तैयार नही है। वाह! क्या खूब! ऐ खुदाकी नेक बन्दी, मैं क्या कह रही हूँ!—तुम्हारी समझमें कुछ आता है या नही। नमक-मिर्चका पीछा छोडो। चाय कैटलीमें भर दो, दूध अगारोपर रख दो, जब-तक वह गरम होता है, मैं प्याले और तश्तरियाँ साफ़ करती हूँ। प्याज कतर कर रख दी होती तो मैं ही अण्डोमें मिला देती। खैर अब कतर डालो। अरे, पानदानमें तो डलियाँ है ही नही, अरे चुनेटी भी साफ है। बुआ, लपककर ज़रा-सा चूना दे जाओ और पाँच-छह डलियाँ भी लेती आओ। ऐसी बुरी लत पड गयी है कि हाथ-मुँह धोनेपर जबतक दो बीडे न खा लूँ, चैन नही पडती। ए लो, अब तुम्हें डलियाँ नही मिलती? वह क्या रक्खी है उस गरम मसालेवाले डिब्बेके पास। ऐ बुआ, तुमसे कौन काम करनेको कहे? चूना लेने क्या गयी, सात समुन्दर पार करने लगी। अफसोस, पैसे-भर चूना लानेमें इतनी देर? एक घण्टेमें चूना लेकर लौटी। तुम्हे तो बस बहाना चाहिए। ज़रा-सा काम बतला दो, हमारी सिकन्दर बुआ, घण्टे-दो घण्टे उसीसे उलझी रहेगी। अरे भई, जो काम तुमको न करना हुआ, कह दिया करो। लो वह आ गये। मेरी अच्छी बुआ, जल्दीसे झाडू फेरकर वह दरी

बिछा दो। नौ बजनेका आये और घर अबतक नहीं धुला। वैद्यजी साहब क्या कहेंगे। इसीसे तो मुसलमान बदनाम है। मगर जहाँ बीमारी हो, वहाँ सफाई अच्छी तरह हो भी तो नहीं सकती। रहने भी दो, इतनी होशियारी-की जरूरत नहीं। हिन्दुओंमें ही कहाँकी ऐसी सफाई रहती है? पण्डितजीकी नौकरानी बतलाती थी कि उनका घर हमारे घरसे भी बदतर रहता है। बस अब जल्दीसे दरी बिछा दो। और उनको भीतर बुला दो। बेचारे तबसे बाहर खड़े हैं।'

वैद्यजी नब्ज टटोलकर बोले—'सर्दीकी शिकायत है। बुखार भी है, मगर बहुत खफीफ। हाँ, सुस्ती अलबत्तह ज्यादा है। आरामतलब आदमी सुस्त हुआ ही चाहे। अगर ये थोड़ी मेहनत-मशक्कत करें तो तमाम शिकायतें काफूर हो जायें। खैर, मैं तीन दिनके लिए दवाई देता हूँ। तबीयत ठीक हो जायेगी। मगर सर्द और बादी चीजोंसे बचाव करना पड़ेगा। दवा शहदके साथ ली जायेगी। भुना हुआ सुहागा मिला लेनेसे और भी अच्छा होगा—दाने-भर काफी रहेगा। हाँ, लौंगका तो मुझे ख्याल ही न रहा, एक-दो भूनकर मिला लेना।'

वैद्यजी तो दवाका अनुपान बताकर, और फीस गाँठकर चलते हुए, पर मियाँ रहमत और सिकन्दरपर एक साथ कयामत बरपा होने लगा। वह इस तरह कि सिकन्दर ज्यों ही बेगम साहबाके पाससे हटकर बावरचीखानेमें पहुँचा, बिल्ली बहीम साहबकी तरफ भागी। बेगम साहबा नाराज हो गयीं। पहुँचीं उठकर बावरचीखानेमें तो देखा क्या है कि [illegible] नदी-नालोंकी शक्लें बना रहा है और अण्डोंका प्याला उलटा पड़ा है। उनके जिस्ममें एड़ीसे चोटी तक आग धधक उठी। बोलीं [illegible]—'यह किस जनमके बदले चुका रहा है [illegible]। मैं तो [illegible] दिखला रही थी, तुम वहाँ मान-दाम मनगढ़न्त बनने [illegible]। अगर तुम्हारे यही लच्छन रहे तो एक दिन दिवाला ही निकल जायगा। [illegible], कोई कसूर नहीं है आपका। आप तक समझते हो गया है, [illegible] आप

कसूर हो ही नही सकता। कसूर तो मेरा है बीबी, जो वैद्यजीको नब्ज दिखलाने बैठ गयी और बावरचीखानेके दरवाज़ेको बन्द करनेका खयाल न रखा। सोचा था कि अदरककी चाय पीयेंगे, अण्डेकी टिकिया खायेंगे, तो तबीयत कुछ हलकी हो जायेगी। मगर तुम्हे यह बात पसन्द कहाँ? तुम तो अपने ही मनकी करोगी। तुमसे तो बुआ, मेरा जी खट्टा हो गया। गो उमरमे तुमसे छोटी हूँ, मगर तुम्हें तोतेको तरह पढाया करती हूँ। पर वाह! सिकन्दर बुआ है कि चिकने घडेका पानी। एक कानसे बात सुनी, दूसरे कानसे निकालकर बाहर की। ऐ कहाँ गये, कुछ सुना तुमने? अब हमारी सिकन्दर बुआ घन्नासेठ है। कहती है कि दूध और अण्डोके पैसे हमारी तनख्वाहसे काट लेना। बस बीबी, बस अब चुप ही रहो! तुम्हें ज़रा भी गैरत मालूम नही होती। चुल्लू-भर पानीमे डूब मरो। कसूरका कसूर करो और ऊपरसे ज़बान लडानेकी जुरत। मै तो तुम्हारी उमरका लिहाज़ करती हूँ, और तुम सिर चढी जा रही हो। आइन्दह इस तरहकी ज़बाँ-दराजी की, तो याद रखना मेरा मिजाज बुरा है, सब लिहाज़-विहाज़ धरा रहेगा। बस, अब खडी ही रहो और काम—'

मियाँ रहमतने कहा—'अरे! तो इस परेशानीसे अब क्या फ़ायदा? चार ही पैसेका दूध गया है, या और कुछ! ख्वाहमख्वाह बेचारीकी जान चीथ रही हो।'

बेगम साहबा तिनककर बोली—'ऐ वाह, तो मैं इनसान नहीं, बिल्ली हूँ, क्यो? लो सिकन्दर, खुशियाँ मनाओ, आजसे तुम आज़ाद हो। कान पकडे बीबी, जो आइन्दह तुमसे कुछ कहूँ। जब यह शह देते हैं, तो मेरी ही जूतियोंको क्या गरज़ पडी है जो फिक्रमे घुल-घुलकर मरूँ। मगर मियाँ, एक बात कहे देती हूँ, गाँठमे बाँध लेना। यह दुनिया है। यहाँ हमेशा सोधेका मुँह कुत्ते चाटा करते हैं। यही सिकन्दर कलको अलग की जायेगी, तो घर-घर तुम्हारे दुखडे गाती फिरेगी।

'और हाँ, वैद्यको क्या सिखला लाये थे? तुम्हारी ये बातें! इसीको

कहते है, मुँहमे राम बगलमे छूरा। अगर सिगला नही लाग[illegible] तो उसकी नसीहतका मतलब क्या था? उसे मालूम कैसे हुआ कि मै मेहनत मशक्कत नही करती! अगर मै मेहनत-मशक्कत नही करती तो तुम्हारी घर गर-गिरस्ती कौन सँभाल जाता है? मियाँ, मै हाथ-पैर न [illegible] तो दो रोटियोके लिए तरसकर रह जाओ। मगर नही, तुम गैरोके सामने मेरी गीबत करो, यही तो आजकल शरीफजादोके काम रह गये है।'

यह कहकर बेगम साहबा पलगपर जा गिरी और मुँह फेरकर पड़ रही। पाँच मिनिट तक सन्नाटा छाया रहा। यह चहकता हुआ मकान गोया वीरान सा हो गया। मियाँ रहमतने सोचा यह तो बुरा हुआ। चिड़िया रूठ गयी। वह चहके, उसकी चहकमे मकान गूँजे, तभी तो बहार है। आखिर लोग चिड़ियोको पालते किसलिए है? इसीलिए न कि आँखे उनकी सलोनी सूरत देखे और कान उनकी मीठी आवाज सुने। बस, [illegible] सिकन्दरसे कहा—'यही तो तुममे बड़ा ऐब है सिकन्दर, जो तुम उनका कहना नही मानती। तुम्हे जानना चाहिए कि वह इस घरकी सरकार है, हमारी सरकार है, तुम्हारी सरकार है। फिर क्या वजह है कि तुम उनकी बातोको कानोपर उड़ाओ। जो कहा कि वह हमेशा नाराज हुआ करती है, तो तुम्हे इसका खयाल न करना चाहिए। देखती नही कि वह [illegible] तो बीमार बनी रहती है, और बीमार आदमीके मिजाजमे चिड़चिड़ापन होना ताज्जुबकी बात नही है। वैद्यजी कल ही कह गये, मगर तुमने उनको दवा खिलानेका खयाल किया? जाओ, लपककर दो पैसेका शहद ले आओ। वह अलम्युनियमवाली कटोरी ले लो, यह ला इसको, और हाँ, [illegible] अच्छा-सा सुहागा भी लेती आना।'

बेगम साहबा उसी तरह पड़ी हुई जरा [illegible] आवाजमे बोली—'[illegible] खानी कौन निगोड़ी है? कोई जरूरत नही है शहद [illegible], मै मरूँ, जिऊँ, मगर तुम लोग मिलकर मजे [illegible] जाओ। [illegible], कसर न करना।'

मगर जब सिकन्दर कटोरी लेकर चलने लगी, तो बेगम साहबासे न रहा गया, वह उठकर बैठ ही गयी और कहने लगी—'बुआ, मैंने क्या कहा—सुना नही तुमने ? जब मुझे दवा खानी ही नही है तब तुम शहद लेने क्यो जाओ ? देखो, मै जो बात कहा करूँ उसे चुपकेसे मान लिया करो। इस ज़िद्दके क्या मानी ? तो तुम शहद लेने जाओगी ही ? मानोगी नही ? अच्छी बात है, जाओ, मगर गुडका सीरा न ले आना। इन पसारियोका एतबार न किया करो, मुए ईमानको ताकपर रखकर तो डण्डी पकडते है। सूंघकर और चखकर देख लेना, और साफ कह देना कि दवाके लिए है, अगर खराब निकला तो यही कटोरी खीचकर तेरे सरपर मारी जायेगी। मगर आना बुआ जल्दी, मैं तुम्हारी आदत जानती हूँ, जहाँ जाती हो, वहीं बातोंके बगीचे लगाने लगती हो। तो अब सुन क्या रही हो, जाती क्यो नही ?'

सिकन्दरने पीठ फेरी तो मियाँ रहमत बोले—'अभी तो दिन है हुजूर, उठ बैठिए न ?"

बेगम साहबा आंखोमें आंसू भर बोली—'यहाँ जी जला जाता है तुम्हें मज़ाक सूझ रहा है। आज मालूम हुआ कि तुम्हारे पेटमे दाँत हैं, बंदसे मेरी बुराई की, और दमडीकी नौकरानीके पीछे मोती-सी आब उतार ली। मेरा ही खून पियो, जो मुझसे बोलो।'

मियाँ रहमत बेगम साहबाके करीब पहुँचे और उनका हाथ पकडकर बोले—'खून पीनेवाले कोई और होगे, यहाँ तो पिलानेवाले है। तुम्हें मेरी कसम, लो उठ तो बैठो फटसे अल्लाहका नाम लेकर, और गुस्सेको थूक दो। न कुछ बात मगर मानिन्द बच्चोके मचलकर पडी रही! ऐसा भी कोई करता है। नौकरानीके साथ इस तरह माथा पच्ची करना तुम्हारी शानके खिलाफ है। इसीलिए उतनी बात मुँहसे निकल गयी।'

पारा नीचे उतर आया, तो बेगम साहबा बावरचीखानेमे पहुँची, वहाँका नजारा देखा तो उनकी आग फिर भभक उठी, और बोली—'गजब

खुदाका ! नालायकने तमाम दूध खाकमें मिला दिया। चाय तक नसीब न हुई। इस मुईसे खुदा समझे। बुआ तौसको तो प्यार कर चुकी हूँ, मगर खोदती घास ही रही। अगर इनके भरोसे रहो तो, इन्शाअल्लाह क़यामत तक तो खाना पकेगा नहीं। दिलमें तो यही इरादा कर लिया है कि आज हजरत भूखे ही दफ्तर जायें! मगर फिर सोचा कि वहाँ दिन-भर टँगे रहेंगे, आँतें कुलहू अल्लाह पढ़ा करेंगी, तो रहम आ गया। अच्छा तो अब थोड़ा-सा आटा गूँध लूँ और दो पराठे सेंक दूँ! दस बजनेमें देर भी तो नहीं है। इन छोटे-छोटे दिनोंने अलग ही आफत कर रक्खी है। बीबी सिकन्दर तो ऐसी गयी कि आनेका नाम भी नहीं लेती! पसारीसे रिश्ता जोड़ रही होगी, और क्या? इतनेपर आप फरमाते हैं कि उससे मामा-पज्जी न किया करो! भला बताओ तो, अगर उसका यही हाल रहा, तो काम कैसे चलेगा। जरा लपककर देखो तो कि जिन्दा है मर गई या अल्लाहको प्यारी हुई? मैंने आज सवेरे-सवेरे दवाईका जिक्र क्या छेड़ा, अपने पैरोंपर कुल्हाड़ी मार ली। दस बज रहे हैं, और अभी न पराठे सिके हैं, न सालन तैयार है। अब मैं क्या क्या करूँ, न हो दफ्तरमें बाजारसे कुछ मँगाकर खा लेना।

अल्लाह खैर करे, हमारी सिकन्दर सही सलामत वापस तो आ गयी। ऐ बुआ, तुम तो ऐसी गयी कि लापता ही हो रही। [illegible] लाहौर लादना हो गया। यहाँ मैंने आटा गूँध रखा है। तुम्हारे आसरे रहती, तो कुछ न होता। अब [illegible] क्या हो, जल्द [illegible], [illegible] तैयार कर देंगे। और तुम यहाँ आओ। झटपट कुछ [illegible] और मसाला पीस डालो। कड़ाही मुझे दे दो, [illegible] पराठे [illegible]। अभी दम-भरमें खाना तैयार होता है। ऐ, कड़ाही मँजी [illegible] पक चुका खाना, और खा चुके वह। ऐ बीबी, [illegible] तुमसे कड़ाही भी नहीं मँज सकती तब तुम [illegible] काम प्यारा होता है न कि चाम। मुई [illegible]

करो बीबी, जल्दी करो। कडाही मांजनेमें बरसों नहीं लगती तबतक मैं दवाई ही ले लूँ।'

मियाँ रहमत पत्थरपर खट-खट कर रहे थे। बेगम साहबा आकर बोली—'यह तुम दवाई तैयार कर रहे हो कि खेल कर रहे हो? होशियारी बघारेंगे दुनिया-भरकी और एक गोली पीसते बनती नही। लाओ मुझे दो। तुम लौंग और सुहागा भून लो। सुहागा ज़रा होशियारीसे भूनना। एक बडे-से अंगारेपर छोटी-सी डली रख देना। जब मानिन्द बताशेके फूल जाये, उठा लेना।'

'जी सरकार, कहते हुए मियाँ रहमत चले तो कटोरी उनके पाजामेके पांयचेमें उलझ गयी और सारा शहद ज़मीनपर जा रहा। बेगम साहबा हाथ मलकर बोली—'हाय री किस्मत, सिकन्दरकी बदौलत चाय और अण्डोसे हाथ धोया, एक दवाई बच रही थी, वह भी इन्होने न लेने दी। बैठे-बिठाये एक रुपयेका खून हो गया।'

मियाँ रहमतने कहा—'तुम्हारी होशियारीके मारे तो नाकमें दम है। मज़ेमे दवा तैयार कर रहा था। बीचमें तुम्हारे कूद पडनेकी क्या ज़रूरत थी? अच्छा भला पाजामा खराब हो गया।'

बेगम साहबा चिढकर बोली—तो मैंने तुमसे कह दिया था कि कटोरी-ने उलझ पडो? गलती करेंगे आप, और कुसूर थोपेंगे दूसरेके सर। इतना बडा तो मकान, पर आपको देखिए—कभी किवाडोसे भिड रहे हैं, कभी खूँटियोसे टकरा रहे है, गोया बेहोश रहते है।'

मियाँ रहमत मुसकराकर बोले—'हाँ, यह तो सच है। मगर इसमे मेरा क्या कसूर, तुम्हे देखता हूँ, तो यहाँ कच्चे घडेकी चढ जाती है।'

'जी हाँ, बडे वह हैं आप, कहती हुई बेगम साहबा भी मुसकरा दी। फिर धीरे-धीरे बावरचीखानेमे पहुँची और बोलीं—'माँज लायी बुआ कडाही? अच्छा, तो अब चूल्हेपर चढा दो, और वह घीवाली डेगची उठाओ। जब-तक मै पराठे सेंकती हूँ, तबतक तुम मसाला तैयार कर रखो। अरे, तुम

तो कपडे पहनने लगे। क्या कहा—दस बज चुके? इतनी जल्दी। अपनी तुम्हारी घडी है! तो क्या भूखे ही चले जाओगे? यह भी कोई बात है। खाना तैयार है, खाकर जाओ। पराठे सिक ही रहे है, सिर्फ सालन [illegible] होना है। दम-भरमे सब हुआ जाता है। बुआ, जल्दी करो न री। तुम्हारी ही बदौलत आज यह देर हुई। मेरी तबीयत अच्छी होती तो कबका खाना पक गया होता। मै तो चुटकी बजाते कुल काम करती हूँ। तुम्हारी माँ [illegible] रो-रोकर काम करे, तो यह घर गिरस्ती कुछ [illegible] जाये। आखिर अल्लाहने हाथ-पैर क्यो दिये है। काम करनेके लिए ही या और कुछ। मसाला पिस तो चुका है। अब झटपट तलो और घी ताजा, तो [illegible] आलू भी बघार दूँ।

'ए लो वह तो कपडे पहनकर तैयार हो गये। [illegible] जरा ठहर जाओ। अब तुम्हे कौन समझाये कि खाना पकाना, कुछ [illegible] सरसो जमाना तो है नही। हाँ, मै बेकार बैठी होती तो तुम [illegible] शिकायत कर सकते थे। चूल्हेमे सर मारना कैसी मसीबत है, यह तुम मर्द क्या जानो। तुम्हे क्या, खाना सामने आया, लम्बे-लम्बे हाथ मारकर, मूँछोपर ताव दिया और रफूचक्कर हुए। एक दिन इस सिलसिलेमे देर हुई, तो कुछ हरज हो जायेगा। ऐसा डर है तुम्हे सुपरडण्टका? सुपरडण्ट न हुआ, कहीका लाट हो गया। क्या उस निगोडे बाल-बच्चे नही है। ए सिकन्दर, तुम्हारे कामसे मै आजिज आ गयी। अब [illegible] चल रही है।'

यह कहते-कहते बेगम साहबान जो पराठा [illegible] जल गयी। बेचारी आँखोमे आँसू भर [illegible] बोली—'लो हो गयी तुम्हारे मनकी। [illegible] जल्दीका काम शैतान होता है। मगर तुम [illegible] आज सवेरे-सवेरे [illegible] हाथोपर बनी रही, वैद्यजी आये [illegible]

शहदपर ठोकर जमायी और इन मुए पराठोंने तो जान ही ले डाली।'

'हाँ, खूब याद आया। आज सुबह तुम्हारा मुँह आइनेकी तरफ था। इसीसे कहा करता हूँ कि आइनेकी तरफ मुँह करके न सोया करो पर तुम कहाँ मानती हो?' यह कहते-कहते मियाँ रहमत जूते पहनकर बाहर हो गये।

०

मैं तो अभी ये पूछने ही वाला था कि मूलचन्द, ये क्या हो गया है तुम्हे ? पीलिया भी सुसरी वडी खुसकैंट बीमारी होवै है साव ? पर तुमने भी ये सुसरी कहांकी वुलवुल पाल रखी है ? अरे इलाज-फिलाज कराके खुसकैंट करो ससुरीको। क्या समझे ? एँ ?'

'हां लाला, इलाज तो करा रह्या हूँ। डांग्डर मेवालालका हो रह्या है आजकल।'

'ये कौन मेवालाल फेवालाल है! अरे किसी भले आदमीसे करावो।'

'नही लाला, ऐसी भी क्या कहो हो ? अरे वो ऐम० बी० ऐस० है–लखनऊका।'

'भला! लखनऊका ऐम० वी० ऐस० है तो तो साव आदमी कावल दीखे है।'

'अरे लाला कावल क्या, विसकी तो वडी चले है आजकल। वडी धूम है विसकी आगरेमें। और इलाज भी वडा अच्छा करे है। अव देखो, विसीकी दवासे मुझे भौत फायदा पाँच रह्या है।'

सेठ वाँकेमलने गम्भीरतापूर्वक एक वार लाला मूलचन्दको अच्छी तरह देखा। फिर सिर हिलाकर वोले—'हाँ जरा चेतनता आ तो गयी है च्हैरेपर। वस इसीका इलाज करे जाओ तुम तो। क्या समझे ? कावल आदमी है साव, ये डांग्डर मेवालाल। वडा नामी है। चौवेजी भी तारीफ कर करे थे इमकी।'

लाला मूलचन्द हुमसकर वोले—'तारीफकी वात ही है लाला। मरजकी पहचान विसकी ऐसी जवरजस्त है कि क्या कोई करेगा।'

सेठ वाकेमलने खटसे ताव खाकर हाथ आगेकी ओर वढाते हुए कहा—''अव ये मती कहो तुम लाला मूलचन्द समझे! डांग्डर मंगारामके मुकालवेमें मरजकी सिनाख करनेवाला आजतक कोई पिरथी पै पैदा ही नही हुआ। तुम ये कलके लौंडे ससुरे मेवालालको लिये घूमो हो।'

पलट पडे मेरी ओर फिर—

कित्ती देर लगे हो—ससुरी कैंचियाँ ही कैंचियाँ आ गयी। मूँगारामने क्या कीना भैयो, कि नाकमे कैंची डालके एक वाल खैंच लीना और सबको दिखाके कही—ये लो साव, ये छीक निकल आयी। बात ऐसी थी कि ये साँस लेवै थी तो वाल भी ऊपरको चढे था इसीसे ये छीके आवे थी ससुरी।

पुकार पड गयी भैयो, अरे वारे डाँग्डर मूगाराम, क्या कहने है! सब इखबारोमे विस्की फोटो छप गयी भैयो, और लाट सावने मूँगारामको पट्ट देनी रायवहादुर बना दीना।'

लाला मूलचन्द कुछ ऊबकर बोले—'बडा डाँग्डर था तो अलबत। पर चाहे जो कह लो, ये तो कुछ डाँग्डरी नही हुई लाला। ये तो हज्जामो-का काम हुआ। नाकका वाल काटके फेक दीना, बस, इसमे कोई दवा-दारू विन्ने थोडी दीनी जो डाँग्डरी होती।'

'जरा सुनो तो, जरा इनकी वातें सुनो भैया, लाला मूलचन्दकी। कहवै है, डाँग्डरी ही नइ हुई ये। अरे तो विनका मुकाबला क्या तुम्हारा ये दो कौडीका मेवालाल करेगा ससुरा खुसकैट? दुनिया-भरके डाँग्डर तो आके विस्के पैर छू गये। ह्याँ ताजबीबीके रोजेपर ससुरी गाडन पाल्टी कीनी—चाह और शराब और सोडा पिलाया म्हराज। और तुम कहो हो कि डाग्डर ही नही था वो। यो कहो मूलचन्द कि गाहक भगवानका रूप होवै है, नही तो म्हाराज—भैयो, मिस्टर मूँगाराम डाँग्डर रायवहादुर, एक वार कलकत्ते तसरीफ ले गये। कलकत्ता ससुरा बडा मुलक, छाजा-वाजाके यही वगला देसका। व्हाँ पै एक रहीम था ससुरा वगाली मासा। अटक गयी नालेके गलेमे काही मछली, रात दिन हाय-हाय चीखे। मिस्टर मूँगाराम डाग्डरने जाते ही विने तरकैट कर दीना।

अब ससुरा हुआ क्या भैया, कि म्हई कलकत्तेमे एक वगालचा पानी-के साथ कनखजूरा पी गया था। और कनखजूरा विसकी आँतोमें चिपकके बैठ गया। हर घडी मजेमे आँतोसे माँस नोच-नोचके खाय और तरकैट वने

साला। इधर वो बंगाली बाबू दिनपर दिन दुमकैंट होता चला जाय। बड़े-बड़े इलाज कराये साब विस्ने, पर वो अच्छा ही न होवे। एक दिन बिचारा बड़े बजारमे खड़ा-खड़ा रो रहा था। इत्तेमे मिस्टर मूँगाराम डॉग्डर टमटम पै सैर करनेको निकले। किसीने बता दीना कि मूँगाराम जा रहे हैं। वैसै हाँ फीस तो इन्होकी बड़ी डबल है पर मिनटोमे चंगा कर सके हैं। बंगाली बाबू गरीब हो गया था इसी बीमारीके पीछे, जिसके पास फीसके रूपे कहाँ थे। पर विसे भी माल्लेको जाने क्या सूझी कि आव देखा न ताव, खट्ट देनी जाके विन्होकी टमटमके अगाड़ी लेट गया। सहीसने घबड़ाके रास खैंची और विसे डाँटके कही कि अबे, क्या जान दे रहा है, सुमकैंट ! पर वो माने ही नही। बोला 'अब तो डॉग्डर मूँगाराम ही मेरी बाँह पकड़े तो उठ सकूँ हूँ, नही तो मर तो रह्या ही हूँ। बड़ी भीड़ें जमा हो गयी थी चारो तरफ। डॉग्डर मूँगाराम साब टमटमसे उतरे भैयो। विन्ने कही, क्यो भई क्या बात है ?

बंगाली बाबूने खट्टसे विनके पैर पकड़ लीने और हाथ जोड़के कही—'यो यो हाल है मेरा गरीब परवर कि आज छै महीने हो गये, क्या हो गया है, मेरे पेटमे जैसे आरी चले है दिन-रात, और मैं तड़पूँ हूँ सारा इसीमें। बाप-दादोकी जो कुछ थोड़ी-भौत पूँजी थी सो सब साली इसी बीमारीमे फोकस कर दीनी। पर कुछ भी नही हुआ। साब मैं तो मर रह्या हूँ।'

ये कहके वो रोने लगा, भैयो !

मूँगारामने कही—'तो फिर अस्पताल जाओ।'

विस्ने कही कि सारी दुनिया तो दौड़ आया साब। अब तो आपका शरनमे हूँ। कहो तो ज़िन्दा रहूँ कहो तो मर जाऊँ।

चार आदमी और विसकी सिफारस करने लगे कि हजूर, आपका जस गायगा। दया कर दो इस पै। बिचारा बड़ा दुखी रहे है।

डॉक्टर मूँगारामको भैयो, कुछ दया आ गया। और भी, ...

मोची भैयो, हजारो अमीरो-रहीसोसे लाखो-करोडो कमाऊँ हूँ, एकको यो ही सही। जबतक जिएगा जस गायेगा। ये सोचके विन्ने कही, अच्छा, छिपकली लाओ पकडके और एक गोस्तकी गोली।

फौरन मात्र दौडके गया और दोनो चीजें लाके हाजर कीनी। अब मूँगारामने विस बगालीकी आँखोमे पट्टी बँधवायी। फिर विससे कही अच्छा, अब तू नेक म्हो फाड दे। विन्ने साव गप्प देनी म्हो फाड दीना।

मूँगाराम डाग्डरने क्या करी कि वो गोस्तकी गोली जो थी सो विसके म्होमे रख दीनी और छिपकली म्हाराज अपना सिकार लेने लपकी और फट्ट देनी पेटके अन्दर। तिलमिला गया भैयो बगालचा साला। और चार आदमी भी हाहाकार मचा उठे कि अरे, ये क्या कीना मूँगाराम डाग्डरने, विसके पेटमें छिपकली उतार दीनी। अब इत्तेमें क्या हुआ भैयो, कि छिपकलीने आँतोमे पाँचके ससुरे कनखजूरेको पकडा। वडा जोर लगाया साव विस्ने—महीनोंसे चिपका हुआ था साला, छोडे ही नही।—अन्तमे साव छिपकलीने भी जोर लगाया और विसे खैंचके म्होमे रख लीनी। दरदके मारे वगाली मासा वेहोस होके गिर पडा साला। लोगोने समझी कि मर गया। सब लोग मूँगाराम डाँग्डरको घेरके खडे हो गये और कहने लगे, तुम मूँगाराम डाग्डर होगे तो साले अपने घरके होगे। तुमने हमारे वगाली मासाको मार क्यो डाला? मूँगारामने डाँटके कही—नेक खडे रहो, अभी देखो क्या होवे है। इत्तेमे साव वो छिपकली जो थी सो कनखजूरेको दवाये वगाली वावूके म्होसे वाहर कूदी।

मूँगारामने सवको दिखाके कही देखो, इसके पेटमे कनखजूरा था, इसी कारन ने यु खसकैंट हो रह्या था। समझे? अब ये छिपकली इसे निकाल लायी।—जाओ फलानी दवाई ले आओ, दौडके। मै अभी गैंडा वनाये हूँ मारेको।

छिन-भरमें दवाई पिलाके सालेको ऐसा तरकैंट कर दीना कि साला लुप्प देनी खडा होके भूख भूख चिल्लाने लगा। भूख वगाली मसहूर होवे

है भैयो—सालेने पसेरी-भर पूड़ियाँ खाके फिर गैडे ऐसी डेकार लीनी।

तो ऐसे थे मूँगाराम डाँग्डर। रायबहादुर थे महराज। सिविल लैन पे कोठी है विन्होंकी। क्या समझे लाला मूलचन्द!'

लाला मूलचन्द डाँग्डर मूँगारामसे अब अच्छी तरह प्रभावित हो गये दीखते थे, बोले—'हाँ-हाँ साब! बड़े भारी डाँग्डर थे मूँगाराम। बड़े नाम थे विन्होंके। मैंने भी अपने लड़कपनमें विनकी भौत नाम सुनी थी। और ये जो मेवालाल है न लाला, ये विन्होंका ही तो शागिर्द है। दवाखानेमें फूलोंका हार डालके तस्वीर लटका रक्खी है मूँगारामकी।'

सेठ बाँकेमलको भी अब जैसे मेवालालकी योग्यतापर भरोसा हो गया, बोले, 'हाँ-हाँ, साब काबिल क्यों नहीं होगा। भलो जे भी कोई बात है। बड़े झण्डे गाड़ रक्खे हैं मेवालालने तो। आजकल अपने उस्तादका इकबाल दूना कर रह्या है। गुरू गुड़ ही रह गये, चेला सगुरा साकर हुआ जाय है। हे हे हे!'

हँसते हुए सेठ पान लगाने बैठे। लाला मूलचन्द दुपट्टा सँभालके पलथी बदलते हुए बोले—'और कहो लालाजी, कैसा बजार है आजकल। ये लड़ाईके कारन लोगबागोंकी जेबें खाली फौरन हो रही हैं। अबके गल्ला भी कच्ची रही गुरू—आइए हुजूर। आइए साब, कम कम! सिट् डौन साब। अरे लल्लू साबके ताईं कुरसी रक्खो जल्दीस।'

लल्लूने फौरन् ही कोठरीमें दो काठकी कुरसियाँ निकालकर रख दीं। पंजाबी साहब और मेम साहब वहाँ बैठ गये।

•

कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'वेढब'

# दाढ़ी और प्रेम

कभी आपने दाढ़ी बढ़ते देखा है ? अभी आज आपने सेवनोक्लाकसे खूब चेहरेको सिमेण्टकी गचके समान रगड़कर चिकना बनाया। कल सवेरे कटे हुए अरहरके खेतके समान खूँटियाँ निकल आयीं। कब निकलीं, इसका पता नहीं। जिस प्रकार दाढ़ीका निकलना कोई नहीं देख सकता, अनायास किसी सचेतन भावकी जागृतिके बिना नव विकसित कदम्बके फूलके समान कच प्रस्फुटित हो जाता है उसी प्रकार किसी तैयारीके बिना, किसी निर्देशकके बिना प्रेम उत्पन्न हो जाता है। कल दोपहर तक आप भले-चंगे थे। दिनको कढ़ी बननेके कारण एक रोटी अधिक भी खायी थी। लेटे भी अच्छी तरह थे, तीन बजे चाय पी, उसमें चीनी कम थी। इसका भी अनुभव आपको हुआ। सन्ध्याको बाहरसे घूमकर आप आये, बैठे बैठाये प्रेम हो गया। भूख ही नहीं है। बढ़िया कटहलकी तरकारी बनी है, थालीमें बाग-बाज़ारके दो रसगुल्ले भी हैं, किन्तु एक पूरीसे अधिक आप खा नहीं सके। आपको यह ख़याल नहीं है कि कुरता आपने कहाँ उतारा और उसमें-का पेन गिर पड़ा कि ज्योंके त्यों है। पहले तो आप हिन्दू जातिके समान चिन्तामुक्त होकर सोते थे। अब तो नींद ही नहीं आ रही है। कभी आप छतकी कड़ियाँ गिनते हैं, कभी चादरकी सिकन गिनते हैं, कभी अलजबराके प्रश्न हल करने लगते हैं।

दाढ़ी और प्रेममें इतना ही साम्य नहीं है। आरम्भमें दाढ़ी काली रहती है। प्रेम भी यौवनमें वासनापूर्ण होता है। यौवन प्रेमका अन्तिम ध्येय वासनाके अतिरिक्त और क्या हो सकता है। कमसे कम पार्थिव प्रेम

तो होता ही है। कदाचित् शुक ऐसा कोई युवक संसारमें हो जो प्रारम्भमें ही दैहिक भोग-विलासकी ओर दृष्टिपात न करता हो। इसलिए हमें दाढ़ी और प्रेममें बड़ी समता दिखाई देती है। और यह समता यहीं नहीं समाप्त होती। ज्यों-ज्यों दाढ़ी समयके पथपर बढ़ती जाती है उसका कालापन दूर हो जाता है और कृष्णपक्ष समाप्त होकर शुक्लपक्षके सुधाकरके समान उसमें प्रकाशकी किरणें फूटती हैं। उसी प्रकार प्रेमपर भी ज्यों ज्यों पुरातन-पनकी मुहर लगती जाती है, वह घुलता जाता है और लौकिक प्रेमसे उठकर देश प्रेम, विश्व-प्रेम भगवद्भक्तिकी ओर उन्मुख होता जाता है। प्रेम भी समयकी गति पाकर उज्ज्वल हो उठता है। यदि वह क्षणिक वासनाका ज्वर न हुआ तो जिस प्रकार, यौवनकी झरबेरीकी झाड़ी समान दाढ़ी प्रौढ़ावस्थामें रेशमके लच्छेके समान कोमल हो जाती है और उसी प्रकार प्रेम भी लौकिक धरातलसे उठकर ईश्वरीय, नैसर्गिक बन जाता है।

कुछ ऐसा जान पड़ता है कि दाढ़ी रखनेवालोंकी ईश्वरसे अधिक निकटता होती है। भक्ति (—जो प्रेम-रसकी ही गाढ़ी चाशनी है—) और दाढ़ीका गहरा सम्बन्ध है। अच्छी दाढ़ी रखनेवाले भक्त होते हैं। इसमें उन लोगोंको छोड़ दीजिए जो शौकिया दाढ़ी रखते हैं और उसे अनेक कोनोंमें अनेक रूपोंमें काट-छाँटकर ठीक करते हैं। बाबा नानक भक्त थे, इसमें किसको सन्देह हो सकता है? रवीन्द्रनाथ, सी० एफ० एण्ड्रूज़, डॉक्टर भगवानदासकी ईश्वर-भक्तिमें किसको सन्देह हो सकता है? पर अनर्थ नहीं समझना चाहिए कि जो लोग दाढ़ी नहीं रखते वह भक्त नहीं होते। कहनेका तात्पर्य यह है कि दाढ़ी और प्रेममें [illegible] है। जो लोग स्वाभाविक रूपमें दाढ़ी रखते हैं वह स्वाभाविक भक्त भी होते हैं।

दाढ़ी और प्रेममें एक और सादृश्य है। दाढ़ी आज बनाइए, कल फिर मौजूद। इसी प्रकार प्रेम भी होता है। प्रेम नहीं [illegible]। प्रेमकी जड़ ज्यों-ज्यों काटिए वह नये सिरेसे जमने लगता है। [illegible]

प्रेमको ईश्वर कहा गया है। ईसाई लोग कहा करते है 'गाड इज़ लव'। इसलाम धर्मके माननेवाले कहा करते है कि दाढी भी अल्लामियांकी नूर है, ज्योति है। दाढी अल्लामियां नही तो उसकी रोशनी ही सही। कुछ तो सही। इसीलिए यहां भी दाढी प्रेम ही का स्वरूप हो गयी। स्त्रियोको दाढी नही होती इसीलिए उनके प्रेममें चचलता होती है।

इसके लिए कोई प्रमाण तो मै नही दे सकता किन्तु ऐसा जान पडता है कि दाढी रख लेनेसे हृदयका प्रेम बाहर निकल पडता है। यदि महात्मा गान्धी और श्रीयुत जिना दाढी रख लेते तो भारतकी समस्या हल हो जाती। दोनोमे प्रेम हो जाता। सारा झगडा मिट जाता। कुछ लोगोकी धारणा है कि दाढी इसलामका प्रतीक है। यह धारणा मिथ्या है। राजा दशरथ और राजा जनकको तो दाढियां थी ही। जिन लोगोने देखा है उनका कहना है कि ब्रह्माको भी दाढी है। इसलिए इसपर मुसलमानोका आधिपत्य नही हो सकता। हां, यह कहा जा सकता है कि अधिक मुसलमान दाढी रखते है इसलिए उनमे अधिक प्रेम है।

जिन लोगोको प्रेममे असफलता मिली हो वह दाढी रखकर परीक्षा करें कि क्या होता है। बहुत सम्भव है कि उन्हें सफलता मिल जाय। दाढीका इतना महत्त्व होते हुए किसी कविने प्रशसा नही की। महाकाव्य तो क्या खण्डकाव्य भी नही, एक गीत नही, एक प्रगीत नही, एक सवैया या एक दोहा भी नही लिखा। इतने महत्त्वकी वस्तु और विद्वानो द्वारा इतनी उपेक्षा! भ्रातृभावके सिद्धान्तोके लिए शूलीपर चढ जानेवाले ईसा-मसीहने दाढी रखी। इसी कारण वह इतने बडे हो सके। बुद्धका धर्म भारतमे क्यो नही पनप सका, क्योकि बोधिसत्त्व प्राप्त होनेके पश्चात् ही उन्होने पाटलिपुत्रमे एक नाई बुलवाकर अपनी दाढी बनवा ली। कुछ लोग कहेंगे कि सन्यासियोके लिए तो दाढी वर्जित है। उन्हें तो ससार ही वर्जित है। मै तो उन लोगोकी बातें कर रहा हूं जो ससारमे रहते है, ससारके है। ऐसे पुरुषोके बहुत-से उदाहरण दिये जा सकते है जिन्होने दाढी नही

रखी किन्तु ससारमे सफल हुए। सो तो सम्भव है। किन्तु दाढी रखकर कोई असफल हुआ, ऐसा उदाहरण कहाँ मिलेगा। यदि ऐसा कोई हो भी तो पहले यह देखना चाहिए कि उसकी दाढी बनावटी तो नही है, या उसने ज़बरदस्ती तो दाढी नही रख ली है। मनमे नही रखी होगी। पता लगाइए। दाढी बाल ही नही, बल है और सबल है।

•

# मुग़लोंने सल्तनत बख़्श दी

हीरोजीको आप नही जानते, और यह दुर्भाग्यकी बात है। इसका यह अर्थ नही कि केवल आपका दुर्भाग्य है, दुर्भाग्य हीरोजीका भी है। कारण ? वह बड़ा सीधा-सादा है। यदि आपका हीरोजीसे परिचय हो जाय तो आप निश्चय समझ लेगे कि आपका ससारके एक बहुत बडे विद्वान्से परिचय हो गया है। हीरोजीको जाननेवालोमे अधिकाशका मत यह है कि हीरोजी पहले जन्मम विक्रमादित्यके नव-रत्नोमे एक अवश्य रहे होगे और अपने किसी पापके कारण उनको इस जन्मम हीरोजीकी योनि प्राप्त हुई। अगर हीरोजीका आपसे परिचय हो जाय, तो आप यह समझ लीजिए कि उन्हे एक मनुष्य अधिक मिल गया, जो उन्हे अपने शोकमे प्रसन्नतापूर्वक हिस्सा दे सके।

हीरोजीने दुनिया देखी है। यहाँ यह जान लेना ठीक होगा कि हीरोजी-की दुनिया मौज और मस्तीकी ही बनी है। शराबियोके साथ बैठकर उन्होने शराब पीनेकी बाजी लगायी है और हरदम जीते है। अफीमके आदी नही है पर अगर मिल जाय तो इतनी खा लेते है जितनीसे एक खानदानका खानदान स्वर्गकी या नरककी यात्रा कर सके। भग पीते है तब-तक, जबतक उनका पेट न भर जाय। चरस और गांजेके लोभमे साधू बनते-बनते बच गये। एक बार एक आदमीने उन्हे संखिया खिला दी, इस आशाम कि ससार एक पापीके भारसे मुक्त हो जाय, पर दूसरे ही दिन हीरोजी उसके यहा पहुँचे। हँसते हुए उन्होने कहा, 'यार कलका नशा नशा था। राम दुहाई, अगर आज भी वह नाश्ता करवा देते, तो तुम्हे

आशीर्वाद देता।' लेकिन उस आदमीके पास सुतिया मौजूद न थी।

हीरोजीके दर्शन प्राय: चायकी दूकानमें हुआ करते थे। जो पहुँचता है वह हीरोजीको एक प्याला चायका अवश्य पिलाता है। उस दिन जब हम लोग चाय पीने पहुँचे तो हीरोजी एक कोनेमें आँख बन्द किये हुए बैठे कुछ सोच रहे थे। हम लोगोंमें बातें शुरू हो गयी और हरिजन आन्दोलनसे घूमते-फिरते बात आ पहुँची दानवराज बलिपर। पण्डित गोवर्धन शास्त्रीने आमलेटका टुकड़ा मुँहमें डालते हुए कहा—'भाई यह तो कलियुग है न किसीमें दीन है न ईमान। कौड़ी-कौड़ीपर लोग बेईमानी करने लग गये हैं। अरे, अब तो लिखकर भी लोग मुकर जाते हैं। एक युग था, जब दानव तक अपने वचन निभाते थे, सुरों और नरोंकी तो बातें ही छोड़ दीजिए। दानवराजने वचनबद्ध होकर सारी पृथिवी दान कर दी थी। पृथिवी ही काहेको, स्वयं अपनेको भी दान कर दिया था।'

हीरोजी चौंक उठे। खाँसकर उन्होंने कहा—'क्या बात है? जरा फिरसे तो कहना।'

सब लोग हीरोजीकी ओर घूम पड़े। कोई नयी बात सुननेको मिलेगी इस आशामें मनोहरने शास्त्रीजीके शब्दोंको दोहराना शुरू किया—'हीरोजी, ये गोवर्धन शास्त्री जो हैं सो कह रहे हैं कि कलियुगमें धर्म-कर्म सब लोप हो जायगा। त्रेतामें तो दैत्य बलि तकने अपना सब कुछ [illegible] वचनबद्ध होकर दान दिया था।'

हीरोजी हँस पड़े। 'हाँ, तो यह गोवर्धन शास्त्री [illegible] हुए और तुम लोग सुननेवाले, ठीक ही है। लेकिन हमसे सुनो, यह तो [illegible] है त्रेताकी बात। अरे, तब तो [illegible] बलिने [illegible] था [illegible]। मैं कहता हूँ कलियुगकी बात। कलियुगमें तो एक आदमीने [illegible] बात-को उसकी सात-आठ पीढ़ी तक निभाती गयी और [illegible] नष्ट हो गयी, लेकिन उसने अपना वचन नहीं तोड़ा।

हम लोग आश्चर्यमें आ गये। हीरोजीकी बात समझमें [illegible]।

पूछना पड़ा—'हीरोजी, कलियुगमे किसने इस प्रकार अपने वचनोका पालन किया ?'

'लौंडे हो न !' हीरोजीने मुँह बनाते हुए कहा—'जानते हो मुगलोकी सल्तनत कैसे गयी ?'

'हाँ, अँगरेजोने उनसे छीन लिया।'

'तभी तो कहता हूँ कि तुम सब लोग लौंडे हो। स्कूली किताबोको रट-रट बन गये लिखे-पढे आदमी। अरे, मुगलोने अपनी सल्तनत अँगरेजो-को बख्श दी।'

हीरोजीने यह कौन-सा नया इतिहास बताया ? आँखे कुछ अधिक खुल गयी। कान खडे हो गये। मैने कहा—'सो कैसे ?'

'अच्छा तो फिर सुनो।' हीरोजीने आरम्भ किया—'जानते हो शाहन्शाह शाहजहाकी लडकी शाहजादी रोशनआरा एक दफे बीमार पडी थी। और उसे एक अँगरेज डॉक्टरने अच्छा किया था। उस डॉक्टरको शाहन्शाह शाहजहाँने तिजारत करनेके लिए कलकत्तेमे कोठी बनानेकी इजाज़त दे दी थी।'

'हाँ, यह तो हम लोगोने पढा है।'

'लेकिन असल बात यह है कि शाहज़ादी रोशनआरा—वही शाहन्शाह शाहजहाँकी लडकी—हाँ, वही शाहज़ादी रोशनआरा एक दफे जल गयी। अधिक नही जली थी। अरे हाथमे थोडा-सा जल गयी थी, लेकिन जल तो गयी थी, और ठहरी शाहज़ादी। बडे बडे हकीम और वैद्य बुलाये गये। इलाज किया गया, लेकिन शाहज़ादीको अच्छा कौन कर सकता था ? सो कोई न कर सका—न कर सका। वह शाहजादी थी न ! सब लोग लगाते थे लेप, और लेप लगानेसे होती थी जलन। और तुरन्त शाहज़ादी धुलवा डालती उस लेपको। भला शाहज़ादीको रोकनेवाला कौन था। अब शाहन्शाह सलामतको फिक्र हुई ! लेकिन शाहज़ादी अच्छी हो तो कैसे ? वहाँ तो दवा असर करने ही न पाती थी।

उन्ही दिनो एक अँगरेज घूमता-घामता दिल्ली आया। दुनिया देखे हुए, घाट-घाटका पानी पिये हुए, पूरा चालाक और मक्कार। उसको शाहजादीकी बीमारीकी खबर लग गयी। नौकरोको घूस देकर उसने पूरा हाल दरियाफ्त किया। उसे मालूम हो गया कि शाहजादी जलनकी वजहसे दवा धुलवा डाला करती है। सीधे शाहन्शाह सलामतके पास पहुँचा। कहा कि मै डॉक्टर हूँ। शाहजादीका इलाज उसने अपने हाथमे ले लिया। उसने शाहजादीके हाथमे एक दवा लगायी। उस दवामे जलन होना तो दूर रहा, उलटे जले हुए हाथमे ठण्डक पहुँची। अब भला शाहजादी उस दवाको क्यो धुलवाती? हाथ अच्छा हो गया। जानते हो वह दवा क्या थी?' हम लोगोंकी ओर भेद-भरी दृष्टि डालते हुए हीराजीने पूछा।

'भाई, हम दवा क्या जानें?' कृष्णानन्दने कहा।

'तभी तो कहते है कि इतना पढ़ लिखकर भी तुम्हे तमीज न आयी। अरे वह दवा थी वैसलीन—वही वैसलीन, जिसका आज घर-घरमे प्रचार है।'

'वैसलीन! लेकिन वैसलीन तो दवा नही होती।'—मनोहरने कहा।

'कौन कहता है कि वैसलीन दवा होती है? अरे उसने हाथमे लगा दी वैसलीन और घाव आप ही-आप अच्छा हो गया। वह अँगरेज बन बैठा डॉक्टर और उसका नाम हो गया। शाहन्शाह शाहजहाँ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उस फिरंगी डाक्टरसे कहा—माँगो। उस फिरंगीने कहा—हुजूर मै इस दवाको हिन्दुस्तानमे रायज करना चाहता हूँ। [illegible] हिन्दुस्तानमें तिजारत करनेकी इजाजत दे दें। बादशाह [illegible] सुना कि डॉक्टर हिन्दुस्तानमे इस दवाका प्रचार करना चाहता है, [illegible] प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—मंजूर! और कुछ माँगो। [illegible] डॉक्टरने जानते हो क्या माँगा? उसने कहा—हुजूर, मैं [illegible] चाहता हूँ, जिसके नीचे इस दवाके पीपे इकट्ठे किये जायँ। [illegible] यह फरमा दें कि उस तम्बूके नीचे जितनी जमीन आयगी, [illegible]

फिरंगियोंको बख्श दी। शाहन्शाह शाहजहाँ थे सीधे-सादे आदमी, उन्होंने सोचा, तम्बूके नीचे भला कितनी जगह आयेगी। उन्होंने कह दिया—मंजूर।

हाँ, तो शाहन्शाह शाहजहाँ थे सीधे-सादे आदमी, छल-कपट उन्हें आता न था। और वह अँगरेज था दुनिया देखे हुए। सात समुद्र पार करके हिन्दुस्तान आया था न! पहुँचा विलायत, वहाँ उसने बनवाया रबड़का एक बहुत बड़ा तम्बू और जहाजपर तम्बू लदवाकर चल दिया हिन्दुस्तान। कलकत्तेमे उसने वह तम्बू लगवा दिया। वह तम्बू कितना ऊँचा था, इसका अन्दाजा आप नही लगा सकते। उस तम्बूका रंग नीला था। तो जनाब वह तम्बू लगा कलकत्तेमे, और विलायतसे पीपेपर पीपे लद-लदकर आने लगे। उन पीपोमे बैसलीनकी जगह भरा था एक-एक अँगरेज जवान, मय बन्दूक और तलवारके। सब पीपे तम्बूके नीचे रखवा दिये गये। जैसे-जैसे पीपे जमीन घेरने लगे, वैसे-वैसे तम्बूको बढ़ा-बढ़ाकर जमीन घेर दी गयी। तम्बू तो रबड़का था न, जितना बढ़ाया, बढ़ गया। अब जनाब तम्बू पहुँचा पलासी। तुम लोगोंने पढ़ा होगा कि पलासीका युद्ध हुआ था। अरे सब झूठ है। असलमे तम्बू बढ़ते-बढ़ते पलासी पहुँचा था, और उस वक्त मुगल-बादशाहका हरकारा दौड़ा था दिल्ली। बस, यह कह दिया गया कि पलासी-की लड़ाई हुई। जी हाँ, उस वक्त दिल्लीमे शाहन्शाह शाहजहाँकी तीसरी या चौथी पीढ़ी सल्तनत कर रही थी। हरकारा जब दिल्ली पहुँचा, उस वक्त बादशाह सलामतकी सवारी निकल रही थी। हरकारा घबराया हुआ था। वह इन फिरंगियोंकी चालोंसे हैरान था। उसने मौका देखा न महल, वहीं सड़कपर खड़े होकर उसने चिल्लाकर कहा—जहाँपनाह गजब हो गया। ये बदतमीज फिरंगी अपना तम्बू पलासी तक खीच लाये है और चूँकि कलकत्तेसे पलासी तककी जमीन तम्बूके नीचे आ गयी है, इसलिए इन फिरंगियोंने उस जमीनपर कब्जा कर लिया है। जो इनको मना किया तो इन बदतमीजोंने शाही फरमान दिखा दिया। बादशाह सलामतकी सवारी

रुक गयी थी। उन्हें बुरा लगा। उन्होंने हरकारेसे कहा—मियाँ हरकारे, म
कर ही क्या सकता हूँ। जहाँतक फिरंगियोंका तम्बू गिर जाये, वहाँतककी
जमीन उनकी हो गयी, हमारे बुजुर्ग यह कह गये हैं। बेचारा हरकारा
अपना-सा मुँह लेकर वापस गया।

हरकारा लौटा, और इन फिरंगियोंका तम्बू बढ़ा। अभीतक तो आते
थे पीपोंमें आदमी, अब आने लगा तरह तरहका सामान। हिन्दुस्तानका
व्यापार फिरंगियोंने अपने हाथमें ले लिया। तम्बू बढ़ता ही रहा और
पहुँच गया बक्सर। इधर तम्बू बढ़ा और उधर लोगोंको घबराहट बढ़ी।
यह जो किताबोंमें लिखा है कि बक्सरकी लड़ाई हुई, यह गलत है। भाई,
जब तम्बू बक्सर पहुँचा, तो फिर हरकारा दौड़ा।

अब जरा बादशाह सलामतकी बात सुनिए। वह जनाब दीवाने खासमें
तशरीफ रख रहे थे। उनके सामने सैकड़ों, बल्कि हजारों मुसाहब बैठे थे।
बादशाह सलामत हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे, सामने एक साहब जो शायर
शायर थे, कुछ गा-गाकर पढ़ रहे थे और कुछ मुसाहब गला फाड़-फाड़कर
'वाह, वाह' चिल्ला रहे थे। कुछ लोग तीतर और बटेर लड़ा रहे थे।
हरकारा जो पहुँचा तो यह सब बन्द हो गया। बादशाह सलामतने पूछा—
मियाँ हरकारे, क्या हुआ—इतने घबराये हुए क्यों हो? हाँफते हुए हरकारे-
ने कहा—जहाँपनाह, इन बदजात फिरंगियोंने अंधेर मचा रखा है। वह
अपना तम्बू बक्सर तक खींच लाये। बादशाह सलामतको बड़ा ताज्जुब
हुआ। उन्होंने अपने मुसाहबोंसे पूछा—मियाँ, हरकारा कहता है कि
फिरंगी अपना तम्बू कलकत्तेसे बक्सर तक खींच लाये। यह किस तरह मुमकिन
है? इसपर एक मुसाहबने कहा—जहाँपनाह, ये फिरंगी जादू जानते हैं,
जादू! दूसरेने कहा—जहाँपनाह, इन फिरंगियोंने जिन्नात पाल रखे हैं—
जिन्नात सब कुछ कर सकते हैं। बादशाह सलामतकी समझमें कुछ बात आयी
नहीं। उन्होंने हरकारेसे कहा—मियाँ हरकारे, तुम बतलाओ यह तम्बू किस
तरह बढ़ आया। हरकारेने समझाया कि तम्बू रबड़का है। इसपर [illegible]

सलामत बड़े खुश हुए। उन्होंने कहा—ये फिरंगी भी बड़े चालाक हैं, पूरे अक्लके पुतले हैं। इसपर सब मुसाहबोंने एक स्वरमें कहा—इसमें क्या शक है, जहाँपनाह बजा फरमाते हैं। बादशाह सलामत मुसकराये—अरे भाई किसी चोबदारको भेजो, जो इन फिरंगियोंके सरदारको बुला लावे। मैं उसे खिलअत दूँगा। सब मुसाहब कह उठे—वल्लाह जहाँपनाह एक ही दरियादिल हैं—इस फिरंगी सरदारको जरूर खिलअत देनी चाहिए। हरकारा घबराया। वह आया था शिकायत करने, वहाँ बादशाह सलामत फिरंगी सरदारको खिलअत देनेपर आमादा थे। वह चिल्ला उठा—जहाँ-पनाह! इन फिरंगियोंने जहाँपनाहकी सल्तनतका एक बहुत बड़ा हिस्सा अपने तम्बूके नीचे करके उसपर कब्जा कर लिया है। जहाँपनाह! ये फिरंगी जहाँपनाहकी सल्तनत छीननेपर आमादा दिखाई देते हैं। मुसाहब चिल्ला उठे—ऐं, ऐसा गजब? बादशाह सलामतकी मुसकराहट गायब हो गयी। थोड़ी देर तक सोचकर उन्होंने कहा—मैं क्या कर सकता हूँ? हमारे बुजुर्ग इन फिरंगियोंको उतनी जगह दे गये हैं, जितनी तम्बूके नीचे आ सके। भला मैं उसमें कर ही क्या सकता हूँ। हाँ, फिरंगी सरदारको खिलअत न दूँगा। इतना कहकर बादशाह सलामत फिरंगियोंकी चालाकी अपनी बेगमातसे बतलानेके लिए हरमके अन्दर चले गये। हरकारा बेचारा चुप-चाप लौट आया।

जनाब उस तम्बूने बढ़ना जारी रखा। एक दिन क्या देखते हैं कि विश्वनाथपुरी काशीके ऊपर वह तम्बू तन गया। अब तो लोगोंमें भगदड़ मच गयी। उन दिनों राजा चेतसिंह बनारसकी देखभाल करते थे। उन्होंने उसी वक्त बादशाह सलामतके पास हरकारा दौड़ाया। वह दीवान-खासमें हाजिर किया गया। हरकारेने बादशाह सलामतसे अर्ज की कि वह तम्बू बनारस पहुँच गया है और तेजीके साथ दिल्लीकी तरफ आ रहा है। बादशाह सलामत चौंक उठे। उन्होंने हरकारेसे कहा—तो म्याँ हरकारे, तुम्हीं बतलाओ, क्या किया जाये? वहाँ बैठे हुए दो-एक उमराओंने कहा—

जहाँपनाह एक बहुत बड़ी फौज भेज दी जाये। हम लोग जाकर लड़नेको तैयार हैं। जहाँपनाहका हुक्म-भर हो जाये। इस तम्बूकी क्या हकीकत है, एक मर्तबा आसमानको भी छोटा कर दे। बादशाह सलामतने कुछ सोचा, फिर उन्होंने कहा—क्या बतलाऊँ, हमारे बुजुर्ग शाहंशाह शाहजहाँ उन फिरंगियोंको तम्बूके नीचे जितनी जगह आ जाये, वह बख्श गये हैं। फरमा-यनामाकी रूसे हम लोग कुछ नहीं कर सकते। आप जानते हैं, हम लोग अमीर तैमूरकी औलाद हैं। एक दफा जो जबान दे दी, दे दी। तम्बूका छोटा कराना तो गैरमुमकिन है। हाँ, कोई ऐसी तरकीब निकाली जाये, जिससे ये फिरंगी अपना तम्बू आगे न बढ़ा सकें। उसके लिए दरबार-आम किया जाय और यह मसला वहाँपर पेश हो।

इधर दिल्लीमें तो यह बातचीत हो रही थी और उधर ईस्ट इण्डिया कम्पनी-का तम्बू इलाहाबाद, इटावा ढकता हुआ आगरे पहुँचा। दूसरा हरकारा दौड़ा। उसने कहा—जहाँपनाह, वह तम्बू आगरे तक बढ़ आया है। अगर अब भी कुछ नहीं किया जाता, तो ये फिरंगी दिल्लीपर भी अपना तम्बू तानकर कब्जा कर लेंगे। बादशाह सलामत घबराये—दरबार-आम किया गया। सब अमीर-उमरा इकट्ठा हो गये, तो बादशाह सलामतने कहा—आज हमारे सामने एक अहम मसला पेश है। आप लोग जानते हैं कि हमारे बुजुर्ग शाहंशाह शाहजहाँने फिरंगियोंको उतनी जमीन बख्श दी थी, जितनी उनके तम्बूके नीचे आ सके। इन्होंने अपना तम्बू [illegible] लगाया था, लेकिन वह तम्बू है रबड़का, और और फिर ये लोग तम्बू आगरे [illegible] लाये। हमारे बुजुर्गोंसे जब यह कहा गया, तब उन्होंने कुछ [illegible] न समझा, क्योंकि शाहंशाह शाहजहाँ अपना [illegible] हम लोग अमीर तैमूरकी औलाद हैं और अपने [illegible]। अब आप लोग बतलाइए क्या किया जाय। अमीरों और सल्तनतवालोंने [illegible]—[illegible] फिरंगियोंसे लड़ना चाहिए और इनको सजा देना चाहिए। [illegible] छोटा करवाकर कलकत्ते भिजवा देना चाहिए। बादशाह सलामत [illegible]—

लेकिन हम अमीर तैमूरकी औलाद हैं। हमारा कौल टूटता है। इसी समय तीसरा हरकारा हाँफता हुआ बिना इत्तला कराये ही दरबारमें घुस आया। उसने कहा—जहाँपनाह, वह तम्बू दिल्ली पहुँच गया। वह देखिए, किले तक आ पहुँचा। सब लोगोंने देखा। वास्तवमें हजारों गोरे खाकी वरदी पहने और हथियारोंसे लैस, बाजा बजाते हुए तम्बूको किलेकी तरफ खींचते हुए आ रहे थे। उस वक़्त बादशाह सलामत उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—हमने तै कर लिया। हम अमीर तैमूरकी औलाद हैं। हमारे बुजुर्गों-ने जो कुछ कह दिया, वही होगा। उन्होंने तम्बूके नीचेकी जगह फिरंगियों-को बख्श दी थी। अब अगर दिल्ली भी उस तम्बूके नीचे आ रही है, तो आये। मुग़ल सल्तनत जाती है, तो जाये, लेकिन दुनिया यह देख ले कि अमीर तमूरकी औलाद हमेशा अपने कौलकी पक्की रही है। इतना कहकर बादशाह सलामत मय अपने अमीर-उमरावोंके दिल्लीके बाहर हो गये और दिल्लीपर अँगरेजोंका कब्जा हो गया। अब आप लोग देख सकते हैं, इस कलियुगमें भी मुगलोंने अपनी सल्तनत बख्श दी।'

हम सब लोग थोड़ी देर तक चुप रहे। इसके बाद मैंने कहा—'हीरोजी, एक प्याला चाय और पियो।'

हीरोजी बोल उठे—'इतनी अच्छी कहानी सुनानेके बाद भी एक प्याला चाय? अरे महुवेके ठर्रेका एक अद्धा तो हो जाता।'

•

# कुछ वर्गवाद

वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, मनोगियों और वी० पी० से माल भेजनेवालों—सभीने अपने-अपने ढंगसे मानव-जातिका वर्गीकरण किया और अपने अपने स्थानपर, अपनी-अपनी सीमाओंके अन्दर, उनके बनाये हुए वर्ग मान्य भी हो सकते हैं। विज्ञान और दर्शनमें हमारी पहुँच उतनी ही है कि बस—किसीसे पूछा गया कि 'भई, तैरना कितना जानते हो?' तो बोला कि 'कुछ लोग बिना हाथ पैर हिलाये डूब सकते हैं, हम उनसे पहले जरा हाथ पैर मार लेंगे।' और जहाँतक वी० पी० मालका प्रश्न है, हमने वी० पी० छुड़ाये ही छुड़ाये हैं और एक-आध तो ऐसा भी छुड़ाया है कि उसमें से माल ही नहीं निकला। फिर भी हमने मोटे तौरपर मानव जातिको दो वर्गोंमें बाँटनेका जो भारी आविष्कार किया है, वह इतना भारी है कि उसका गुरुत्व हमीं पहचानते हैं।

साधारणतया मानव दो प्रकारके होते हैं—[illegible] मानव और [illegible]-मानव। कहीं आप इन पशु विशेषणोंसे समझ कि हम [illegible]—तो याद दिला दें कि प्राचीन सामुद्रिक [illegible] श्रेणियोंमें बाँटा, वे आठों पशु-श्रेणियाँ ही थीं—[illegible] हो और हमारा अभिप्राय यह है कि मानवोंमें [illegible] जाती है—कुछको कुत्ते अच्छे लगते हैं, कुछको बिल्लियाँ। [illegible] अच्छे लगते हैं, पर यह निर्णय करना [illegible] पसन्द आवर्तित होती रहती है, या कभी [illegible] ( और एक जिनको ) अच्छे लगते हैं। यह जिज्ञासा अब भी [illegible],

कभी अगर हमने इसकी पडताल करनेका प्रयत्न किया भी, तो शोधके साधनोंने योग नही दिया—कभी कुत्तेने बिल्लीको खदेड दिया, तो कभी बिल्ली ही कुत्तेपर ऐसी खिसियाकर झपटी कि कुत्ता दुमकी लँगोटी लगाता हुआ भाग गया और फिर कभी दीखा नहीं—जैसे नकली साधु जिस मुहल्लेमे उनकी पोल खुल जाये वहाँ फिर कभी नही आते।

वैसे अनुमान तो यही है कि दोनो एक साथ शायद ही किसीको अच्छे लगते है। समकालीन मुहावरेमे कहे कि लोग या तो कूकुरवादी होते हैं, या बिलारवादी। सुना है कि अँगरेज लोग कुत्ते भी बहुत पालते है और बिल्लियाँ तो इतना कि इगलिस्तानमें हर तीन परिवारोपर दो बिल्लियोकी पडत आती है— पर अँगरेज तो समझौतावादी जाति है, इसलिए उसका दृष्टान्त काम नही देना।

दोनो मतवादियोके कुछ लक्षण विशिष्ट होते है। हमारे एक विश्लेषण-पटु मित्रका दावा है कि पुरानी कहावतको बदलकर यह कहना चाहिए कि 'हमें बता दो कि किसीका कुत्ता ( या बिल्ली ) कैसा ( या कैसी ) है, और हम बता देंगे कि वह आदमी कैसा है।'

साधारणतया बिलारवादी अन्तर्मुखी होते है। वे चिन्ताशील बहुत होते है, पर अपने हमारे विचारोकी चरचा कम करते है, और अपनी गति-विधिमे हस्तक्षेप सहन नही कर सकते। उनमे स्नेह करनेकी शक्ति कम हो, ऐसा नही, पर वे प्रदर्शन कम करते हैं। कुछ उनमे सत्तालोलुप भी होते हैं, और सत्ताकी साधनामे कहीसे कही तपस्या कर सकते है। पर साधारणतया उनका सहज सयमित जीवन उनके स्वस्थ आत्मानुशासनका ही परिणाम होता है।

और कूकुरवादी ? बहिर्मुखी और प्रगल्भ, सवेदनशील और अपनी सवेदनाओका अनयत प्रदर्शन करनेवाले, सीधे-सादे, अल्प-सन्तोषी प्राणी होते है। बातोमें उन्हे प्रेम होता है, कभी कुछ अच्छी बात कह जाते है तो उससे स्वय इतने प्रभावित हो जाते है कि बार-बार दोहराते है। आपने

देखा है कि कुत्ता भी फेंकी हुई गेंद या लकड़ी उठाकर ले आता है तो उसे मालिकके पास रखकर किस अदासे उसके लिए शाबाशी माँगता है, और दाद न मिलनेसे वह अत्यन्त अप्रतिभ हो जाता है।

आप कहीं समझें कि हम कुत्तेके स्वभावका मानवपर आरोप कर रहे हैं, और यह वैसी ही बात हुई कि चुकन्दर खानेसे रक्त बढ़ता है या कि तोतेकी जीभ खानेसे आदमी बहुत बोलने लगता है। लेकिन यह बात हमारा आविष्कार नहीं है। स्वयं कूकुरवादी कुत्ते और मनुष्यके गुणोंकी तुलना किया करते हैं—और निर्णय भी कुत्तेके पक्षमें दिया करते हैं। ऐसी एक उक्ति प्रसिद्ध है। 'जितना अधिक मैं मानवोंको जानता हूँ, उतना ही मैं कुत्तोंसे प्रेम करता हूँ।' बात गहरी मालूम होती है, और बहरहाल कहनेका ढंग तो चमत्कारपूर्ण है ही—कूकुरवादी इससे कितने प्रसन्न होते हैं, क्या ठिकाना। और बहुत-से लोग जो कुत्तोंसे न मालूम स्नेह करते हैं या नहीं पर मानव-द्वेषी जरूर हैं, इस वाक्यको प्रमाण-वाक्य मानकर चलते हैं—इसके बाद मानवके पक्षमें सोचनेको कुछ उनके पास रह ही नहीं जाता।

हमें सदैव यह लगा है कि इस कथनकी कुछ पड़ताल करनी चाहिए। पहला प्रश्न तो यह है कि जब आप कहते हैं कि आदमीकी निस्बत आपको कुत्ता अधिक प्रिय जान पड़ता है, तब 'आदमी' वर्गमें क्या आप अपनेको भी गिन लेते हैं, या कि विचारककी तटस्थताकी आड़ लेकर अपनेको छोड़ देते हैं? अगर ऐसा है तो जनाब, आप आत्म-प्रवंचक हैं, और आदमीसे कुत्तेको अच्छा बतानेका आपका यह [illegible] इसीलिए है कि आप अपनेको दोनोंसे अच्छा मानते रहे हैं—आपका [illegible] प्रच्छन्न आत्मश्लाघा है।

और अगर ऐसा नहीं है, आप अपनेको अलग नहीं कर रहे हैं, और 'मानवको जानने' से अभिप्राय स्वयं अपनेको जानना भी है—यानी अगर आप यह कहना चाहते हैं कि जितना आप अपनेको जानते हैं उतना ही आप कुत्तेको अधिक प्रिय समझते हैं, तो यह [illegible]

सकता है, पर प्रश्न यह रह जाता है कि आप तो कुत्तोसे प्रेम करते है पर क्या कुत्ते भी आपसे प्रेम करते है ? और यहाँ आकर हम पाते हैं कि यह फिर आत्म-समर्थनका ही एक रूप है। हर आदमी मूलत अपनेको मजनूँ मानता है, मुहब्बतके नामपर मिट जानेवाला! जो मनुष्यको अपना प्यार नही दे सकते वे इसीपर इतराते हैं कि हम कुत्तेसे इतनी मुहब्बत करते है।

वास्तवमे मनुष्य है बडा अहम्मन्य प्राणी, और कुत्तेको स्वामिभक्तिका जो इतना बडा घटाटोप उसने खडा किया है, वह वास्तवमे उसकी अहम्मन्यताका ही प्रतिविम्ब है। स्वामिभक्ति अर्थात् मेरे प्रति भक्ति! कर्तव्य-निष्ठा, अर्थात मेरे प्रति निष्ठा। अगर उसके अहकी पुष्टि उसके निकट इतना महत्त्व न रखती होती, तो क्या वह इस बातको अनदेखी कर सकता कि बुनियादी मूल्योमे स्वामिभक्तिसे कही अधिक महत्त्व स्वातन्त्र्य-प्रेमका है ? दयाके दो टुकडोपर निरन्तर दुम हिलाते पीछे फिरनेवाला कुत्ता महान् है, स्वामिभक्त है, क्योकि दुत्कारनेपर भी लौट आता है और तलुए चाटता है और बरसो आपके इशारोपर हाँ-हुजूर करनेवाला तोता दुष्ट है, नाशुकरा है, क्योकि कभी भी मौका पाकर उड जाता है और फिर आपकी ओर कानी आँख नही देखता! क्यो साहब, आप ही क्या दुनियाके केन्द्र है कि आपके प्रति लगाव ही जीव मात्रके धर्मकी कसौटी हो जाये ? कुत्तेकी दासत्व-स्वीकृतिको आप आदर्श मानें, बिल्लीकी निस्सगताको अकृतज्ञता, और तोतेके स्वाधीनता-प्रेमको इतना हेय समझें कि विश्वासघातीको आप कहे तोताचश्म—कैसा अधेर है!

हम तो तोतेकी निष्ठाको चातककी निष्ठासे कम नही मानते। तोतेको बन्दी रखिए, खिलाइए-पिलाइए, जैसा आप बुलायेंगे बोलेगा। एक दिन पिंजरेसे निकल जाने दीजिए, बस फुर्र हो जायेगा। फिर कहाँका रोटी-चूरमा और कहाँका मिट्ठूपन। नुकदसे सुखद दासत्व भी जिसके स्वातन्त्र्य-प्रेमको न भरमा सके, वही तो स्वातन्त्र्य-निष्ठ है, नही तो थोडी-बहुत रुपक स्थापक तो साँकलपर बँधा पालतू कुत्ता भी कर लेता है।

वर्गोंका आधार श्रम-सम्बन्ध है, यानी मालिक-चाकरके, काम देने और लेनेवालेके सम्बन्ध, यही मानकर हम चलें तो कुत्ते-बिल्लियोंके मामलेमे हम और भी दिलचस्प परिणामोंपर पहुँचते है ।

हमारे-जैसे नाई-टहलुए, नौकर-चाकर, भगी-भिश्ती, सईस-खिदमतगार होते है—और हाँ, कुत्ते-बिल्ली आदि पालतू जानवर भी होते है—उमी प्रकार ( अगर जैसा कि हमने कहा, शुद्ध श्रम-सम्बन्धोंके आधारपर वर्ग-विभाजन करते हुए देखें तो ) इन पालतू जानवरोंके भी होते हैं। हम क्योंकि मानवोंकी भाषा बोलते है, और भाषा सामूहिक अहकी अभिव्यक्तिका प्रमुख माध्यम होनेके नाते जिसकी भाषा होती है, उसकी नैतिक मान्यताओं और भावनामूलक आग्रहोंसे बँधी होती है, इसलिए हमे इन सम्बन्धोंपर कुत्ते या बिल्लीकी दृष्टिसे विचार करनेमे कठिनाई होना स्वाभाविक ही है। नही तो यह कहकर बतानेकी आवश्यकता न होती कि अच्छे खानदानी कुत्ते-बिल्लीके भी इसी प्रकार चाकर-टहलुए होते है। सामन्तोंके पीठमर्द होते थे तो बिल्लियोंके भी कर्णकण्डूयक होते हैं और राजाके पीछे पीछे उसका पल्ला उठाये चलनेवाला कोई कचुकी होता है तो कुत्तेके पीछे-पीछे उसकी साँकल सँभाले चलनेवाला भी कोई होता ही है। रानीका दामन पकडकर चलना बडे गौरवकी बात समझी जाती है, कुत्तोंकी साँकल सँभाले जो लोग पार्क-बगीचोंमे घूमते नजर आते हैं कोई उनकी मुद्रापर ध्यान दे तो यही समझने लगेगा कि वही मुख्य हैं और कुत्ता गौण। यह भी तो इसीलिए है कि देखनेवाले भी मानव हैं और वर्ग चेतनाके कारण एक कुत्तेका पिछलगुआ दूसरे कुत्तेके पिछलगुएको ही पहले देखता है, स्वय कुत्तेको नही। हमारे ही निकट तो इस बातका महत्त्व होता है कि एक कुत्तेकी साकलपर कल्लू बेरा है और दूसरेकी साँकलपर छोटे डिपटी साहब—भले ही कल्लू बेरेके सामने जो कुत्ता हो वह कुक्कुर राजवशी अल्सासी या ग्रेट डेन हो, और डिपटी साहबके आगे निरा भुच्चर। स्वय कुत्तोंको इससे कोई मतलब नही होता, पार्कमे कुत्ता-

न हो, सम्बन्धकारकसे अनुशासित अवश्य है !

जी नही हम बहके नही ! यह तो वर्ग-गत चिन्तनका परिणाम ही है। क्योकि एक बार बांटकर देखने चले तो फिर बांटनेका अन्त नही। जिसे दोमे बांटा जा सकता है उसे चारमे भी बांटा जा सकता है, क्योकि प्रत्येक भागको फिर दोमे बाटा जा सकता है। विश्लेषण-बुद्धिकी यही मर्यादा है। हम बहुत दिनो तक स्वय विश्लेषणवादी नही तो वैसे वादियोके कायल जरूर रहे, पर अन्तमें समझमे आ गया कि प्याजको बहुत छीलनेसे हाथ कुछ नही आता, परतपर परत उतारते हम शून्य तक ही पहूँचते है। तबसे हम समन्वयवादी हो गये है। परतपर परत चढाना ही ठीक मानने लगे है और तबसे तो हम चारो खाने चित्त पडे है जबसे एक समन्वयवादी-ने हमे यह बताते हुए, कि असलमे भेद केवल बुद्धि-भेद है, वैसे सब कुछ एक है, यह दृष्टान्त दिया कि विश्लेषणवादी अँगरेज़ कहते है, 'फाइटिग लाइक कैट्स एण्ड डाग्स'—कुत्ते-बिल्लियोकी तरह लडना, पर कुत्ते-बिल्ली दो नही है, मूलत एक है जिस आधारपर वे टिके है (यानी उनकी दुम) वह एक ही है—दुम दोनोकी कभी सीधी नही होती !

●

जड दिखाई पड़े। उन्हें लगा कि पूर्व और उत्तर मेघ लिखनेके कारण दक्षिण और पश्चिम मेघोंने जैसे प्रतिरोधका अभियान किया हो, अथवा दिङ्नागों अश्वघोषोंकी धुंधुआती ईर्ष्याग्नि जैसे भीमकाय दैत्यका रूप धारण कर बढ़ी आ रही हो, अथवा अभीके अहंकारका पाप ही दानव-सा विराट् होकर दर्प दलनको चल पड़ा हो। सो त्रस्त कालिदासने आँखें मींच ली और आर्तक्रन्दन किया, 'हे मृडेश! हे व्योमकेश! त्राहि, त्राहि! क्षमा करो करुणा-निधान! रक्षा करो शरणागतवत्सल! हे दयानिधान शंकर! त्रिपुरारि!'

और अर्द्धोन्मीलित नेत्रसे कालिदासने देखा कि गरलाम्बुधिकी तरह लहरानेवाला दृष्टिपथका वह काला-सागर अचानक स्वर्ण-धूलिकी तरह चमक उठा है और उसमें तीन ज्योति-रेखाएँ उतरा आयी हैं। आश्वस्त हुए कि त्रिनेत्र ही आ रहे हैं। किन्तु तत्काल वह सागर अरुण हो उठा और तीन ज्योति-रेखाएँ तीन अरुण कुमारियोंमें रूपायित हो उठीं। तत्क्षण कालिदासने आकाशवाणीकी तरह सुना कि कोई कर्कश बादल कड़क उठा है—'पुत्रियो! यही कालिदास है। इन्हें प्रणाम करो।'

इन तीन कुमारियोंमें-से एक जो प्रौढ़ वयसके कारण ज्येष्ठा-सी दीख रही थी, आगे बढ़ आयी। कालिदासने देखा कि शब्द और अर्थके उसके युगल-चरण कोपकी तरह फूले हैं जिसपर थोथे ज्ञानकी गरिमाकी कदली-जंघाएँ शोभित हैं। लक्षणा और व्यंजनाके उरोज आत्म-प्रदर्शनकी तरह पीन तथा पाण्डित्यके समान कठोर उभरे हुए ऐसे प्रतीत हो रहे हैं कि जैसे भोग्य गेहपर 'स्वागतम्' टँगा हो। झपताला और ध्रुपदके बाहु-द्वय और ताण्डव तथा लास्यके हस्त-कमल कितने मनोरम थे! पूर्वका शास्त्र-ज्ञान और पश्चिमका शास्त्र ज्ञान यदि दोनों भौंहोंमें था, तो नेत्रमें रूढ़ि-वादिताका सूनापन और मौलिकताका खोखलापन था। दोनों कर्ण खँडहर-की तरह लटक रहे थे। व्याकरण-सी मोटी नासिका थी और आलापकी तरह उसका मुँह फटा था। तर्क-जाल-सी केश-राशिपर अनेक पुस्तकोंकी सूक्तियाँ रत्नोंकी भाँति जहाँ जगमगा रही थीं।

ज्ञान और अज्ञानके बीच त्रिशंकु बने कालिदासको लगा कि वे अलका-की यक्षिणीके समक्ष तो उपस्थित नहीं हो गये हैं। तभी वह दूसरी कुमारी जो तन्वंगी मध्या नायिका-सी प्रतीत हो रही थी, आगे बढ़ आयी। बड़ी ही कोमल शरीर-यष्टि थी उसकी, जैसे निर्माणमें केवल जल और समीर तत्त्व ही लगे हों। घन-पटपर ज्यों 'बिजलीका फूल' खिल आये, वह मुसकराकर आगे बढ़ी और मधुर गीतकी भाँति बोली, 'हे कवि-शिरोमणि! मैं आपको प्रणाम करती हूँ। इस वन्दनाको स्वीकार करें। देव! हे काव्य-महोदधि! मुझे तो ऐसा लगता है कि जैसे आपके काव्यमें संगीत चित्र होकर जम गया हो, अथवा चित्र ही गीतके रूपमें मुखर हो उठा हो। अथवा जैसे नृत्यकी चंचल मत्त थिरकनें छन्दोंके बाहु-पाशमें आबद्ध निरलस सो गयी हों। भावकी अरूपताको रूपका आसव पिलाकर उन्हें ऐसा घूम-झटक प्रमत्त आपने बना दिया है कि कैसा तो तन्मयकारी आकुल कम्पन आपके साहित्यमें लहरा उठा है! कुछ ऐसा सजग क्रन्दन, कुछ ऐसा चपक लिबलिबापन आपके साहित्यमें है कि मनको गोदकी तरह चपसे चिपका लेता है। सो हे कवि कुल-दिवाकर! नदियोंके कल-कल और पक्षियोंके कलरवमें आपकी ही मुखर प्रशंसा है और वृक्षोंके मर्मर, पवनके सन्-सन्, घण्टेके टिंग्-टिंग् और रण-रण कर बजते हुए ढोल-नगाड़े-मृदंगसे एक ही ध्वनि हौले हौले अथवा तीव्र-तीव्र निर्गत होती है—कालिदास! मशीनें गटगटाती नहीं, कालिदासका उद्घोष करती हैं! रेलगाड़ी 'कालिदास-कालिदास' मन्त्रोच्चारण करती हुई ही चल पाती है! लगता है कि बंगसागरकी तरंगें 'कालिदा, कालिदा' चीख रही हों और गगन-जैसे 'स' बोलकर चुप हो गया हो। मेघ कड़ककर पूछता है, 'श्रेष्ठ कौन?' और बिजली सोनेकी खड़ियासे कृष्णपट्टपर 'कालिदास' लिख जाती है। 'का' पूर्व है, 'लि' दक्खिन है, 'दा' पश्चिम है और 'स' उत्तर है। विश्वका वह श्रेष्ठ आलोचक सूर्य, पूर्व, दक्खिन, पश्चिम तो जाता है, पर उत्तर उससे भी बच जाता है। 'का' ब्रह्मा है, 'लि' विष्णु है, 'दा' शिव

साहित्य अफीम नही, दिमागी ऐय्याशी नही । उसे समाजका निर्माण करना है । वह तो हथौडा है, जो उन पूँजीपतियो, धर्मधुरन्धरोकी औंधी खोपडी फोडता है, जिन्होने समाजमे वर्ग-वैषम्यका विष फैला रखा है और जोक तथा ऑक्टोपसकी तरह जनताको चूस लिया है । मै पूछती हूँ कि मेघदूतके पागल प्रलापसे मिल चल सकती है ? ट्रैक्टर चल सकता है ? आलू बोया जा सकता है ? रोटी बनायी जा सकती है ? शकुन्तला-जैसी निरीह नारीसे भरत जैसा ट्राट्स्कीनुमा प्रतापी पुत्र किस खब्तके दकियानूसी विचारपर पैदा कराया था ? मै तो खुश होती जब प्रत्याख्यानके बाद शकुन्तला दुष्यन्तका गला घोट साम्राज्यशाहीका अन्त करती और साम्यका प्रचार करती । अरे, ऋतुसहार नही, गोति-सहार कराते । और वह रघुवश तो बिलकुल प्रतिक्रियावादी भोंडी कैपिटलिस्ट चीज है। हाँ, 'कुमार-सम्भव'में 'लिबिडो' का मनोरम चित्रण हुआ है । पर कालिदास, तुमने सुपरमैनका स्वप्न न तो देखा, न दिखाया । मुझे खेद है कि तुमने क्वान्तम-सिद्धान्त सापेक्षवाद, फोर्थ डायमेन्शन, मटरियलिज्म, एनीबालिज्म, कैंटेबालिज्म, सेक्सथ्योरी, एक्जिश-टेंशियलिज्म वगैरह पढे बिना और डासकैपिटल, इल्यूजन एण्ड रियलिटी, क्रिएटिव इवोल्युशन, पॉलिटिक्स, पोयटिक्स, डिसेण्ट ऑफ मैन, फिजिक्स, केमिस्ट्री, वायलॉजी, और सायकालॉजी आदि उलटे बगैर ही साहित्य रच डाला । तभी तुम्हारे साहित्यने ससारके वर्ग-सघर्षको मिटानेवाली जन-चेतनाके महा-समुद्रको एक चुल्लू पानी भी नही दिया । ऊफ ! कितना बडी प्रतिभा दिग्भ्रमित हुई ! मै इस व्यर्थता और क्षयकी विराट्ताको देख दग हो गयी थी और उसीपर रिसर्च किया है । अब भी चाहो, तो मेरे सहयोगका लाभ उठा लो । मै समक्ष नत हूँ ।'

सज्ञाकी भाँति सचेत कालिदास यह सुनकर क्रियाके समान सचेष्ट हुए और कडककर बोले, 'तुम लोग कौन हो ? किसकी पुत्रियाँ हो ? तुम्हारे पिता कौन और कहाँ छिप है ?'

उत्तरमे एक आवाज आयी, 'इनका पिता मैं हूँ । छिपा नही हूँ, अपने

# आर्यसमाजी श्वसुर

शादीको पूरे साल-भर भी नही हुए थे कि होली आ पहुँची। होलीमे ठूँठोमे भी जान आ जाती है। फिर मेरे-जैसे भावुक आदमीके जानदार दिलमें स्पन्दन होना अस्वाभाविक नही था। आदमीके जीवनकी एक यह भी आकाक्षा रहती है कि होलीपर ससुरालसे बुलावा मिले। पर ससारमें मूर्खों और कजूसोकी सख्या अधिक होनेके कारण पचानवे प्रतिशत दामादो-की इच्छा अधूरी ही रह जाती है। मैंने अपनेको भाग्यशाली समझा जब श्वसुरजीका लिफाफा हाथमे पडा। पत्रमें केवल चार पक्तियाँ थी—

'चिरजीवी चूडामणि, होलीपर बरेली चले आना। गीता, गायत्रीकी भी यही इच्छा है।' निमन्त्रण सादा ही था। आनेपर ज़ोर नही दिया गया था। फिर भी उसे ठुकरानेके लिए काफी आत्मबलकी आवश्यकता थी, जिसका मेरे पास अभाव था।

यह तो आप जान ही गये कि मेरी ससुराल बरेलीमे है। इतना और बता दूँ कि मेरे श्वसुर जेलर है। है तो नही, रह चुके है, पर जीवनमें एक बार जो जेलर हुआ वह हमेशाके लिए जेलर रह जाता है। जेलरकी बेटीसे मै शादी करनेके लिए इसलिए तैयार हो गया कि कभी बडे घर जाना पडे तो 'बडे घरकी बेटी' काम आयेगी। पर मेरा दुर्भाग्य कि शादीके बाद ही श्वसुर साहबने पेन्शन ले ली। और इस बीच काग्रेसने भी सरकार-से सुलह कर ली और मुझे जेल जानेका और श्वसुर साहबकी मेहमान-दारीका लुत्फ उठानेका मौका नही दिया गया।

शादीके बाद मुझे दो बडी बातें मालूम हुईं। एक तो यह कि मेरे

सुनते ही आलोचकाधिराजके नथुने फूलने लगे और उन्होंने चीत्कार किया, 'रे अश्वघोषके चोर! मालिनका टहलुआ! मैं सम्पादकीयमें तेरी भर्त्सना कराऊँगा। मैं सिद्ध करूँगा कि तू सम्राट् विक्रमादित्य क्या, किसी खोनचेवालेके दरबारमें भी नहीं था, क्योंकि तू कभी पैदा ही नहीं हुआ था।' और फिर तीनों पुत्रियोंने जो प्रहार शुरू किया तो कालिदासका उत्तरीय तार-तार हो गया, केश नुच गये और वे पिण्डके समान पड़ रहे। लगा, कालिदासका 'कालिदा' घिस-पिटकर साफ़ हो गया है, जो बचा था सो 'स' मात्र था—सिसकता, सुबुकता।

तभी शिवजी आ धमके। उन्होंने चारोंके आठ चंगुलोंसे कालिदासको मुक्त किया और उन चारोंको ऐसा खदेड़ा कि वे सप्त-पाताल आदि न जाने किस लोकमें गिरकर चकनाचूर हुए।

कालिदासने कहा, 'प्रभो! प्रभो! बच गया! पितामह! संहार कर डाला था। वह तो वह तो आप पहुँच गये, अन्यथा आज किन्तु देव! मैं कबसे आपका आह्वान कर रहा था, आखिर इतनी देर आप कहाँ थे?'

'अरे, क्या बताऊँ कालिदास, इस आलोचकके पितृ प्रचारकोंने मुझे घूस देकर रोक रखा था।' शिवजीने बतलाया। फिर कहा, 'इन त्रिपुरोंका विनाश अर्थात् समरस सामंजस्यकी स्थापना करनी है, तभी शुद्ध वैज्ञानिक सन्तुलित आलोचनाएँ उद्भूत होंगी।'

•

## आर्यसमाजी श्वसुर

शादीको पूरे साल-भर भी नही हुए थे कि होली आ पहुँची। होलीमे ठूठोमे भी जान आ जाती है। फिर मेरे-जैसे भावुक आदमीके जानदार दिलमे स्पन्दन होना अस्वाभाविक नही था। आदमीके जीवनकी एक यह भी आकाक्षा रहती है कि होलीपर ससुरालसे बुलावा मिले। पर ससारमें सूमो और कजूसोकी सख्या अधिक होनेके कारण पचानवे प्रतिशत दामादोकी इच्छा अधूरी ही रह जाती है। मैने अपनेको भाग्यशाली समझा जब श्वसुरजीका लिफाफा हाथमे पडा। पत्रमे केवल चार पक्तियाँ थी—

'चिरजीवी चूडामणि, होलीपर बरेली चले आना। गीता, गायत्रीकी भी यही इच्छा है।' निमन्त्रण सादा ही था। आनेपर जोर नही दिया गया था। फिर भी उसे ठुकरानेके लिए काफी आत्मबलकी आवश्यकता थी, जिसका मेरे पास अभाव था।

यह तो आप जान ही गये कि मेरी ससुराल बरेलीमे है। इतना और बता दूँ कि मेरे श्वसुर जेलर है। है तो नही, रह चुके है, पर जीवनमे एक बार जो जेलर हुआ वह हमेशाके लिए जेलर रह जाता है। जेलरकी लडकीसे मैं शादी करनेके लिए इसलिए तैयार हो गया कि कभी बडे घर जाना पडे तो 'बडे घरकी बेटी' काम आयेगी। पर मेरा दुर्भाग्य कि शादीके बाद ही श्वसुर साहबने पेंशन ले ली। और इस बीच काग्रेसने भी सरकारसे सुलह कर ली और मुझे जेल जानेका और श्वसुर साहबकी मेहमानदारीका लुत्फ उठानेका मौका नही दिया गया।

शादीके बाद मुझे दो बडी बाते मालूम हुईं। एक तो यह कि मेरे

श्वसुर साहब कट्टर आर्यसमाजी है, दूसरे मेरे श्वसुर साहबके जेलर स्वरूप-का तनिक भी प्रभाव मेरी श्रीमतीजीपर नही पडा है। मेरी श्रीमतीजी जेलर होती तो क्या होता? इस सम्बन्धकी सारी कल्पनाएँ व्यर्थ सिद्ध हुई।

श्वसुर साहबके निमन्त्रणमें तो नहीं, पर गीता और गायत्रीके नामसे जरूर कुछ आकर्षण था, जिससे खिचा। मै ठीक टाइमपर सीधे स्टेशन चला गया। पजाब मेल पकडी। रास्तेमे कोई दुर्घटना नही हुई और मैं बरेली पहुँच गया।

दरवाजेपर ही सालीने और परदेकी ओटमे श्रीमतीजीके मुसकराते हुए चेहरेने जो स्वागत किया तो सारे रास्तेकी थकावट दूर हो गयी और मस्तिष्कमें यह भावना घर कर गयी कि मैं स्वर्गमे हूँ।

'जीजाजी नमस्ते' का जवाब भी मै न दे पाया था कि सामने श्वसुर साहबको खडा पाया। 'तुम आ गये'—जैसे कोई बे-बुलाये आ गया हो।

'जी।'

'अच्छा।'

इसके बाद गीताने मुझे सँभाल लिया। गीता श्रीमती गायत्री देवीकी छोटी बहन थी इसलिए मेरी साली थी। सुन्दर थी इसलिए आकर्षक भी थी। कुमारिका थी इसलिए चुलबुली भी थी। रास्तेकी सारी थकावट गीताकी मीठी बातोने दूर कर दी। नाश्तेके बाद भोजन। इसके बाद श्वसुरजीकी आज्ञा हुई कि थके हो सो जाओ। आज्ञा पालनके लिए बिस्तर-पर गया पर नीद कहाँ? ससुरालमे पहली रात थी। रातको बारह बजे खिडकीसे किसीने सिसकारा—देखा तो गीता खडी थी।

'जीजाजी जग रहे हैं?'

'मच्छर काट रहे है।'

'सो जाइए।'

'नीद नही आ रही है। न तुम '

'जीजी नही आयेगी।'

'क्यों ?'

'पिताजीकी मनाही है।'

'इस मार्शल-लाका क्या मतलब है।'

'सवेरे पिताजीसे पूछिएगा।'

गीता तो उड़न-छू हो गयी और श्वसुरजीको सुबुद्धि आये इसलिए मैं चार बजे तक गीता-पाठ करता रहा। जब कोई नहीं आया तो नींदमें ही आने लगायी। ठीक पाँच बजे किसीने जगाया। पहले कन्धा पकड़कर झकझोरा तो मुझे ऐसा लगा कि कोई अहीर ग्वाला मथनीके स्थानपर मुझे कुण्डेमें घुमाकर दूध बिलो रहा है। मैंने आँख नहीं खोली। दोबारा फिर किसीने झटका दिया तो समूची खाट हिल गयी। मालूम हुआ कि भूकम्प आया है और कोई यक्ष मेरी पलंग उठाकर अफगानिस्तानकी ओर ले जा रहा है। तीसरे झटकेमें किसीने उठाकर बिठा दिया। कानोंमें आवाज आयी—'अजीब लड़का है।' आँख खुली तो देखा सामने श्वसुरजी खड़े हैं। मैंने हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

'बहुत सोते हो। पाँच बजे बिस्तर छोड़ देना चाहिए।'

'जी, ट्रेनकी थकावट थी, नहीं तो मैं रोज घरपर चार बजे ही उठ जाता हूँ।'

'अच्छा घूमने चलोगे ?'

'जी-जी—आज तो नहीं। जरा सरदी हुई है। अपनी बातकी प्रामाणिकता सिद्ध करनेके लिए मैंने रूमालके अन्दर नाक बजाकर दिखा दिया।

'अच्छा, अच्छा।'

श्वसुरजीने पीठ फेरी तो मैंने लिहाफ तानी। बीचमें गीता आयी।

'जीजाजी उठिए, सूर्य देव रहे हैं।'

'मजाक करो, अभी सवेरा नहीं हुआ है।'

मैंने सिर ढक लिया। एक झपकी भी नहीं लगी थी कि किसीने फिर [illegible]। कुछ देर तक चुप रहा और थपकियोंके बीच [illegible] रहा। फिर

'उठो-उठो'का स्वर तीव्र हुआ तो मैं लिहाफके अन्दरमे ही बडबडाया,'मुर्गो-के मारे नींद हराम'—पर सामने देखा तो श्वसुरजी खडे हैं।

'मुर्ग-मुर्ग क्या कर रहे थे जी ?'

'जी, अभी-अभी मुर्गोका एक सपना देख रहा था।'

'मैं चार मीलका चक्कर लगा आया। तुम अभी सो रहे हो। यह आदत ठीक नही।'

'रात मच्छरोने सोने नही दिया।'

'तो मसहरी क्यो नही माँग ली ? गीता, ओ गीता, गीता' पुकारते हुए श्वसुरजी उधर गये तो मैंने बिस्तरसे कूदकर सिगरेट जलायी और सोचने लगा कि अच्छे कटघरेमें आकर फँसा हूँ। इतनेमें श्वसुरजीकी आवाज आयी।

'गीता, यह तम्बाकूकी बू आ रही है ? देख, बाहर कोई नौकर बीडी तो नहीं पी रहा है ? मैंने कितनी बार मना किया कि धुएँसे फेफडा खराब हो जाता है, पर कम्बख्त इतने जाहिल हैं कि इनकी समझमे नही आता।'

श्वसुरजीका वेद-वाक्य सुनते ही मैंने सिगरेट बुझायी और डिब्बीको छातीपर रखकर नालीमे बहा दी। जबतक ससुरालमें रहना है, यज्ञके धुएँके अतिरिक्त और कोई धूम्रपान सम्भव नही। मस्तिष्की फुल बेंचके निर्णयके आगे मै विवश हो गया।

स्नानागारसे निवटकर निकला तो सामने खडी गीता मुसकरा रही थी।

'कहिए कह दूँ पिताजीसे सिगरेटवाली बात।'

'तुम्हारे पाँव पडूँ।'

गीता भाग गयी। कपडे भी नही पहने थे कि श्वसुरजीका जलद-गम्भीर स्वर सुनाई पडा—'बेटा नाश्ता किया ?'

'जी नही।'

'तुम्हारे जीवनमें सयम-नियमके लिए भी कोई स्थान है ? जीवनका

यह आदर्श तो ठीक नही।'

क्या उत्तर दूँ, मेरी समझमें नही आया इसलिए मौन रहा।

'न तुम्हारे सोने-जागनेका नियम है न खाने-पीनेका। इससे स्वास्थ्य-रक्षा सम्भव नही। शरीरकी रक्षा नही हो सकती। तुम व्यायाम करते हो या नही ?'

'जी नही।'

'यह और बुरा है। तुम्हे खुली हवामे थोडी देर कसरत तो करनी ही चाहिए। और हाँ, प्राणायाम मैं बता दूँगा। दो-एक आसन भी तुम्हारे लिए उपयोगी होगे। क्या बताऊँ, मेरा वश चले तो तुम्हें फिरसे गुरुकुल भेज दूँ।' मैंने देखा पीछे खडी गीता मुसकरा रही थी। मैने कहा—'गीताको आपने गुरुकुल नही भेजा ?'

'क्या बताऊँ, गीता बडी अभागी है। जिस साल इसे गुरुकुल भेजने जा रहा था, इसकी माँ चली गयी। फिर इन बच्चियोंको घरसे अलग करनेका साहस नही किया।' जेलर साहबकी आँखे आर्द्र हो चली थी कि गीताने टोका—'जीजाजी नाश्ता।'

'हाँ हाँ ले आओ', श्वसुर साहबने आदेश दिया।

'दूध ताजा पियोगे या गरम करवा दूँ ?'

'दूध नही, चाय पिऊँगा।'

'तुम लोगोकी बुद्धिको क्या हो गया है ? अरे चाय जहर है जहर। अँगरेज जहर भी पिलाते हैं तो हिन्दुस्तानी अमृत समझकर पीना शुरू कर देते हैं। विलायती कम्पनियाँ जिस-जिस चीजका विज्ञापन करती हैं वही हम खाते-पीते हैं। ऐसी मानसिक गुलामी! फिर गान्धीजी कहते थे कि हम स्वराजके योग्य हो गये हैं।

'चाय बुरी चीज तो है ही। मेरी भी कोई खास आदत नही, पर जरा सरदीकी वजहसे। फिर जाने दीजिए।'

'नही, नही, दवाके तौरपर लिया जा सकता है। गीता, ओ गीता! जरा

नौकर भेजकर चाय तो मँगा ले। अच्छा तुम नाश्ता करो, मैं जरा समाज मन्दिर चलता हूँ। स्वामी अभेदानन्द आये हैं। वेदके बहुत बड़े विद्वान् हैं। तुम्हें साथ ले चलता, पर खैर कल चलना। गीता, ओ गीता! दस बज गये और अभी नाश्ता भी खतम नहीं हुआ। हम लोग वक्तकी कीमत तो समझते नहीं। अच्छा हम चलें, तुम नाश्ता कर लो।'

श्वसुरजीने पीठ फेरी तो मैंने नमस्कार किया। श्वसुरजीके जानेके बाद गीता चाय ले आयी। मैंने परदेकी ओटमें किसीको झाँकते हुए देखा। मैंने कहा—गीता, मुझे तो अनुभव होता है कि मेरी शादी शायद तुम्हींसे हुई थी!

'वाह जीजाजी, जीजीजी कहाँ जायँगी?'

गीताने दरवाजेके परदेकी आड़में खड़ी गायत्री देवीको कलाई पकड़कर घसीटती हुई मेरे बगलमें कोचपर लाकर बिठा दिया।

'इनाम लाइए जीजाजी।'

'होलीका इनाम बड़ा टेढ़ा होता है!'

'जाइए, आप बड़े वैसे हैं!'

गीता गायत्री देवीके साथ हमने चाय पी। शामको सिनेमा चलनेका प्रोग्राम तय हुआ।

शामको हम सब कपड़े पहनकर तैयार हुए तो गीताने सूचना दी 'पिताजी, हम सब घूमने जा रहे हैं।'

श्वसुरजीने मेरी ओर देखा।

'तुम भी जा रहे हो?'

'जी।'

'किधर जाओगे?'

'सिनेमाकी तरफ।'

'क्या कहा, सिनेमा देखने जा रहे हो, छि!! सिनेमा भ्रष्टाचार और दुराचारके अड्डे हैं। मेरे सामने सिनेमाका कभी नाम न लेना। अच्छा है,

तुम सब मेरे साथ चलो। आर्य समाजमे साप्ताहिक सत्संग है। स्वामी अभेदानन्दका भाषण है।'

सिनेमासे मुँह मोडकर सब सत्संगकी ओर चले। मुझे यह बेवक्तकी शहनाई और अप्रासंगिक सत्संगका प्रस्ताव अच्छा न लगा। सीढियोंसे उतरते समय एकाएक उफ करके पेट दबाये हुए बैठ गया।

श्वसुरजी दौड़े आये।

'क्या बात है बेटा ?'

'उफ, बड़े जोरोंसे दर्द उठा है पिताजी।'

'पेटमे दर्द है न। बेवक्त नाश्ता, बेवक्त भोजन। दर्द न हो तो क्या होगा। गीता, जरा लवणभास्कर चूर्णकी शीशी ढूँढके लाना।'

श्वसुरके सहारे मैं कमरेमे बिस्तरपर लेटाया गया। गीताने लवण-भास्कर चूर्णकी फंकी लगवायी।

'दर्द कुछ कम है।'

'जी।

'अच्छा तो आज तुम यहीं आराम करो। मैं ज़रा समाज मन्दिर हो आऊँ।'

श्वसुरजीके जाते ही गीता मेरे सिर हो गयी।

'जीजाजी आप भी बड़ी औंधी खोपडीके आदमी है। सारा गुड गोबर कर दिया।'

'भई, मुझे क्या मालूम कि तुम्हारे पिताजी कब किस चीज़से विराट हटे होंगे।'

'लेकिन आपने नाटक अच्छा किया।'

श्रीमती गायत्री देवीको विश्वास नहीं हुआ। मेरे पेटको हल्केसे स्पर्श करती हुई बोली—अब दर्द कैसा है ?

'हल्का-सा मीठा-मीठा-सा है। पहले नहीं, अब आगे दर्द ना है।' मैंने श्रीमतीजीकी उँगलियाँ पकड़कर अपनी छातीपर रख लिया।

गीता खिलखिला उठी। श्रीमतीजीने शरमाकर हाथ खींच लिया।

रातको श्वसुरजी लौटे तो पूछा—

'दर्द कैसा है ?'

'जी ठीक है।'

'रातको खाना मत खाना।'

'जी, खाना खा चुका हूँ।'

'पेटके दर्दके बाद खाना—कोई गँवार होता तो कुछ कहता भी। तुम पढे-लिखे आदमी हो। रातको दर्द उभडे तो परेशान होगे। अच्छा लवण-भास्करकी टिकिया अपने पास रख लो। दो अभी खा लो, दो रातको खाना।' गीताने मेरे बिस्तरपर लवणभास्करकी शीशी लाकर रख दी।

'तुम्हें नीद तो आती है।'

'कुछ शिकायत है।'

'तुम सोते समय सत्यार्थप्रकाशका समुल्लास पढ लिया करो। अच्छा रहेगा।'

श्वसुरजी आलमारी खोलकर एक मोटी-सी पुस्तक ले आये, गर्द झाड-कर मेरे हाथोमे थमा दी। फिर बोले—

'तुम्हारी अवस्था पचीस सालकी होगी।'

'जी नही कुछ कम।'

'ठीक-ठीक बताओ।'

'चौवीस साल तीन महीने।'

'तुम्हें पूरे पचीस साल तक ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए। अच्छा अब सोओ।'

श्वसुरजीके जाते ही सन्नाटा छा गया। गीता और गायत्रीकी आवाज-तक सुनाई नही दी। पूरे बारह घण्टे बाद उल्लूका सवेरा हुआ।

सुबह सवेरे गीताने दर्शन दिया। पीछे-पीछे गायत्री देवी भी थी। नयन-भर दर्शन कर मैने आँख मूँद ली।

'पिताजी कहाँ हैं गीता ?'

'घूमने गये। रात कैसी कटी जीजाजी।'

'गीता-गायत्रीकी माला जपते-जपते।'

'हम लोग भी आपके नामकी माला जप रहे थे। पर जीजाजी! आपका नामकरण करनेमें बुद्धिका अधिक प्रयोग नहीं किया गया है। चूड़ामणि यह भी कोई नाम है। चूड़ा मटरकी खिचड़ीका-सा मजा आता है।'

'बात यह है कि सारी बुद्धि तो तुम्हारे पिताजीके पास चली आयी थी जो तुम लोगोंके नामकरणमें खर्च कर दी गयी।'

'हम लोगोंका नाम बुरा है क्या ?'

'नहीं जी। पर गीता देवी गायत्री देवीका जोड़ा रामायणलाल महाभारतप्रसाद, सत्यार्थप्रकाशसे ही मिल सकता था। मैं तो जरा बेतुका पड़ता हूँ। बात यह है कि न तो मेरा जन्म जेलमें हुआ है न मेरे पिता जज थे।'

'आप तो नाराज हो गये।'

'नाराज नहीं हूँगा। आज होली है। ससुराल आया था। सोचा था तुम दोनोंसे होली खेलूँगा, रंगसे सराबोर करूँगा, पर यहाँ रंगकी कौन कहे, होलीके दिन एक बूँद आँसू गिराना भी मना है। ऐसी होलीसे तो मुहर्रम अच्छा है।'

'पिताजी रंगसे नाराज होते हैं।'

'तुम्हारे पिताजी हैं। किसी दूसरेके पिता होते तो कुछ कहता।'

'नाराज तो हैं ही, पर आपको मनानेकी भी कोई तरकीब।'

'हाँ, एक तरकीब है, कल शामको जाऊँगा। तुम्हारी जीजीको साथ जाना चाहिए। यदि तुम पिताजीसे अनुमति ले सको तो '

'क्या इनाम दीजिएगा ?'

'यही होलीका इनाम।'

'जाइए।'

इतनेमे खड़ाऊँ खटखटाते श्वसुरजी आ गये। मेरे हाथोंमें एक मोटी-सी पुस्तक थमाते हुए बोले—'अभेदानन्दकी नयी पुस्तक है, आत्मदर्शन। जर्मनीसे छपकर आयी है। ज़रा देखो तो।'

'पिताजी, आपके ऊपर रंग किसने डाल दिया!'

'क्या बताऊँ, ऐसे असभ्य गँवार लडकोंमे पाला पडा है। लाख बिगडनेपर भी कम्बख्त कपडा खराब कर ही गये। ठण्डा पानी उड़ेलनेका न जाने यह कैसा त्योहार है। सरदी-जुकाम हो जाये, न्यूमोनिया हो जाये तो सैकडो बिगड जायें। फिर कपडेकी इस तंगीमें रंग डालना मूर्खता है, मूर्खता।'

करीब दो घण्टे बाद नहा-धोकर लौटा तो श्वसुरजीका पहला प्रश्न हुआ—

'पुस्तक देखी?'

'जी हाँ।'

'क्या पढा बताओ।'

'बहुत अच्छी पुस्तक है।'

'सो तो मैं भी जानता हूँ। पढा क्या?'

'पढा नहीं, बाहरसे देखा-भर है।'

'हूँ, लाओ मुझे दो। उपन्यास होता तो अबतक चट कर जाते।'

थोडी देर बाद बोले—

'तुम्हारा पेट खराब है, इसलिए मूँगकी खिचडी बनवायी है। खाओगे न?'

'जी, इच्छा तो नही है।'

'तब मत खाओ। त्यौहारका दिन है। जान बूझकर तबीयत खराब करना ठीक नही।'

वाह री किस्मत। होलीमे मूँगकी खिचडी भी नसीबमें नही। अल्लाह

तेरी कुदरत। ससुराल तेरी न्यामत।

मैं अभी पेटके चूहोंकी कसरत ही देख रहा था कि गीता थाली लगाकर ले आयी।

'थोड़ा-सा खा लीजिए जीजाजी।'

'ले आयी है तो खा ही लो।' श्वसुरजीने भी व्यवस्था दी।

मैंने हाथ बढ़ाया। छोटी-सी खिचड़ी पेटमें उतरी। होलीके पकवानोंकी याद आयी तो हाथ रुक गया। भूखको लात मारकर मैंने थाली हटा दी। किसीने कुछ नहीं कहा। नौकर थाली उठा ले गया।

थोड़ी देरमें एक तश्तरी लिये हुए गीता आयी। आज नयी बात है जो चार दिनों बाद पान-सुपारीके दर्शन हो रहे हैं।

'लीजिए जीजाजी।'

मैंने तश्तरीकी ओर हाथ बढ़ाया तो देखा पानके स्थानपर टिकिया।

'यह क्या है?'

'लवणभास्करकी टिकिया।'

'दो-चार खा लो। नहीं तो पेटमें फिर दर्द हो जायेगा।'

इच्छा न होते हुए भी लवणभास्करकी टिकिया मुखमें रखकर चुभलाने लगा। गीता कनखियोंमें मुसकराहट लिये हुए चली गयी। इधर मेरी झुँझलाहट बढ़ती जा रही थी।

श्वसुरजी आराम-कुरसीपर 'आत्मदर्शन'में आनन्द-विभोर हो रहे थे। [illegible] कब कुछ आध्यात्मिक उपदेश प्रारम्भ हो करनेवाले थे कि मैं [illegible] उठकर स्नानागारके कमरेमें चला गया। वहाँसे [illegible] कमरेमें आया। गायत्री दीदी भी वहाँ थी।

'[illegible], मुझे दर्दसे [illegible] [illegible] नहीं [illegible] अनशन करना होगा।'

'[illegible] [illegible] [illegible] जीजाजी।'

'[illegible] [illegible], मेरी इच्छा हो रही है कि यहाँसे [illegible] [illegible]। [illegible]

साथ दोगी ?'

'नहीं, जीजीको ले जाइए।'

'अच्छा तो अपना वादा पूरा करो।'

गीता ड्राइंग-रूममें चली गयी।

'पिताजी।'

मैं और गायत्री देवी दरवाजेकी सूराखसे अपने भाग्य-निर्णयका फैसला सुन रहे थे।

पिताजीने आत्मदर्शनमें डूबा हुआ गम्भीर चेहरा ऊपर उठाया।

'क्या है गीता ?'

'जीजाजी जीजीको अपने साथ ले जानेके लिए कह रहे हैं।'

'नहीं, उम्रमें अभी दस महीने बाकी है। हम धर्म-पुस्तकोंकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकते।'

सुनते ही दिल बैठ गया। मैंने गायत्री देवीकी ओर देखा और उन्होंने मेरी ओर। किसीके मुखसे एक शब्द भी नहीं निकला। गलती मेरी ही थी जो श्वसुरजीको सही उम्र बताने गया। मुझे क्या मालूम था कि मेरी उम्रका प्रयोग मुझीपर जबरदस्ती किया जायेगा। खैर, गलती हो ही गयी।

गीता निराश लौट आयी।

'और कोई तरकीब है गीता ?'

'नहीं जीजाजी।'

श्वसुरकी जिह्वा सचमुच अखण्ड शिला निकली जिससे टकराकर मैं बैरंग घर वापस आया। कहनेको मैं ससुरालमें होली मनाने गया था। पर अनुभव यह होता है कि बरेली जेलकी हवा खाकर लौटा हूँ।

●

# धर्म-संकट

वे दो थे, पर एक बातमें एकमत थे। वह यह कि पूँजीवाद, समाजवाद और सम्प्रदायवाद—सब वाद-विवाद हैं, इसलिए बाद हैं, और सबसे अधिक निर्विवाद है।

इन दोनोंमें एक बिना किसी भेदभावके हिन्दू था और दूसरा मुसलमान। एकका नाम ललित था, दूसरेका हमीद।

दोनों कभी एक साथ पढ़ते थे और अब एक साथ बेकार थे—अवसर-वादी बेकार। कहनेका मतलब यह है कि वे आरामके साथ बेकार थे।

ये तो दो थे ही।

ये भी दो थीं—

शायद इसलिए कि दोनोंके नामोंमें बहुत-कुछ मेल था : आशा और आयशा। धार्मिक विभिन्नताका भरम छोड़कर, कालेजमें दो सगी बहनोंकी भाँति समय व्यतीत करती थीं। परिणाम यह हुआ कि जो हिन्दू थी वह एक मुस्लिम युवककी सच्चरित्रतासे प्रभावित हो गयी और जो मुसलमान थी वह एक हिन्दू युवकके सदाचारपर लट्टू हो गयी।

आशाने आयशाको अपने भेदकी बात बतलायी, 'मैं चाहूँगी कि मेरा विवाह हो तो हमीद जैसे हीरेके साथ हो।'

और आयशाने अपने हृदयका रहस्य आशाको बतलाया, 'काश मेरी शादी ललित-जैसे लालसे हो सकती।'

कहना न होगा कि प्रत्येकने अपने-अपने हृदयोद्गारके महत्त्वको लम्बी-लम्बी साँसोंसे और भी बढ़ा दिया था। दुःखकी बात यह थी कि इस्लाम

तुम्हारे लिए सुरक्षित रहने दूँगी।'

आयशा बोली, 'और मैं अपने दिलका गला दबाकर अपने ललितको तुम्हारे लिए छोड दूँगी, तुम्हें सौंप दूँगी।'

आशाने आयशाको समझाया, 'तुम्हें दु:ख न होना चाहिए। हमीदके रूपमें तुम्हें दूसरा ललित प्राप्त हो जायेगा।'

आयशाने आशाके आँसू पोंछे 'तुम्हे दिल छोटा न करना चाहिए। तुम्हे दूसरा हमीद मिल जायेगा।'

इस समझौतेसे और कुछ नही हुआ तो कमसे कम इतना तो हो ही गया कि धर्म-परिवर्तनकी नौबत आनेकी जो सम्भावना थी, वह दूर हो गयी।

परन्तु अब नयी कठिनाई उपस्थित हुई। न तो आशाको अपने हमीदका पता-ठिकाना ज्ञात था कि वह उसे आयशाके सुपुर्द करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सकती, न आयशाको अपने ललितका पता मालूम था कि वह उसे आशासे मिलाकर अपने वादेसे छुट्टी पा लेती।

इस प्रकार दोनोंमें-से प्रत्येककी धरोहर बहुत दिनो तक धरोहर ही बनी रही। किन्तु, "जिन खोजा, तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।"

वह दिन भी कितना स्वर्णिम था जब वे दोनो एक साथ सिनेमा देखने गयी हुई थी। वैसे दोनो ही सिनेमा देखना बुरा समझती थी। यह सरासर उनके आदर्शके विरुद्ध था। पर जो नया खेल लगा था उसका नाम 'एकता' था, इसलिए यह बात और थी। फिर भी उन्होने एकताके सम्बन्धमें पूरी एहतियात बरती और जनाने दरजेके टिकिट लिये।

अभी वे अपनी अपनी सीटपर बैठी ही थी कि आशाकी दृष्टि नीचे हॉलमे गयी और वह एक बार चौंककर फिर हर्षातिरेकमे विह्वल होकर बोली, 'उधर देखो, उस सीटपर वह जो युवक बैठा हुआ है वही मेरा हमीद है जो अब तुम्हारा होनेवाला है।'

आयशा भी आशासे कम आश्चर्यान्वित नही हुई और खुशीमे पागल होकर बोली, 'हाँ, देखो न, जो युवक बगलमे बैठा है वह और कोई नहीं,

मेरा ललित है जो अब तुम्हारा होनेको है।'

दोनोंने बिलकुल देरी नहीं की। वे उठकर गयीं और बुकिंग क्लर्ककी पटी-फटी सी आँखोंकी चिन्ता न करके, उन्होंने अपने टिकिट बदलवाये। फिर दोनों सीधे मरदाने दरजेमें जा बैठीं— हमीद और ललितके ठीक पीछे। पहले तो आशा हमीदके पीछेवाली सीटपर बैठी और आयशा ललितके पीछे-वाली सीटपर बैठ गयी पर तुरन्त ही दोनोंने सीटें बदलकर अपनी-अपनी भूल सुधार ली। आशा ललितके पीछे बैठ गयी और आयशा हमीदके पीछे। इसमें सन्देह नहीं कि इस समय दोनों लड़कियोंके कलेजे बाँसों उछल रहे थे। इसकी पुष्टि करनेके लिए शायद किसी डॉक्टरकी आवश्यकता नहीं थी। दोनोंमेंसे एककी भी समझमें सहसा यह नहीं आ रहा था कि ऐसी स्थितिमें क्या कहना चाहिए और क्या करना चाहिए। उनके हृदय अपने-अपने कारागारको तोड़ फोड़कर आकाशमें विचरण करने जा रहे थे लेकिन मुँहोंपर फिर भी ताले लगे हुए थे। निश्चय ही यह बड़ा विकट गत्यवरोध था, जिसने दो अप्सराओंको किंकर्तव्य-विमूढ़ कर दिया। जब और कुछ नहीं सूझा, तब वे बेचारियाँ मन-ही-मन दोनों आदर्शवादी चरित्रनायकोंको अपने-अपने धर्म-के अनुसार प्रणाम और सलाम करके कुछ नहीं तो उनकी सुमधुर वाणीका ही रसास्वादन करने लगीं और इस प्रकार अपनेको धन्य मानकर कुछ सन्तोषका अनुभव करनेके लिए तैयार हो गयीं। पर्वत न सही तो पर्वतकी छाया ही सही।

बुरी तरह खलकर रही ।

अस्तु !

हमीदने अँगडाई लेकर कहा, 'पता नही यह पिक्चर कैसी है ।'

'नाम तो अच्छा है', ललित बोला, 'एकता—वाह !'

'एकताके लिए हम दोनो जो कोशिश कर रहे है, जो जोर लगा रहे है, उसकी तसवीर नही खिच सकती ।'

'अजी, जोर ही नही लगा रहे हैं', ललितने कहा, 'जान लडाये दे रहे है ।'

'ठीक है', हमीदने ललितका हाथ दबाकर कहा, 'मगर हम दुनियाको दिखलाते तो फिरते नही कि हम क्या कर रहे है ।'

कहना न होगा कि पीछे बैठी दोनो लडकियाँ दोनो युवक-शिरोमणियो-के मुखारविन्दोसे निकले वचनामृतके प्रत्येक शब्दको, नही नही, प्रत्येक अक्षरको कान लगाकर सुन रही थी, यद्यपि दोनो मित्र अपनेमे ही बहुत धीरे-धीरे बातें कर रहे थे ।

'दुनिया अन्धी है', ललितने दावेके साथ कहा ।

और आयशाको यह बात अक्षरश सत्य लगी । यह दुनिया व्यक्तिका वास्तविक मूल्याकन कब करती है ?

'हमें इससे क्या गरज ?' हमीदने एक दार्शनिककी भाँति गम्भीर होकर कहा, 'हमें तो अपने काममे काम है ।'

और यह बात आशाके अन्तस्तलमे किसी तपस्वीकी सूक्ति बनकर उतरी और उतरकर बैठ गयी । बस, अपने काममे काम रखना—यही तो कर्मठ मनुष्यका लक्षण है । भगवान् कृष्णका कथन भी आशाको याद आ गया कि फलकी चिन्ता न करके कर्म करना चाहिए ।

दोनो लडकियाने सोचनेको तो यह सोच लिया, किन्तु शीघ्र ही दोनोने मन-ही-मन अपनी भूल, भूलसे उत्पन्न लज्जा और लज्जामे उत्पन्न ग्लानिका अनुभव किया । यदि आयशाको ललितकी किसी बातपर कान न

साढे चौदह रुपये पड़े । यह कुछ कम नही है ।'

यह क्या मामला था ? आयशा चक्करमे पड गयी । कही ऐसा तो नही हुआ कि उसके कान धोखा खा गये थे ?

'कभी कम, कभी ज्यादा' हमीदने कहा। 'यह हाथ लगनेकी बात है। हमे कभी घाटा होनेका कोई डर तो है ही नही कि हम परेशान हो।'

'हमी मजेमे है', ललित बोला। 'हर्र लगे न फिटकरी, फिर भी रग चोखा !'

'कोई मेहनत नही करनी पडती', हमीदने कहा, 'और फिर भी मौजसे कटती है।'

हतबुद्धि आशा और आयशाकी समझमे उन दोनोकी ये बातें बिलकुल नही आ रही थी। एक भ्रमित थी तो दूसरी चकित !

ललितने चाय और नमकीनवाले लडकेको आवाज दे कहा, 'बने रहो मौलाना !'

इतनेमें उन्हें अपने पीछे रेशमी कपडोकी सरसराहट सुनाई पड़ी। दोनोने एक साथ सिर पीछेकी ओर मोडे। ललित आयशाके रूप-माधुर्य-को देखकर दग रह गया तो हमीद आशाके रूप-लावण्यको देखकर। दोनोके मुँहोंसे एक साथ सीटीकी दो हलकी ध्वनियाँ फूट पडी। फिर एकके मुँहसे 'वाह !' और दूसरेके मुँहसे 'गजब है !' ध्वनित हुआ।

किन्तु बहुत-देर हो चुकी थी। कहा भी जाता है कि सौन्दर्य अधिक समय तक नही ठहरता।

एक बार फिर बुकिग क्लर्ककी आँखें फटीकी फटी रह गयी। उसे दो टिकिट दो बार बदलने पडे—इस बार जनाने दरजेके लिए। उसने अपने मनमे कहा, 'आजकलकी इन छोकरियाका कुछ ठिकाना नही। पलमे कुछ, पलमे कुछ ! कभी मरदाना दरजा प्राप्त करना चाहती है कभी जनाना। ऊपर ईश्वरकी और नीचे इनकी लीला अपरम्पार है।'

०

bore) – जो घण्टो आपके पास बैठकर दुनियाके हर विषयपर बके और आपको केवल 'हूँ' कहनेका मौका दे।

मौन बोर (silent bore)—यह घण्टा आपके पास बैठेगा, पर बोलेगा नही। बीच बीचमे अपने आपमे ऊबकर जम्हाई लेगा और कहेगा 'हाँ और क्या समाचार है?' आप कोई समाचार नही कहेंगे, पर वह यह मानकर कि आपने कुछ समाचार कहा है दस मिनिट बाद फिर कहेगा 'हाँ, और क्या समाचार है?'

जिज्ञासु बोर (inquisitive bore)—यह आपके पास बैठकर तरह-तरहके सवाल पूछकर प्राण ले लेगा। एक साँसमे पूछेगा 'वेदान्त दर्शनकी माया और सांख्य दर्शनकी प्रकृतिमें क्या साम्य है?' और दूसरे ही क्षण पूछेगा 'क्यो साहब, नरगिसका क्या पता है?'

साहित्यिक बोर ( literary bore )—इस वर्गमे कवि और लेखक आते है। इन्हें श्रोताको देखकर वही खुशी होती है जो भूखे आदमीको छप्पन प्रकारके भोजनकी थालीको देखकर।

चापलूस बोर (flattering bore)—यह बडा खतरनाक होता है क्योकि यह बडा मोहक होता है, इसलिए कि यह आपकी तारीफ करता है। इसकी पहचान यह है कि यह हमेशा दांत निपोरता रहता है। और इसके मुखसे अक्सर हे हें हे शब्द निकलता है। यह आपकी छींकको भी अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्वकी घटना बतायेगा और कहेगा कि एक बार गौतम बुद्धको भी ऐसी ही छींक आयी थी।

मधुर बोर ( sweet bore ) याने वह रूपवती कोमलांगी जिसका रूप आकर्षक हो और बातचीत निहायत रद्दी। इसके प्रहारसे पैतरा बदलकर बचना चाहिए। उसकी बात सुनने और खूब दिलचस्पी लेनेका नाटक करते हुए उसकी बात बिलकुल न सुनकर रूप-सुधाका पान करते जाना चाहिए।

रिटायर्ड बोर ( retired bore ) वे अवकाश-प्राप्त सरकारी कर-

जिन्दगीमे कई बोर मिले हैं, लेकिन कुछ वर्ष पहले एक ऐसे मिले थे जिनकी याद करके मैं अभी भी चौंक उठता हूँ। मुझे शहरमे आये थोड़ा ही समय हुआ था कि वे मुझे सूँघते हुए एक दिन आ पहुँचे। अपना परिचय दे डाला और मेरा ले डाला। इसके बाद तो वे कभी भी आ जाते। कई चाँदनी राते बरबाद की उन्होंने मेरी। जितना दुःख उन्होंने मुझे दिया उसका एक-तिहाई ही बेचारे रावणने ऋषियोको पहुँचाया था कि रामका अवतार हो गया, पर मेरे लिए एक वानर तक न भेजा गया! लेकिन मुझे रामका सकोच समझमे आया। अगर वे अवतार भी ले लेते तो सीताकी खोज करने तथा रावणसे लडनेके लिए उन्हें एक बन्दर भी न मिलता क्योंकि सब बन्दर इस बोरकी तरफ हो जाते—अपने वशका जानकर।

वे कवि थे, लेखक थे, आलोचक थे और 'मिशनरी बोर' थे। कपड़े अस्त-व्यस्त, दाढी बढी हुई, बाल लम्बे और रूखे, चप्पलें टूटी, बगलमें किताबें। सडकपर चलते तो लगता कि वनमानुष स्टेजपर आदमीकी नकल कर रहा है। नाम था मदन जिसका अर्थ नागरी प्रचारिणीके हिन्दी शब्द-कोषके पृष्ठ २१८ पर कामदेव लिखा है पर आप इन्हें देखे तो आपको लगे कि ये जैसा नाम वैसा गुण इस कहावतके मुँहपर कसकर चाँटा मार रहे हैं। उनका खयाल था कि जो कलाकार जितनी अजब शक्लका होगा वह उतना ही महान् होगा। और इस स्टैण्डर्डसे मदनजी दुनियाके सबसे महान् कलाकार हुए क्योंकि उन्हे देखकर उन्हीके घरका कुत्ता भौंकने लगता था।

वे कविता गाते थे—बहुत रसविभोर होकर। स्वरकी क्या बात है! ऐसा स्वर था कि मुझे लगता था, हिज मास्टर्स वॉयस रेकॉर्ड कम्पनीके रेकॉर्डोपर श्रोताके स्थानपर मदनजीकी फोटो क्या नहीं छपती?

ससार-भरके विषयोपर वे बातें करते थे। ससारकी सब भाषाओंकी किताबें उन्होने पढी थी। किसी भी किताबका नाम लीजिए, वे कहेंगे 'हाँ हमने पढी है। अच्छी है।' एक बार अंगरेजी लेखक स्कॉटपर बात हो

मैं नाईकी दूकान पहुँचा। वाल कटाने कुरसीपर वैठा तो वे मेरे ठीक पीछे बेंचपर वैठ गये। और आईनेमें मेरे प्रतिबिम्बसे बातें करने लगे। मैं आईनेमें उनका चेहरा देखता तो सहम जाता। आखिर मैंने आँखें बन्द कर लीं।

वाल कट चुके। नाईने पूछा, 'वावूजी वाल कट गये ?' मैंने कहा, 'भाई, तुझे वालोंकी पड़ी है, यहाँ मेरी गरदन कट रही है।'

नाईकी दूकानसे उठा तो मैंने सोचा अब मुक्ति मिलेगी। मैंने घड़ी देखकर कहा, 'एक वज गया। अव चलना चाहिए। नमस्ते।' वे बोले, 'घर जाओगे न ?' मैंने कहा, 'हाँ, घर ही जाऊँगा।' वे बड़े सहज भावसे बोले, 'तो चलिए, आपको घर तक पहुँचा दूँ।' मेरा हार्ट फेल होते-होते बच गया। मैंने तिनकेका सहारा लिया। कहा, 'आपको भोजन वगैरह भी तो करना होगा।' वे बोले, 'अरे साहब, जब साहित्य-चरचामें डूब जाता हूँ, तो मेरी भूख-प्यास सब भग जाती है। फिर आपका सत्संग कब मिलना है ?' उस समय मुझे लगा कि ईश्वर यह विश्वास कर लेना तो अच्छा होता। जब उन्होंने हाथीको मगरके चंगुलसे छुड़ाया था तो क्या मुझे ? पर फिर सोचा इस वक्त शैतानका जोर अधिक है, तभी तो मदनजी मुझे मिल गये। मैं घर चला और मेरे साथ रास्ते-भर वे बोलते गये। मेरे घरके सामने फाटकपर कुहनी टिकाकर एक घण्टा उन्होंने फिर मेरा दिमाग चाटा।

आखिर वे बोले, 'अच्छा अब चलूँ।' मुझे वेहद खुशी हुई और मैंने विदाईके उपलक्षमें कहा, 'कभी कुछ लिखिए तो सुनाइए जरूर।' बस वे आधा घण्टा और रुक गये और मुझे साहित्य-रचनाकी कठिनाइयाँ सुनाते रहे। अन्तमें कहने लगे, 'क्या करें परसाईजी, वक्त ही नहीं मिलता। कल ही लिखने वैठा था कि एक महाशय आ गये और घण्टा भर बोर करते रहे।' मैंने मनमें कहा 'हाय रे, तुम कहीं दूसरकी पीर भी समझ सकते। कछु मैरिया पीर हिये परसो।'

तीन वज गया। वे चल दिये। चार कदम चलकर रुके और बोले, 'अभी तो मैंने आपको शरतका एक पहलू बतलाया है। दूसरा पहलू फिर

## समयका व्यापार

आप लोगोंको याद होगा कि कई वर्ष पहले टेक्सिकोमें एक जबरदस्त गृहयुद्धकी खबर आयी थी जिससे संसार-भरमें सनसनी मच गयी थी। किस प्रकार टेक्सिकोके प्रेसिडेण्ट कार्लोसको, जो उस समय लीग ऑव नेशन्सके प्रमुख नेताओंमें-से थे, उनके राजभवनमें उनके कमाण्डर इन चीफ जनरल लोफेगोने घेर लिया था और लगता था कि टेक्सिकोका राष्ट्र टूटे ज्वालामुखीकी तरह फटकर दो टुकडे हो जायेगा। यह सारा समाचार उस समय बडे-बडे शीर्षकोंके साथ अखबारोंमें छपा था। इससे भी अधिक नाटकीय बात यह हुई थी कि टेक्सिकोकी अत्यन्त रूपवती फिल्म ऐक्ट्रेस मिस एक्स्ट्रावेगेंजाने इस समस्याको चुटकियोंमें हल कर दिया और सारे देशमें खुशियाँ मनायी गयी। उसके बाद लोग इस घटनाको इस तरह भूल गये जैसे कभी कुछ हुआ ही नही था और संसारको इससे अधिक कुछ पता भी नही चला।

उस घटनाके पीछे जो कहानी थी वही मैं आज आप लोगोंको सुनाना चाहता हूँ क्योंकि उसकी कुछ बातें मुझे हालमें ही टेक्सिकोसे लौटे अपने मित्र प्रोफेसर वीरेश्वरसे प्राप्त हुई है।

टेक्सिकोका प्रसिद्ध जौहरी बूढा गोमेज जब मरने लगा तो उसने अपने बेटे कार्डिलोको बुलाकर अपनी दूकान, भवन, खजाने आदि सौंप और बडे अनुनय-भरे स्वरमें कहा—'बेटा, जबसे हमारे पुरखे स्पेनसे यहाँ आये तबसे हमारे वंशमें हीरे-जवाहरातका व्यापार होता रहा है। जो कुछ धन सम्पत्ति तुम देख रहे हो वह सब इसीकी बदौलत है। यह सब छोडते मुझे दुःख

## समयका व्यापार

आप लोगोंको याद होगा कि कई वर्ष पहले टेक्सिकोमें एक जबरदस्त गृहयुद्धकी खबर आयी थी जिससे संसार-भरमें सनसनी मच गयी थी। किस प्रकार टेक्सिकोके प्रेसिडेण्ट कार्लोसको, जो उस समय लीग ऑव नेशन्सके प्रमुख नेताओंमें-से थे, उनके राजभवनमें उनके कमाण्डर इन चीफ जनरल लोफेंगोने घेर लिया था और लगता था कि टेक्सिकोका राष्ट्र बूढ़े ज्वालामुखीकी तरह फटकर दो टुकड़े हो जायेगा। यह सारा समाचार उस समय बड़े-बड़े शीर्षकोंके साथ अखबारोंमें छपा था। इससे भी अधिक नाटकीय बात यह हुई थी कि टेक्सिकोकी अत्यन्त रूपवती फिल्म ऐक्ट्रेस मिस एक्स्ट्रावेगेंज़ाने इस समस्याको चुटकियोंमें हल कर दिया और सारे देशमें खुशियाँ मनायी गयीं। उसके बाद लोग इस घटनाको इस तरह भूल गये जैसे कभी कुछ हुआ ही नहीं था और संसारको इससे अधिक कुछ पता भी नहीं चला।

उस घटनाके पीछे जो कहानी थी वही मैं आज आप लोगोंको सुनाना चाहता हूँ क्योंकि उसकी कुछ बातें मुझे हालमें ही टेक्सिकोसे लौटे अपने मित्र प्रोफेसर वीरेश्वरसे प्राप्त हुई हैं।

टेक्सिकोका प्रसिद्ध जौहरी बूढ़ा गोमेज जब मरने लगा तो उसने अपने बेटे कार्डिलोको बुलाकर अपनी दूकान, भवन, खज़ाने आदि सौंप और बड़े अनुनय-भरे स्वरमें कहा—'बेटा, जबसे हमारे पुरखे स्पेनसे यहाँ आये तबसे हमारे वंशमें हीरे-जवाहरातका व्यापार होता रहा है। जो कुछ धन सम्पत्ति तुम देख रहे हो वह सब इसीकी बदौलत है। यह सब जानते हुए

नही हो रहा है। दु:ख इसी बातका है कि कही तुम यह सब लापरवाहीमे न बरबाद कर दो। तुमको मै हमेशा किताबे पढते देखता हूँ। कही तुम किताबोका व्यापार न शुरू कर दो। याद रखो, हमलोग सदासे मूल्यवान् वस्तुओके व्यापारी रहे है। अगर किसी कारण हमारे वशमे सस्ती चीजो-का व्यापार शुरू होगा तो यह तुम्हारे कीर्तिवान् पुरखोके लिए बडे असम्मानकी बात होगी।'

यह चेतावनी देकर बूढा गोमेज मर गया। लेकिन उसे क्या मालूम था कि यह जवान छोकरा कार्डिलो व्यापारके दावँ पेंचमें उससे कही अधिक चतुर और पैनी सूझवाला है। बात यह थी कि कार्डिलो हीरे-जवाहरातसे सन्तुष्ट नही था क्योकि इसके व्यापारी बहुत हो गये थे। वह ऐसी वस्तुका व्यापार करना चाहता था जिससे अधिक मूल्यवान् वस्तु ससारमें न हो और उसके वशका सिक्का दुनियामे हमेशाके लिए बैठ जाये। यह सोचकर कार्डिलो अपनी कितावें उलटने लगा और सब कुछ पढनेके बाद वह इस परिणामपर पहुँचा कि ससारमे सबसे अधिक मूल्यवान् वस्तु समय है।

बस कार्डिलोने समयका ही व्यापार करनेका निश्चय किया। उस चतुर, उत्साही और महत्त्वाकाक्षी नौजवानको यह समझते देर न लगी कि इस व्यापारमे सबसे पहला साझीदार प्रेसिडेण्ट कार्लोसको ही बनाना चाहिए जिनसे अधिक मूल्यवान् समय टेक्सिकोमें किसीका न था। चूँकि कार्डिलोके व्यापारी घरानेकी साख बहुत बडी थी और उसके बाप बूढे गोमेजने प्रेसिडेण्ट कार्लोसके राजनीतिक कामोमे बडी सहायता की थी इस-लिए वह सीधा उनके पास पहुँचा और अपना प्रस्ताव उनके सामने रखते हुए बोला—'हमारे इस व्यापारमें लाभ-ही-लाभ है और हम-आप इस लाभको आधा-आधा बाँट सकते हैं। मै जानता हूँ कि आपका समय बहुत मूल्यवान् है। यदि आपको यह प्रस्ताव स्वीकार हो तो आप अपनी घडी मुझे दे दें।'

प्रेसिडेण्ट कार्लोसके मुखपर एक अभिमानपूर्ण मुसकराहट खेल गयी

और वह गम्भीर स्वरोंमे बोले—'कार्डिलो, तुम्हारा बाप मेरा दोस्त था और तुम्हारी बुद्धिमानी देखकर मैं खुश हुआ हूँ। तुम इस कामके लिए बिलकुल ठीक व्यक्तिके पास आये हो। मैं इस व्यापारमे साझीदार होनेके लिए राजी हूँ। तुम मेरी घडी ले जाओ।'

ऐसा कहकर प्रेसिडेण्ट कार्लोसने अपनी घडी कार्डिलोके सामने कर दी। कार्डिलोके आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि उस घडीमे सूइयाँ नही हैं और घण्टे-मिनिटकी जगह उसमे शताब्दियोंके निशान बने हुए है। उसको चकित होते देखकर प्रेसिडेण्ट कार्लोस फिर मुसकराये और बोले—'कार्डिलो, यह मेरी — प्रेसिडेण्ट कार्लोस — की घडी है। इसमे सूइयाँ इस-लिए नही हैं कि समयका प्रवाह एक दिशामे मानना मैं मूर्खता और दुर्बलता समझता हूँ। मैं इतिहासको आदमीके सामर्थ्यसे बडा नही मानता। हममे यदि पुरुषार्थ हो तो इस बीसवी सदीको मरोडकर पाँचवी और पाँचवीको फैलाकर बाईसवीमे परिवर्तित कर सकते है। इस घडीमे केवल सदियाँ बजती है और वह भी मेरी इच्छापर। सूइयोंका बन्धन व्यर्थ है।'

इस अद्भुत घडीको लाकर कार्डिलोने अपनी दूकानपर रख दिया और समयका व्यापार शुरू किया। इस नये व्यापारकी खबर बिजलीकी तरह फैल गयी। जो भी कार्डिलोकी दूकानपर प्रेसिडेण्ट कार्लोसका समय पूछने आता उसे एक हजार सोनेके डालर देने पडते थे। प्रेसिडेण्ट कार्लोसकी मानसिक स्थितिके अनुसार यह निश्चय हो जाता था कि देशमे इस समय दूसरी शताब्दी बज रही है अथवा बाईसवी। चूँकि प्रेसिडेण्ट कार्लोसके अनु-यायियों और शत्रुओं—दोनोकी ही संख्या बहुत बडी थी और उनके समय पर टेबिसकी ही क्यों संसार-भरका भाग्य निर्भर करता था, इसीलिए कार्डिलोका व्यापार चल निकला और रोज ही उसकी दूकानपर राज-नीतिज्ञों, प्रेस रिपोर्टरों और जनसाधारणकी एक भारी भीड समय जाननेके लिए आने लगी।

कार्डिलो अपने व्यापारको और बढानेकी बात सोच रहा था कि उसे

हाथ एक विचित्र घडी लगी जिससे उसे ऐसा लाभ पहुँचा जिसकी उसने कल्पना भी न की थी। यह घडी टेविसकोके प्रसिद्ध कवि पैसासकी थी। कवि पेसासके जीवनमे केवल दो काम थे — जुआ खेलना और कविता लिखना। एक बार जुएमे सब कुछ हारनेपर पैसासने अपनी घडी दावँपर लगा दी और उसे भी हार गया। यह घडी एक बैंकके मनेजरको मिली जो कार्डिलोका मित्र था। लेकिन जब बैंकके मैनेजरने यह देखा कि इस घडीके चलनेका कोई ठिकाना ही नही है तो उसे बडा दुःख हुआ। हफ्तो वह बन्द पडी रहती और सहसा बिजलीकी तरह एक क्षण चलकर फिर बन्द हो जाती। उसे बिलकुल व्यर्थ समझकर बैंकके मैनेजरने झल्लाहटमे कार्डिलो-को दे डाला। कार्डिलोकी समझमें न आया कि इस घडीका क्या मूल्य हो सकता है जिसका स्क्रू ढीला है। बिना किसी आशाके उसने उस घडीको भी रख दिया। किन्तु उसके आश्चर्यकी सीमा न रही जब दूसरे ही दिनसे साहित्यकारो, सम्पादको और बेतुके प्रोफेसरोकी भीड उसकी दूकानपर इकट्ठा होने लगी। ये लोग उस एक क्षणको जाननेके लिए काफी रकम देते और हफ्तो कार्डिलोकी दूकानपर बैठकर उस बन्द घडीको घूरा करते कि कही ऐसा न हो कि वह चले और वे उस क्षणसे वचित रह जायें। उनका कहना था कि उस एक क्षणमे युग-युगकी असीमता केन्द्रित हो जाती है। इसपर कार्डिलोको बहुत आश्चर्य होता। परन्तु उसे तो अपने व्यापारसे मतलब था, ग्राहकोकी छान-बीनसे नही।

अब तो कार्डिलोने बडे उत्साहके साथ घडियोका सग्रह आरम्भ कर दिया। बडेसे बडे और छोटेसे छोटे आदमियोके पास वह गया और साझेपर उनकी घडियाँ ले आया। हर व्यक्ति उसे बडे जोशके साथ अपने समयका मूल्य बताता और उसके नये व्यापारमे साझीदार बननेमें गौरवका अनुभव करता। उसने मशहूर बुड्ढे गार्ड लॉ पॉजकी घडी प्राप्त की जिसने टेविसकोमे सबसे पहली ट्रेन चलायी थी और जो 'रेलवेका बाबा' के नामसे विख्यात था। जबतक लॉ पॉज नौकरी करता रहा टेविसकोकी सभी ट्रेने



८

समयपर चलती थी। उसके अवकाश ग्रहण करते ही शराब पीनेवाले नये कर्मचारियोंने सारी व्यवस्था गडबड कर दी। यहाँतक कि इसी कारण एक बार टेक्सिको और माटीमालामें युद्ध भी छिड गया था। जब माटीमालाके प्रधान मन्त्री टेक्सिकोके बन्दरगाहपर उतरे तो उनके स्वागतके लिए जानेवाली प्रेसिडेण्टकी ट्रेन सात मिनिट लेट पहुँची और प्रधान मन्त्रीको प्रतीक्षा करनी पडी। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा और बिना मिले वापस चले गये। फलत दोनों राष्ट्रोंमें युद्ध छिड गया जो कई देशोंके बीच बचाव करनेपर शान्त हुआ। टेक्सिकोकी पार्लियामेण्टने विशेष प्रस्ताव-द्वारा बुड्ढे लॉ पॉज़से प्रार्थना की कि वह एक बार फिर अपनी सेवाएँ देशको दे। तब अपनी उम्रके बावजूद लॉ पॉजने फिर एक बार टेक्सिकोकी ट्रेनोंकी व्यवस्था की थी। उस प्रस्तावको अब भी उसने सुनहले फ्रेममें जडवाकर रख छोडा था।

लॉ पॉज़की घडीमें स्टेशनोंकी संख्याएँ बजती थीं और उसपर चमकदार अक्षरोंमें खुदा हुआ था—'ज़िन्दगी एक सफर है जिसमें पडाव ही-पडाव है। मंजिल तो वही है जहाँसे सफर आरम्भ हुआ था।'

धीरे-धीरे कार्डिलाके पास हजारों व्यक्तियोंकी घडियाँ इकट्ठी हो गयीं। रेसकोर्सके निर्णायककी घडी जिसमें सेकेण्ड, सेकेण्डका सौवाँ भाग और हजारवाँ भाग बजता था, फाँसीके जल्लादकी अन्धी घडी जिसमें तभी प्रकाश होता था जब किसीको फाँसी लगनेवाली होती थी, सुप्रीमकोर्टके जजकी घडी जो लंचके समय इतनी ज़ोरसे बजती थी कि सारे बाजारका काम रुक जाता था, अस्पतालके नर्सकी घडी जिसमें रातमें सपने दिखलाई पडते थे, अखबारके सम्पादककी बालूकी घडी जिसमें बस मुट्ठी-भर रेत ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर हुआ करती, इन सबकी एक अच्छी प्रदर्शनी कार्डिलाकी दूकानपर लग गयी। कोई भी ऐसा न बचा जिसने साथ उसने समय व्यापारका साझा न किया हो। उसका व्यापार बहुत बढ गया। सम्पत्तिके साथ उसने यश भी कमाया और सचमुच उसकी पुरस्कारी कीर्ति चारों ओर फैल गयी। सबसे बडी बात यह थी कि इस व्यापारमें लाभ-ही-लाभ था,

घाटेकी कोई सम्भावना ही नही थी। काडिलोका भाग्य-नक्षत्र पूरे तेजसे चमकने लगा और उसकी समृद्धिकी कोई सीमा नही रह गयी।

इस प्रकार काडिलो बडी कुशलता और दूरदर्शितासे अपना व्यापार चला रहा था कि सहसा एक दिन उसके पास टेबिसकोके कमाण्डर इनचीफ जनरल लोफेन्गोका फौजी वारण्ट पहुँचा। चूँकि जनरल लोफेन्गो अपनी क्रूरता और कट्टरपनके लिए प्रसिद्ध थे इसलिए काडिलोके पैरोतलेसे धरती खिसक गयी और वह डरसे काँपता हुआ तुरन्त उनके पास पहुँचा। जनरल लोफेन्गो उस समय अपने कमरेमें बैठे अलास्काकी नायाव शरावकी वोतले गलेमे उँडेल रहे थे और यह कहना कठिन था कि उनकी मोम लगी सख्त मूँछो और लाल आँखोमे-से किसकी चमक ज्यादा थी। जनरल लोफेन्गोने पूरी गिलास खाली करते हुए चीखकर पूछा—'तुम काडिलो हो? क्या मैंने सही सुना है कि तुम समयका व्यापार करते हो?'

काडिलोने डरकर कहा—'जी हाँ।'

जनरल लोफेन्गोने मेजपर इतनी जोरसे दोनो मुट्ठियाँ पटकी कि वोतल उछलकर नीचे जा गिरी और वह चिल्लाये 'वदतमीज जी हाँ करता है कोई वात नही खबरदार वोतल मत उठाओ और तुमने मुझसे पूछा तक नही। क्या मेरे समयका कोई मूल्य नही? तुम्हारा साहस मेरा अपमान करनेका कैसे हुआ? जरूर यह उस घमण्डी कार्लोमकी करामात है। मै उसे समझ लूँगा। और तुम नासमझ लडके, तुम क्या पसन्द करते हो मेरे साथ इस व्यापारमें साझा या मौत?' इसके वाद उन्होने पुकारा—'कोई है? इस सौदागरके लडकेको मौत दिखलाओ।'

आवाज सारे भवनमे गूँजी। वगलके दरवाजेसे दो सिपाही निकले और अपनी वडी-वडी डरावनी राइफलोंका निशाना काडिलोकी ओर करके खडे हो गये। काडिलो थर-थर काँपने लगा। मुश्किलसे उसके मुँहसे इतना निकला—'जनरल मुझे क्षमा करें। आप जो कहेगे मै करूँगा।'

जनरलका पारा कुछ नीचे उतरा। उन्होने कहा—'अच्छी वात है।

कोई है ? मौतको वापस करो और मेरी घडी ले आओ।'

सिपाहियोंने राइफलें नीची कर ली और तेजीसे बाहर गये। जनरल लोफेन्गाने दूसरी बोतल खाली की। थोडी देरमे दस-बारह सिपाही एक बडे पत्थरका चबूतरा लादे हुए कमरेमे आये और उसे एक ओर रखकर 'अटेन्शन' खडे हो गये। कार्डिलोने देखा कि उसपर लोहेकी एक तिकोना चद्दर लगी हुई थी जो इस समय एक लीवरपर बडी तेजीसे नाच रही थी।

जनरल लोफेन्गो बोले—'यह मेरी धूप घडी है। इसे ले जाओ। मैंने अपनी सारी फौजको आदेश दे दिया है कि वह रोज इसे रगडे और तुम अपने उस बेवकूफ कार्लसनसे कह देना कि समयकी सबसे बडी विशेषता यही है कि यह सबका नाश करता है और अन्धकारके गर्तमे डाल देता है। समयका जितना भाग अन्धकारमे डूबा हुआ है उसे नापनेकी चेष्टा करना मूर्खता है। इसीलिए मैं धूप घडीका इस्तेमाल करता हूँ। तुमको मालूम होना चाहिए कि मेरा समय निरर्थक कार्लसनसे ज्यादा मूल्यवान है। मैंने सुना है कि तुम उसका समय एक हजार डालरमे बेचते हो। मेरे समयकी कीमत एक हजार एक डालर होगी। कोई है ? इस घडीको सौदागरकी दूकानपर पहुँचा दो। डिस्मिस।'

जान बचाकर, लेकिन यह नया संकट लेकर कार्डिलो घर आया। उसे समझमे नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। उसने प्रेसिडेण्ट कार्लसनको टेलिफोन किया। लेकिन उसे लगा कि यह सारी सूचना उन्हें पहले ही मिल चुकी थी, क्योंकि जनरल लोफेन्गोका कोई काम छिपा नहीं रहता था। प्रेसिडेण्ट कार्लसनने उत्तर दिया—लोफेन्गो बिल्कुल वाहियात आदमी है। वह मुझसे अपनी तुलना करना चाहता है। तुमको मैं सरकारी आदेश देता हूँ कि उसके समयको नौ सौ निन्यानबे डालरमे बेचना। इस आज्ञाका उल्लंघन नहीं होना चाहिए। और मैं इस आदेशकी सूचना सब ओर भेज रहा हूँ।

इसके पहले कि कार्डिलो अपने पुरखोंको याद करके रो भी सके,

जनरल लोफेन्गोकी सेनाने आकर उसकी दूकानके चारो ओर घेरा डाल दिया और उसे फौजी आदेश सुनाया कि जबतक इसका निर्णय नही हो जाता कि प्रेसिडेण्ट कार्लोस और जनरल लोफेन्गोमे से किसका समय अधिक मूल्यवान् है तबतक व्यापार बन्द रहेगा। शीघ्र ही इस तनावकी सनसनी सारे देशमे फैल गयी। प्रेसिडेण्ट कार्लोसने जनरल लोफेन्गोके विरुद्ध राज-द्रोहका अपराध लगाकर उन्हे बरखास्त कर दिया और जनरल लोफेन्गोने अपनी सेनाको आज्ञा दी कि वह प्रेसिडेण्ट कार्लोसको गिरफ्तार कर ले। एक कवि पैमासको छोडकर, जो अभी भी जुएमे मस्त था, सारा देश दो टुकडोमे बँट गया। अनपढ और मूर्ख जनता कभी एकका पक्ष लेती कभी दूसरेका। स्पष्ट दीखने लगा कि बिना गृहयुद्ध हुए इस अभूतपूर्व प्रश्नका निबटारा असम्भव है। तभी जनरल लोफेन्गोने अपनी सेना-द्वारा प्रेसिडेण्ट कार्लोसको उनके राजभवनमें घेर लिया। इसकी जो अतिरंजित खबरे उस समय अखबारोमें छपी थी, वह सब आपको मालूम ही है।

लेकिन मैं कह चुका हूँ कि अनिन्द्य सुन्दरी मिस एक्स्ट्रावेगेंजाने इस भयानक समस्याका समाधान देखते-ही-देखते कर लिया और टेक्सिकोमें छोकरोसे लेकर बूढे तक जो उसके रूपके प्रशसक थे, उसकी बुद्धिमत्ताका भी लोहा मान गये, क्योकि देशके हितमे जो काम मिस एक्स्ट्रावेगेंजाने किया वह अद्भुत तो था ही, साथ-साथ उस रूपसीकी पैनी सूझका परि-चायक भी था।

हुआ यह कि प्रेसिडेण्ट कार्लोस और जनरल लोफेन्गो दोनो ही मिस एक्स्ट्रावेगेंजासे प्रेम करते थे और उसके अनुग्रहके अभिलाषी थे। राजभवन-पर सफलतापूर्वक घेरा डाल देनेके बाद जनरल लोफेन्गोने फ्रान्सीसी शराब-की तरह बोतले पी डाली और टेक्सिकोका नक्शा लिये हुए अपनी प्रेयसी मिस एक्स्ट्रावेगेंजासे मिलने गये, क्योकि उनका इरादा टेक्सिकोके राज्यको उस रूपवतीके पैरोतले बिछा देनेका था। मिस एक्स्ट्रावेगेंजाने उनसे मिलने-मे विनम्रतापूर्वक असमर्थता प्रकट करते हुए एक छोटा-सा पत्र भीतरसे

उनके पास भेजवाया। उस पत्रमे लिखा था, 'मै अभी व्यस्त हूँ। मेरे पास समय नही है। आपका समय मूल्यवान् है, अत आप इस समय जाये। या यदि बैठ सके तो थोडी देर प्रतीक्षा कर ले।'

जनरल लोफेन्गोने प्रतीक्षा करना ही उचित समझा। विजेता होनेके कारण वे इस समय बहुत पुलकित थे। उनके दिमागमे कवि पैमासकी वे चार पक्तियाँ चक्कर काटने लगी जिनका शीर्षक 'दुर्दमनीय प्रेम' था और जो उन्होने बहुत पहले कही पढी थी। मगन होकर उत्तरमे जनरल लोफेन्गोने वही पक्तियाँ लिखकर भेज दी। 'हे सुन्दरी, तुम्हारे समयके सामने मेरे समयका कोई मूल्य नही है। वस्तुत मेरे समयका मूल्य वही है जो तुम चाहो। मै युग-युग तक प्रतीक्षा करूँगा।' इस प्रकार कवि पैमासकी कविता जनरल लोफेन्गोके काम आयी।

इधर प्रेसिडेण्ट कार्लोसके समर्थकोने राजभवनको घेरनेवाली सेनाको छिन्न भिन्न करके उनको मुक्त कर दिया। मुक्त होते ही वे अपनी प्रेयसी मिस एक्स्ट्रावेगेजाके पास पहुँचे क्योकि उनका इरादा इस विजयकी खुशीमे उसे 'टेबिसकोकी रानी'की उपाधि देनेका था। इस बीच जनरल लोफेन्गो उससे मिलकर जा चुके थे। मिस एक्स्ट्रावेगेजाने वही व्यवहार उनके साथ भी किया और उत्तरमे उनसे भी इसी आशयका पत्र लिखवा लिया।

दोनो पत्रोको लेकर वह निर्भय होकर टेबिसकोकी पार्लियामेण्टमे चली गयी जहाँ देशके तत्कालीन सकटपर गरमागरम बहस छिडी हुई थी और लोगोकी समझमे नही आ रहा था कि बिना गृहयुद्धके इस गुत्थीको कैसे सुलझाया जाये। पार्लियामेण्टमे मिस एक्स्ट्रावेगेजाने घोषणा की, 'माननीय सदस्यो, प्रेसिडेण्ट कार्लोस और जनरल लोफेन्गो दोनोने ही मुझे अपने समय का पच माना है और इसका लिखित प्रमाण मेरे पास मौजूद है। मेरा निर्णय है कि दोनोका समय बराबर मूल्यवान् है, अत और पार्लियामेण्ट आप लोग आदेश दे कि दोनोकी कीमत एक हजार डालर रखी जाय। साथ ही दोनोने यह भी स्वीकार किया है कि मेरा समय उन दोनोसे ज्यादा

मूल्यवान् है। अत मेरी भी घडी कार्डिलोकी दूकानपर रखी जायेगी और मेरे समयका मूल्य बारह सौ डालर रखा जायेगा।'

इस अप्रत्याशित प्रस्तावपर चारो ओर हर्षकी लहर दौड गयी। प्रेसिडेण्ट कार्लोस और जनरल लोफेन्गो दोनो ही सहमत हो गये। सारे देशमे रोशनी की गयी और लोगोने अपने हैट हवामे उछाले। कवि पैसासकी कविताने जो राष्ट्रकी सेवा की थी उसके फलस्वरूप उसे पार्लियामेण्टने राष्ट्रकवि घोषित किया और उसे पचास हज़ार डालर पुरस्कारमे दिया, जिसे उसने शीघ्र ही जुएमे उडा दिया। व्यापारी कार्डिलोपर जो सकट आया था वह न केवल हट गया बल्कि उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी। देश-देशान्तरसे लोग उसकी दूकानपर समय पूछने आने लगे और उसका व्यापार दिन दूना रात चौगुना उन्नति करने लगा।

इस प्रकार कार्डिलोने समयका सफल व्यापार किया। धीरे-धीरे कई बरस बीत गये। प्रेसिडेण्ट कार्लोस स्वर्गगामी हुए और उनके स्थानपर दूसरे प्रेसिडेण्ट आये। जनरल लोफेन्गोको देश-निकाला हो गया और उनकी जगहपर दूसरे जनरल नियुक्त हुए। कवि पैसासको उसके अनुयायियोने मार डाला और जुएके स्थानपर सट्टेबाजीके नये मूल्योकी स्थापना की। मिस एक्स्ट्रावेगेंज़ाका रूप ढल गया और उनका नाम सकुचित होकर केवल मिस एक्स्ट्रा रह गया। परन्तु कार्डिलोका व्यापार बढता ही गया क्योकि हर आनेवाली पीढी अपना समय पिछली पीढीसे अधिक मूल्यवान् समझती है।

एक दिन कार्डिलो अपनी दूकानपर बैठा अपने व्यापारके निश्चित लाभपर विचार कर रहा था कि सामने एक रिक्शा आकर रुका। रिक्शेवालेने घडियोकी दूकान देखकर कहा—'भाई, मेरी घडी रुक गयी है। समय बता दो ताकि अपनी घडी मिला लूँ।'

कार्डिलोने पूछा—'आप किसका समय जानना चाहते है।'

रिक्शेवालेने कहा—'आपका प्रश्न मेरी समझमें नही आया।'

कार्डिलोको अपने इस नये व्यापारमें अक्सर ऐसे अवसर आते थे जब उसे नये लोगोंको अपनी प्रणाली समझानी पड़ती। परन्तु इससे उसको घबराहट नहीं होती थी। एक सफल व्यापारीकी तरह वह ग्राहकोंमें छोटे-बड़ेका अन्तर नहीं मानता था और चतुराईके साथ वह बड़ा विस्तारपूर्वक अपने एक-एक मालकी प्रशंसा करता, इतिहास बतलाता और ग्राहकको चकित कर देता। उस समय उसे असीम सुखकी प्राप्ति होती। उसने रिक्शेवालेको दूकानके अन्दर बुलाया और अपनी हजारों घड़ियोंके बीच उसे घुमाने लगा। बड़े उत्साहके साथ उसने उसे सब कुछ बताया और प्रेसिडेण्टसे लेकर फाँसी जल्लाद तककी घड़ियाँ दिखलायीं। अन्तमें उसने गर्वसे भरकर कहा—'मेरे दोस्त, यह व्यापार मेरा निजी आविष्कार है और इसने मेरी कीर्तिको झोपड़ियोंसे महलों तक प्रकाशित कर दिया है। सबसे बड़ी बात यह है कि इस व्यापारमें लाभ-ही-लाभ है क्योंकि इसमें पाना ही-पाना है, देना कुछ नहीं है। हर समयके अलग-अलग बेचनेवाले हैं और अलग-अलग उनके खरीदार हैं। तुम जिसका समय चाहो जान सकते हो, उसीके अनुसार तुम्हें मूल्य चुकता करना पड़ेगा।'

रिक्शेवाला चकित होकर कार्डिलोके लम्बे व्याख्यानको सुनता रहा। फिर उसने एक ठण्डी साँस ली और कहा—'आदरणीय व्यापारी, मैंने तुम्हारे द्वारा समयकी मूल्यवान प्रदर्शनी देखी और यह भी जाना कि हर [illegible] के समयका मूल्य अलग होता है। इस दुनियामें मैं ही एक अकेला आदमी हूँ जिसके समयका कोई मूल्य नहीं है। मेरे समयका [illegible] सवारीसे लगता है। कभी मैं लोगोंको छुट्टीके दिन [illegible] पहुँचाता हूँ, कभी बूढ़े प्रेमियोंको निरुद्देश्य [illegible] और कभी थके, टूटे हुए मजदूरोंको उनकी झोपड़ीमें [illegible] आता हूँ। [illegible] समयका मूल्य बदलता रहता है। जब मेरे पास कोई सवारी [illegible] और मैं इधर-उधर भटकता रहता हूँ, तब मेरे पास समयका [illegible] होता। मेरे पास यह घड़ी जो तुम देखते हो, मेरे [illegible]

खानमे काम करता था। मैं यह घडी तुम्हारे पास छोडे जाता हूँ। इतने बडे ससारमे अगर कोई ऐसा निकले जो इन मूल्यवान् व्यक्तियोके बीच मुझे भी पूछे तो तुम उससे दाम न लेना बल्कि मेरी ओरसे आभार-प्रकाशके रूपमे यह पच्चीस सण्ट उसे दे देना जो आज दिन-भरकी मेरी कमाई है।'

ऐसा कहकर रिक्शेवालेने दूकानपर अपनी घडी और पच्चीस सेण्ट रख दिये और चलता हुआ। कार्डिलोको पहली बार मालूम हुआ कि समयके इस लाभदायक व्यापारमे सब पाना-ही-पाना नही, कही कुछ देना भी है।

०

तकने अपनी जीवनी अपने हाथो लिखी । वाणभट्टने हर्षचरितमे अपने आवारा होनेमे उच्चकोटिके कवि होने तकका वर्णन किया है। अर्वाचीन् परिपाटीमे कवि होनेसे आवारा होने तकका वर्णन हो तो वह आदर्श जीवनी हो जायेगी । अपने विषयमे वही करता हूँ ।

अर्वाचीन शैलीमे शरीर-सज्जाके वर्णनसे ही संस्मरण प्रारम्भ करनेका चलन है । यथा–

शरीरसे दुर्बल, देखनेमे दरिद्र, एक आँख चमकती हुई, एक आँख मुँदी हुई, मूँछें छोटी-छोटी और अकिंचन—ऐसे है बाबू ।

उसी प्रकार अपनी अनेक स्थितियाके छह चित्र पाठकोकी भेंट करता हूँ ।

लँगोटी लगाये हुए, तनपर भस्म मले हुए, रूखे बाल, फलाहारी ( अर्थात् आमका रस हाथमे और जामुनका रस मुँहपर पोते हुए ) कृष्णानुरागी ( अर्थात् काले-कलूटे ), गोरक्षक ( अर्थात् गाय-बैलोकी चरवाही करते हुए ) शुकदेव समान ( अर्थात् दस वर्षकी आयुमे ही जगलमे घूमनेवाले ), परम प्राकृतरूप—यह मेरी बाल्यावस्था थी ।

लुंगी बाधे हुए, भुजाओमे काला तावीज और गलेमे काला डोरा डाले, शरीरपर कड़ुए तेलकी मालिश किये, भग पिये, भग पीनेवालोसे घिर, भग घोटते हुए, कड़कती आवाजमे कवित्त-सवैयोका पारायण करते हुए, गुरु सेवामे तल्लीन—यह किशोरावस्था थी ।

बढिया ताबदार, पेंचदार, मूँछोमे शोभित मुखमण्डल, रगीन साफा, जोधपुरी कोट, चूडीदार पायजामा, ताम्बूल-चर्वण-सिद्ध कण्ठमे नायिका-सेवी सवैयोका गान, छन्दको अयाचित रूपसे दो बार सुनानेका नियम—यह पूर्व युवावस्था थी ।

गाधी टोपी, कुरता, धोती, चप्पल, छडी, झोला । जो सच है, उसे सच बताते हुए 'सत्यमे लाभ', 'पुरुषार्थकी महिमा', 'आशा और निराशा' आदि विषयोपर कविता लिखते हुए—यह मेरी उत्तर युवावस्था थी ।

रिणी, पल्लविनी, श्लथ विश्लथ, नीहार—जो भी शब्द [illegible] जान पड़ा, उसे रट लिया। उपसर्गका प्रयोग सीखा। समका उपराम, क्रान्तिका संक्रान्ति, हारका प्रहार, आहार, सहार, विहार—सब रटकर जो कविता लिखा तो पूरी लाइनपर डाक गाड़ीकी धमक गूँजने लगा।

एक दिन समाचार सुना कि प्रगतिवादके दफ्तरमें भर्तीका काम जारी है।

लड़ाईके दिन थे। देशके हजारों नौनिहाल बेकाम पड़े सड़ रहे थे। मैंने भी दफ्तरमें जाकर अपना कार्ड बनवाया। हवलदारने हिदायत दी, 'ये जनाना किसमकी कविता नहीं चलेगा। जोश-खरोशकी बात लिखना होगा। मजदूर भूखा है, किसान नंगा है, पूँजीपति पेटू है। तुम कुछ जानता भी है?'

हाथ जोड़कर मैंने कहा 'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।'

उस दफ्तरमें बारह साल काम करते-करते एक दिन जान पड़ा कि मजदूरों और किसानोंकी समस्या हल हो गयी क्योंकि उस दिन ये स्वर सुन पड़े

'सुनो, बैरी सुनो,
क्या मेरी आवाज ।'

उसी दिन मैंने एक विज्ञप्ति पाकर अपने गुरुदेवको पूरी बात [illegible] रूपमें लिखी,

'सुनो, गुरुदेव, सुनो,
क्या मेरी आवाज तुमतक पहुँचती है?'

मैं अब प्रयोग करने लगा हूँ। मैंने आज एक कवितामें अंग्रेजीका प्रयोग किया है। डिसइन्फेक्टेंट, एण्टीबायोटिक्स, एनीमिया, [illegible] सिटोन आदि शब्द कल सीखे थे। उनका इस्तेमाल इस कवितामें [illegible] दिखाया है। अब एक कविता मुझे गाकर [illegible] उसमें इन्जीनियरीका प्रयोग करना पड़ेगा। गुरुदेव, [illegible]

कारण, दरेसी, गैंग, मेट आदि शब्द तो मुझे आते हैं पर कोई लम्बा शब्द याद नही है। सुनते हैं ट्यूबवेल बनानेकी मशीनमे कई पुर्जोके अद्‌भुत नाम है। आप किसी मिस्त्रीसे पूछकर लिख भेजनेकी कृपा करे।

'साथ-ही साथ, गुरुदेव, अब नयी कविताका नाम भी सुननेमे आने लगा है। पर इस मोर्चेपर भाग्य, 'मारेसि मोहिं कुठाउँ।' नयी कविता लिखनेके लिए सुनते है, पढना बहुत पडता है और सब पढकर फिर ऐसा लिखना पडता है कि कविके पढे-लिखे होनेका आभास तक न मिले। सो, गुरुदेव पटाईकी बात सुनते ही, 'सीदन्ति मम गात्राणि, वेपथुश्चोपजायते।' मुँह सूख रहा है, राह नही दीख पडती। कुछ बताइए कि अब क्या करें और क्या लिखे ?'

'आप कहते है कि बार-बार अपनेको बदलकर मैंने बुरा किया। गुरुदेव, मुझे इसी गुणके कारण आलोचक समन्वयवादी कहते हैं। आपने अवसरवादी शब्दका प्रयोग अशुद्ध रूपमें किया है। राजनीतिका यह शब्द साहित्यमे प्रयुक्त नही हो सकता। आपने ही सिखाया था, 'काव्य यशसे', सो जहाँ जैसा यश मिला, वहाँ वैसी कविता की। 'अर्थकृते', अत जहाँ दो पैसका ढोल लगा, वहाँ जाकर काव्य लिखा। यह शास्त्रोक्त कर्म था। इसमे कौन-सा कुकर्म है, गुरुदेव ?

'और सच तो यह है कि मेरी कविता बदली पर मैं नही बदला। 'जग बदलेगा, किन्तु न जीवन।' सदानन्द था, सदानन्द रहा। सवैया लिखकर भी 'सदेश' नही बना। 'सरस्वती' में छन्द छपाकर भी सदानन्द-शरण नही कहलाया, सरस्वती प्रेस तक जाकर भी 'कामरेड सिद्दू' नही हुआ। अब नयी कविता लिखूँगा पर सदानन्दायन नही बनूँगा। यश बढता रहे, अर्थ बढता रहे, राजसम्मान बढता रहे पर नाम वहीका वही रहेगा। इसीमे आनन्द है। सदानन्द हूँ, सदानन्द रहूँगा।'

■

अतिरिक्त यदि कोई यह आपत्ति करता है कि क्या उन महाकवियोने अपनी रचनाएँ पुरस्कारके लिए भेजी थी तो नि सकोच ही कहा जा सकता है, क्योकि सम्मेलन पुस्तकालयमें उन लोगोकी पुस्तके प्रकाशित रूपमे ही नही पाण्डुलिपि रूपमे भी पडी है। जिन पुस्तकोकी पाण्डुलिपि न हो उनकी तैयार भी करायी जा सकती है।

प्रस्ताव इतना तर्क-सम्मत था कि सर्व-सम्मतिसे स्वीकृत हुआ, यद्यपि सम्मेलनके इतिहासमें सव-सम्मतिसे स्वीकृत होनेवाला यह पहला प्रस्ताव था। अव समस्या थी कि यह कैसे देखा जायेगा कि कौन साहित्यकार सवसे वडा है। इस बार भी प्रस्तावक महोदय ही वोले कि इन सभी साहित्यकारोको पूरी तैयारीके साथ सम्मेलन-भवनमे वुला लिया जाये और एक-एककर सवकी ऊँचाई नाप ली जाये क्योकि उनकी पुस्तकोको पढकर निर्णय करनेमें तो सालो लग जायेंगे।

सभी सदस्य मारे खुशीके उछल पडे। इसपर एक सदस्यने कहा, 'इतनी वुद्धिमत्तासे भरे प्रस्तावपर स्वय आप ही मगलाप्रसाद पारितोषिकके अधिकारी हो जाते है। अस्तु, मैं प्रस्ताव करता हूँ कि अगले वर्षका पुरस्कार आप ही को क्यो न दिया जाये।'

इसपर प्रस्तावक महोदयने चट कहा, 'आपकी इस गुण-ग्राहकता और खरी सूझको देखकर मै प्रस्ताव करता हूँ कि मेरे वादवाले वर्षका पारितोषिक आप ही को दिया जाये। यही नही, इतने महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव जिस उपनमितिमें स्वीकृत हो रहे है उसके प्रत्येक सदस्यको एक-एक कर आगामी वर्षोमे पुरस्कृत कर देना चाहिए। यह तय नही कि आनेवाले सदस्य इस वातसे सहमत ही हो, अस्तु इस तरहका एक उपनियम वना कर विधानमे जोड दिया जाये।' 'अहो रूप अहो ध्वनि' से भवन गूँज उठा।

लोग इतने प्रसन्न हुए कि प्रस्तावक महोदयको दोवारा पारितोपिक देनेका प्रस्ताव आते आते वचा। अन्तमें उस टूर्नामेण्टके लिए तिथि निश्चित

करके बैठकने विराम लिया।

इतना कह चुकनेके बाद पुस्तकाध्यक्ष महोदयने कहा कि आज इसी सूचनाका प्रभाव है जो पुस्तकें 'साहित्य सम्मेलन भवन' में जानेकी तैयारी कर रही है। विद्यापतिसे प्रेमचन्द और प्रसाद तकके साहित्य-कारोंकी होड है, अतएव इन सभी साहित्यकारोंकी पुस्तकें भी तमाशा देखने जा रही हैं क्योंकि इस विजयका प्रभाव उनके भावी जीवनपर पड सकता है। यों, इन पुस्तकोंमे वहस वगैरह तो अभीसे शुरू हो गयी है।

इतना सुना तो स्वयं भी घटनास्थलपर पहुँचनेका लोभ संवरण न कर सका। स्टेशनकी ओर झपटा हुआ जा रहा था कि 'हिन्दी पुस्तक एजेन्सी' पर बडी भीड देखी—पूछनेपर मालूम हुआ कि शायद वेष बदल कर साहित्यकार लोग ही अपनी पुस्तकें खरीदने आये हैं। परन्तु कुछ सन्त और भक्त कवि वहाँ नही दिखाई पडे। दुकानदारने कहा कि वे अपरिग्रही महात्मा लोग पैसा कहाँसे पायें अत किसी पुस्तकालयकी शरण गये होंगे। इच्छा तो हुई कि लपककर 'कारमाइकेल' पुस्तकालयमें देख लूँ परन्तु गाडीका समय हो गया था।

काशीसे प्रयाग जानेवाली यह आखिरी गाडी थी, इसलिए सबमें अधिक भीड इसीमें थी। गाडीमे आदमियोंसे ज्यादा पुस्तकें ही थी और स्टेशन मास्टरका कहना था कि यदि यही मालूम होता तो यात्रीगाडीकी जगह मालगाडीका ही प्रबन्ध किया गया होता।

रास्ते-भर गाडीमें पुस्तकोंने क्या-क्या काण्ड किये इसका बयान न करना ही अच्छा है। रीतिकालीन पुस्तकें तो रात-भर जागकर अन्त्याक्षरी करती गयीं। आधुनिक युगकी किताबोंने कवि-सम्मेलनका आयोजन कर लिया था। हाँ, बीच-बीचमें यदि चुप दिखायी दे रही थी तो भक्ति-युगकी पोथियाँ। यह अकाण्ड काण्ड देखकर मानस, बीजक और सूरसागर वगैरह आँख मूँदकर रात-भर माला जपते रहे अथवा ध्यानमग्न थे। यह अवश्य था कि रीतिकालीन पुस्तकें इन ध्यानलीन ग्रन्थोंपर कभी-कभी व्यंग्यात्मक

समस्या पूर्तियाँ भी कर देती थी। परन्तु उसका कोई उत्तर नहीं दिया गया। यात्रा सकुशल समाप्त हुई।

उतरकर नियत समयसे कुछ पहले ही सम्मेलन-भवन पहुँचा। पहुँचते ही देखा कि प्रकाशक लोग पहले ही से डटे है, क्योंकि यह उनके हानि-लाभका ही नही, जीवन-मरणका प्रश्न था। थोडी देर बाद समालोचकोका दल भी आ धमका। इनमे कुछ लोगोने कहा कि हम लोग दर्शकोके स्थानपर न जाकर सीधे अखाडेमे ही दाखिल हो जायँ। परन्तु आचार्य शुक्ल-जैसे गम्भीर समालोचकोने चुपचाप दर्शक-मण्डलीमे ही स्थान लिया। देखा-देखी कुछ और लोग भी बैठ गये परन्तु मिश्रबन्धु, पद्मसिंह शर्मा, लाला भगवानदीन-जैसे अखाडिया दिग्गज विद्वान् अखाडेमें ही बैठे। सभी लोग तो अबतक आ गये थे परन्तु जिनमें होड थी अर्थात् जिन साहित्यकारोंके भाग्यका निर्णय होनेवाला था उनमें-से किसीका पता न था। निर्णायक मण्डल भी बैठ गया। फीता लेकर नापनेवाले महानुभाव बेचैन-से नजर आ रहे थे। सबकी निगाहे सडकपर लगी थी, कुछ लोग आसमानकी ओर देख रहे थे। नियत समय निकट आ रहा था परन्तु प्रतिद्वन्द्वी साहित्यकारोमे-से कोई नही पहुँचा। कानाफूसी होने लगी। कोई कहता था, सूचना नही पहुँची होगी। कोई कहता, सवारी न मिली होगी। कोई कहता गाडी लेट हो गयी। परन्तु कुछ लोगोका यह भी कहना था कि शायद अपना अपमान समझकर वे लोग न आये हो। मेरी बगलमें कोई एकाक्ष पुरुष बैठे थे। उन्होने कहा, क्या देखते हो? सभी साहित्यकार वेष बदलकर बैठे हैं। घण्टा बजते ही असली रूपमें दाखिल हो जायँगे।

मुझे विश्वास नही हुआ। ठीक समयपर घण्टा बजा। अन्तिम झनक मौन भी न हो पायी कि शर्माजीने अपने पाकेटसे बिहारीको निकालकर रख दिया। देखना था कि मिश्रबन्धुओने देवको अपने झोलेसे निकालकर खडा कर दिया। निर्णायक मण्डल देख रहा था कि केवल दो ही पहलवान मैदानमें आये और बाकी किसीका पता नही। निर्णायकोको चुप देखकर

शर्माजी तथा मिश्रबन्धु एक साथ बोल उठे—'जब समय हो गया है तो काम शुरू होना चाहिए कोई आये चाहे नही।'

निर्णायक मण्डल मुँह छिपाने लगा। अन्तमे दृढ होकर सभापतिने कहा, 'भक्तप्रवर सूर, सन्त कबीर और महात्मा तुलसीदास आदि प्राचीन तथा भारतेन्दु, प्रेमचन्द, प्रसाद आदि अनेक नवीन महान् साहित्यकारोमे कोई नही आया है। अस्तु, कार्यवाही उनके आनेपर ही शुरू होगी क्योकि यह हिन्दीके सम्मानका प्रश्न है।'

सभापति महोदय शायद कुछ और कहनेवाले थे परन्तु बीच ही मे किसीने टोककर कहा, 'क्या प्रसादजीको भी यहाँ बुलाया गया है? उन्हें तो एक बार मगलाप्रसाद पारितोषिक मिल चुका है।'

शर्माजी वगैरहने कहा, 'यह प्रतियोगिता तो केवल प्राचीनोकी ही है। नवीनोको इनमें नहीं बुलाना चाहिए था।'

और लोगोने कुछ-न-कुछ कहा परन्तु उस कोलाहलमें कुछ सुनाई न पडा। यह देखकर आचार्य द्विवेदी और आचार्य शुक्ल उठकर जाने लगे। प्रबन्धकोने दौडकर उन्हें बैठानेका अनुरोध किया। द्विवेदीजी तो नही माने चले गये, परन्तु शुक्लजी शीलवश रुक गये। जब अधिक समय हो गया तो शर्माजी वगैरहने फिर आपत्तियाँ उठायी। इस बार प्रकाशकोंके दलमें कुछ सगबगाहट शुरू हुई और देखते-देखते गीता प्रेसने गोस्वामी तुलसीदासका, ब्रजमण्डलने सूरदासको तथा इसी प्रकार सरस्वती बुकडिपोने प्रेमचन्द और नागरी प्रचारिणी सभाने भारतेन्दुको अपने-अपने पाकेटसे निकाल-कर रख दिया। शेष सभी लोगोको एक साथ भारती भण्डारने उप-स्थित कर दिया। किताब महलने भी एक अध्ययन सीरीजकी पुस्तकारा टाल लगा दिया।

अब सरगरमी आ गयी। इसी तरह सभी लोगोने अपने अपने प्रति-द्वन्द्वियोको मैदानमें एक कतारमें खडा कर दिया। दर्शक देख रहे थे कि अनेक महाकवि छोटे पड रहे है। निर्णायक मण्डलने आज्ञा दी जो चाहे

अपने साहित्यकारको ऊँचा दिखानेके लिए पाँच मिनिटतक अनेक सहायक साधनोका उपयोग कर सकता है।'

आलोचको और प्रकाशकोने काम शुरू किया। तुलसीको ऊँची एडीकी खडाऊँ पहनायी गयी, तो कबीरके सिरपर लम्बी टोपी रखी गयी, बिहारीको पगडी बाँधी गयी तो देवको भी उचकनेके लिए सिखाया गया। गरज़ कि सबको अलग-अलग असली कदसे कुछ न-कुछ ऊँचा दिखाया गया। अब सरक्षकोको अलग कर दिया गया। ज्यो ही नाप शुरू होनेवाली थी एक प्रकाशकने पूछा, 'क्या इन महाकवियोको ऊँचा सिद्ध करनेके लिए उनकी लिखी पुस्तको तथा उनसे सबद्ध आलोचना ग्रन्थोका उपयोग नही किया जा सकता।'

देवके समर्थकोने सबसे पहले हल्ला मचाया—'ज़रूर ज़रूर!'

निर्णायक मण्डलने विवश होकर यह भी सुविधा दे दी। देखते-देखते मिनिट-भरके भीतर न जाने कितने रिसर्च स्कॉलर तैयार किये गये और उन्हे अग्रिम डॉक्टरेट भी दे दी गयी। इस तरह बहुत-से महाकवियोके पैरो तले तो केवल सादे पन्नोका ही सजिल्द पुलिन्दा यह कहकर रखा गया कि यह अप्रकाशित थीसिस है। किसीकी हिम्मत न थी जो उसका विरोध करता। कुछ लोगोको इसपर भी सन्तोष न हुआ। अत एक समीक्षक महोदयने जो सबसे लम्बे थे, प्रस्ताव किया कि क्या अपने-अपने प्रतियोगियोको ऊँचा दिखानेके लिए हमलोग अपने कन्धोका सहारा नही दे सकते?'

पहले कुछ विरोध हुआ अन्तमे टकेकी चोट निर्णायक मण्डलने यह निवेदन भी स्वीकार कर लिया। इस सुविधाके मिलते ही चारो ओर तहलका मच गया। पता न चला कि कौन दर्शक है और कौन प्रतियोगी। फलत दर्शक कोई न रहा। पहले पुस्तकें रखी गयी, उनपर खडे हुए प्रकाशक, प्रकाशकोके ऊपर आलोचक और आलोचकोके ऊपर रखा गया स्वय कविको। परन्तु यह निर्णय इतना जल्दी नही हुआ। एक कविके अनेक आलोचकोमे इसके लिए भी बहुत हुज्जत हुई कि किसके ऊपर कौन

कौन बड़ा है?

रहेगा। अन्तमे यह रास्ता निकाला गया कि ऊपर नीचे रखनेमें तिथि-क्रमका आश्रय लिया जाये।

बाज-बाज आलोचक एक ही साथ अनेक कवियोंके आलोचक थे। अत प्रकाशकोंने उन्हें बाध्य किया कि वे उन सभी कवियोंको अपने ऊपर लादें। ऐसे आलोचकोंका कचूमर निकल गया। एक अध्ययनवाले नवीन आलोचकको सबसे अधिक भार वहन करना पड़ा।

इसी बीच कुछ कवियोंको फिर भी छोटा पड़ता देखकर स्वय निर्णायकोंमें कानाफूसी होने लगी। धीरे-धीरे यह कानाफूसी वहमकी ऊँचाई तक पहुँच गयी। प्रतियोगियोंने यह दशा देखकर निर्णायकोंको भी अपनी-अपनी ओर खींचना शुरू किया। खींचतान इतनी हुई कि निर्णायकोंमे से किसीके तीन या चार टुकड़े हो गये। उस नापनेवाले आदमीके तो सैकड़ो टुकड़े हो गये। फिर भी लोगोंने सबको अपने-अपने स्तम्भोंके नीचे रखा।

इस तरह जब पूरा स्तम्भ तैयार हो गया तो कोई देखनेवाला न रहा कि आखिर सबसे बड़ा कौन है, क्योंकि उन्हे आपसमे लड़ते देखकर गुरुजी वगैरह पहले ही चले गये। अब हर एक स्तम्भ अपने प्रतियोगीको बड़ा कहने लगा। नौबत हाथापाईकी आ गयी। लोगोंने अपने-अपने शीर्षस्थ कवियोंसे पूछा कि बोलो कौन बड़ा है। परन्तु बार-बार पूछनेपर भी कोई आवाज न आयी। चिढ़कर स्तम्भमें खड़े आलोचकोंने कहा कि अगर नहीं बोलते तो तुम्ही नीचे आओ और हम स्वय ऊपर जाकर बतायेंगे कि कौन बड़ा है?

कहते-कहते स्तम्भके आलोचकोंने कवियोंको पटक-पटककर स्वय ही उनपर चढ़ना शुरू किया। अब प्रश्न यह नही रहा कि कौन कवि बड़ा है, प्रश्न यह हो गया कि कौन आलोचक बड़ा है? अब कोई आलोचक किसीको कन्धा देनेके लिए तैयार ही न हो, यहाँतक कि नये-नये डॉक्टरोंने भी अपने गुरुओंको शीशपर रखनेसे इन्कार कर दिया। फिर क्या था? जबरदस्ती होने लगी। कोई उछलकर किसीके सिर चढ़ जाता और कोई

किसीके सिर। अन्तमें फैसला न होते देख सभी लोग पारितोषिकके रुपयेकी ओर दौडे परन्तु वहाँ पहुँचकर देखा गया कि उसे तो लेकर पहले ही कोई भाग गया था।

आलोचक-समुदाय अवाक् खडा-खडा देख रहा था कि 'माया मिली न राम।' उधर हमारे कवि धूलमे तडप रहे है। परन्तु उनकी फिक्र किसको? धरती रौंदी जाकर काफी धँस गयी थी। चारो ओर गर्द छा गयी थी! उत्सुकतावश जनताकी अपार भीड उमडी चली आ रही थी। कवियोकी यह दशा देखकर उसने अपने हृदयकी वाँहें वढाकर महाकवियोको उठाना शुरू किया। सबकी जबानपर केवल यही वाक्य था—तुम हमारे कवि हो, यही क्या कम है! कौन वडा है—हमें इससे मतलव नही।

आलोचक समुदाय भौंचक खडा देख रहा था। एकने कहा—'यही तो हम भी कहते थे।'

उसके वाद क्या हुआ यह तो नही मालूम परन्तु अब जब कोई आलोचक किसी कविपर कलम उठाता है तो, सुनते हैं वह कवि दहल जाता है और आवाज आती है, हमे अनालोचित ही रहने दो।

जब मैंने सम्मेलनका यह काण्ड अपने एक प्रगतिशील समालोचक मित्रको सुनाया तो वे बोले—'अवश्य ही यह भारी गलती है। यही तो प्रतिगामियोका स्वभाव है। कवियोकी जांच ऊँचाईके अनुसार नही वल्कि चालके अनुसार होनी चाहिए। अर्थात् मुख्य प्रश्न यह है कि कौन कवि सबसे तेज चलता है।'

मैंने कहा—'तब तो वडी मुश्किल है। चलनेकी होडमें लोग दौडने भी लगेंगे।'

वे बोले—'जरूर-जरूर। वह तो होगा ही। होना ही चाहिए। और इसकी जाचके लिए हम लोग अभीसे कवियोको दौडानेका अभ्यास करा रहे है।'

मैंने पूछा—'परन्तु कही ऐसा न हो कि कवि लोग इतना आगे दौड

जायें कि उनके साथ चलनेवाला आलोचक पिछड जाये और निर्णय ही न हो पाये।'

वे बोले—'ऐसा कैसे सम्भव है? साथ-साथ चलनेवाला आलोचक यान-से रहेगा। फिर मज़िले मकसूदपर यह सब देखनेके लिए मार्क्स दादा तो खडे ही हैं।'

बहुत दिनों बाद सुना कि उस दौडके अभ्यासमें मेरे वे प्रगतिशील आलोचक मित्र एक दिन मुँहके बल गिरे फिर भी उत्साह ठण्डा नही हुआ है। परन्तु तबसे कवियोपर मातम छा गया है कि इस बार न जाने क्या होगा और जनता अपनी फसलकी ओर देख रही है कि न जाने दौड किस जगह होगी?

■

मोहन राकेश

# विज्ञापन युग

मेरे पडोसियोकी मुझपर ऐसी कृपा है कि रातको सोने तक और सुबह उठनेके साथ ही मुझे गजलें, भजन और गीत और उनके साथ-साथ चाय, तेल और सिर-ददकी टिकियोके विज्ञापन सुनने पडते है। अब तो मुझे ये विज्ञापन सुननेका ऐसा अभ्यास हो गया है कि अन्यत्र भी कही मैं गालिब-की गजल सुनता हूँ, या सूरदासका भजन सुनता हूँ, या कोई अच्छा-सा गीत सुनता हूँ, तो साथ मेरे दिमागमे अपने-आप ये शब्द गूँजने लगते हैं—क्या आपके सिरमे दर्द रहता है? सिर-ददसे छुटकारा पाइए! एक गोली लीजिए—सिर-दर्द गायब।

परिणाम यह है कि अब मेरे लिए कोई गजल गजल नही रही, कोई गीत गीत नही रहा, सब किसी-न-किसी चीजका विज्ञापन बन गये है। दिन-भर ये गीत और विज्ञापन मेरा पीछा करते रहते हैं। पहले बहुत मीठे गलेमे 'रहना नहि देश विराना है' की लय और उसके तुरन्त बाद क्या आपके शरीरमे खुजली होती है? खुजलीका नाश करनेके लिए एक ही रामबाण औषधि है—। कर लें। कबीर साहब क्या करते है? खुजली कम्पनी उनकी जिस रचनापर चाहे अपनी मोहर चस्पाँ कर सकती है।

और बात गीतो गजलो तक ही सीमित नही है। मुझे लगता है कि मेरे चारो ओर हर चीजका एक नया मूल्य उभर रहा है, जो उसके आज तकके मूल्यसे सर्वथा भिन्न है और जो उसके रूपको मेरे लिए बिलकुल बदल दे रहा है। कोई चीज ऐसी नही जो किसी-न-किसी रूपमें किसी-

न-किसी चीज़का विज्ञापन न हो। अजन्ताके चित्र और एलोराकी मूर्तियाँ कभी अछूती कलाका उदाहरण रही होंगी, परन्तु आज उस कलाको एक नयी सार्थकता प्राप्त हो गयी है। उन मूर्तियोंका केश-सौन्दर्य आज मुझे एक तेलकी शीशीका स्मरण कराता है, उनकी आँखें एक फार्मेसीका विज्ञापन प्रतीत होती हैं और उनका समूचा कलेवर एक पेट्रोल कम्पनीकी कलाभिरुचिको प्रमाणित करता है। जिन हाथोंने उन कला-कृतियोंका निर्माण किया था, वे हाथ भी आज एक बिस्कुट कम्पनीकी विकास-योजनाके विज्ञापनके रूपमें सार्थक हो रहे हैं।

देशके कोने-कोनेमें बिखरे हुए जितने मन्दिर हैं, जितने पुराने किले और खण्डहर हैं, जितने स्तम्भ और स्मारक हैं, वे सब इसीलिए हैं कि लोगोंमें यातायातकी रुचि जाग्रत हो, टूरिस्ट ट्रेडको प्रोत्साहन मिले, विदेशसे लोग आकर उनकी तसवीरें लें और अपनी प्रियतमाओंके पास भेजें। मीनाक्षी और रामेश्वरम्‌के शिखर और खजुराहोके वक्ष इस दृष्टिसे भी उपयोगी हैं कि एक विशेष ब्राण्डके सीमेण्टकी मजबूतीको व्यक्त करनेके प्रतीक बन सकें। कश्मीरकी सारी पार्वत्य सुषमा, वहाँकी नव-युवतियोंका भाव-सौन्दर्य और वहाँके कारीगरोंकी दिन-रातकी मेहनत, ये सब इस बातको विज्ञापित करनेके उपकरण हैं कि सफेद रंगका वह शहद जो बन्द डिब्बोंमें मिलता है, सबसे अच्छा शहद है। बर्नार्ड शाके नाटक हमें यह बतलाते हैं कि ब्रिटेनके किस प्रेसमें छपाई सबसे अच्छी होती है, प्रशान्त-सागरमें गिराये जानेवाले अणु बम हमें इस बातकी चेतावनी देनेके लिए हैं कि जबतक हम एक विशेष बीमा कम्पनीकी पॉलिसी न ले लें तबतक हमारा भविष्य सुरक्षित नहीं और भारत और पाकिस्तानमें कश्मीरके लिए झगड़ा इसलिए हो रहा है कि वहाँके सेवाका मुरब्बा बहुत अच्छा होता है जिसे सिर्फ एक ही कम्पनी तैयार करती है।

विधनाने इतनी बारीकबीनीसे यह जो धरती बनायी है और मनुष्यने विज्ञानके आश्रयसे उसमें जो चार चाँद लगाये हैं, वे इसीलिए कि विज्ञापन

कलाके लिए उपयुक्त भूमि प्रस्तुत की जा सके। उत्तरी ध्रुवसे दक्षिणी ध्रुव तक कोई कोना न बचा होगा जिसका किसी-न-किसी चीज़के विज्ञापन-के लिए उपयोग न किया जा रहा हो। हर चीज़, हर जगह अपने अलावा किसी भी चीज और किसी भी जगहका विज्ञापन हो सकती है। गेहूँकी फसल एक कपडेकी मिलका विज्ञापन है क्योंकि नयी फसलसे प्राप्त हुए नये पैसेका एक ही उपयोग है कि उससे कपडा खरीदा जाये। कपडेकी मिल डबल रोटीकी बेकरीका विज्ञापन है, क्योंकि मिलमें काम करनेवाले सभी कामपर जा सकते है जब वे डबल रोटी खा चुके। और बेकरी, वाटरप्रूफ जूतोंका विज्ञापन है क्योंकि जबतक वाटरप्रूफ जूते न होगे तबतक बारिशमें इनसान डबल रोटी-जैसी साधारण चीज भी प्राप्त नहीं कर सकता। बहुत-सी चीजें एक-दूसरेका विज्ञापन है, फूल इत्रकी शीशीका विज्ञापन है इत्रकी शीशी फूलोंका विज्ञापन है। पत्र लेखकका विज्ञापन है लेखक पत्रका विज्ञापन है। सौन्दर्य सौन्दर्य-साधनोंका विज्ञापन है, और सौन्दर्य-साधन सौन्दर्यके विज्ञापन है। बहुत सी चीजें अपना विज्ञापन आप देती है जैसे उपदेशकता, आलोचकता, नेतागिरी इत्यादि।

मुद्दआ यह कि जहाँ जायें, जिधर जायें, जहां रहे जैसे रहे, इन विज्ञापनोंकी लपेटमें नहीं बचा जा सकता। घरमे बन्द होकर बैठ जायें तो विज्ञापन रोशनदानोंके रास्ते हवामें तैरते आते हैं। क्या आज आपने दाँत साफ किये है? सवेरे उठते ही सबसे पहले क्लोरोफिलवाले टुथ पेस्टसे दात साफ कीजिए। याद रखिए अपने दाँतोंको रोगोंसे बचानेके लिए यही एक साधन है।—घरसे निकलिए, हर दोराहे चौराहे और सडकके खम्भेपर विज्ञापन—उतरेने सावधान—धोखेसे बचिए इसके पढनेसे बहुतोंका भला होगा। अखबार उठा लीजिए, विज्ञापन। पुस्तक उठा लीजिए, विज्ञापन। बसमे बैठ जाइए, विज्ञापन। क्या आपका दिल कमजोर है? क्या आपका जिस्म टूटता रहता है? क्या आपके सिरके बाल झड रहे है? क्या आपके घरमें झगडा रहता है? गोया कि आपकी व्यक्तिगत जिन्दगी बिलकुल

व्यक्ति नहीं है, उसे केवल इन विज्ञापनदाताओंके परामर्शसे ही जिया जा सकता है।

विज्ञापन-कला जिस तेजीसे उन्नति कर रही है उससे मुझे भविष्यके लिए और भी अन्देशा है। मुझे लगता है कि ऐसा युग आनेवाला है जब शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति और साहित्य, इनका केवल विज्ञापन-कलाके लिए ही उपयोग रह जायेगा। वैसे तो आज भी इस कलाके लिए इनका खासा उपयोग होता है। बहुत-सी शिक्षण-संस्थाएँ हैं, जो साम्प्रदायिक संस्थाओंका विज्ञापन हैं। कई कला-केन्द्र कुछ स्वनामधन्य लोगोंकी दानवीरताका विज्ञापन मात्र हैं। अपनी पीढ़ीके कई लेखकोंकी कृतियाँ लाला छगनलाल मगनलाल या इसी तरहके नामके किसी और लाला स्मारक निधिसे प्रकाशित होकर लालाजीकी दिवंगत आत्माके प्रति स्मारक होनेका फर्ज अदा कर रही हैं। मगर आनेवाले युगमें कला दो कदम और आगे बढ़ जायेगी। विद्यार्थियोंको विश्वविद्यालयके दीक्षान्त महोत्सवपर जो डिग्रियाँ दी जायेंगी, उनके निचले कोनेमें छपा रहेगा आपकी शिक्षाके उपयोगका एक ही मार्ग है—आज ही आयात-निर्यातका धन्धा आरम्भ कीजिए। मुफ्त सूचीपत्रके लिए लिखिए—। हर नये आविष्कारकका चेहरा मुसकराता हुआ टेलीविज़न सेटपर आकर कुछ इस तरहका निवेदन करेगा—मुझे यह कहते हुए हार्दिक प्रसन्नता है कि मेरे प्रयत्नकी सफलताका सारा श्रेय रबड़के टायर बनानेवाली कम्पनीको है, क्योंकि उन्हींके प्रोत्साहन और प्रेरणासे मैंने इस दिशामें कदम बढ़ाया था। विष्णुके मन्दिर बने होंगे जिनमें संगमरमरकी सुन्दर प्रतिमाके नीचे पट्टी लगी होगी—'याद रखिए, इस मूर्ति और इस भवनके निर्माणका श्रेय लाल हाथीके निशानवाले निर्माताओंको है। वास्तुकला-सम्बन्धी अपनी सभी आवश्यकताओंके लिए लाल हाथीका निशान कभी मत भूलिए। और ऐसे-ऐसे उपन्यास हाथमें आया करेंगे जिनकी सुन्दर चमड़ेकी जिल्दपर एक ओर बारीक अक्षरोंमें छपा होगा—साहित्यमें अभिरुचि रखनेवालोंको हमारी

साबुन बनानेवालोंकी एक और तुच्छ भेंट। और बात बढ़ते-बढ़ते यहाँतक पहुँच जायेगी कि जब एक दुल्हा बड़े अरमानसे दुल्हिन ब्याहकर घर लायेगा और घूँघट हटाकर उनके रूपकी प्रशंसामें पहला वाक्य कहेगा तो दुल्हिन मधुर भावसे आँख उठाकर हृदयका सारा दुलार शब्दोंमें उडेलती हुई कहेगी—'बताऊँ मैं सुन्दर क्यों दिखाई देती हूँ ? यह इसलिए कि मैं प्रति प्रात उठकर नौ सौ इक्यानवे नम्बर साबुनसे नहाती हूँ। कलसे आप भी घरमें नौ-सौ इक्यानवे नम्बरका साबुन रखिए। इसकी सुमधुर गन्ध सारा दिन दिमागको ताजा रखती है और इसके मुलायम झागसे त्वचा बहुत कोमल रहती है। और इसकी बड़ी टिकिया खरीदनेसे पैसेकी भी किफायत होती है। और इसके बाद उनका नौ-सौ इक्यानवेसे सुगन्धित चेहरा दुल्हाके चेहरेके बहुत पास चला जायेगा।

जहाँतक विज्ञापनके लिए जगहका सवाल है, बहुत-सी जगहें है जो अभीतक एक्सप्लायट नहीं की जा सकीं। क्योंकि विज्ञापन-कलाकी दृष्टिसे सब चीजोंका आपसमें अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है इसलिए दवाईकी शीशियोंमें मक्खनके डिब्बोंके विज्ञापन होने चाहिए और मक्खनके डिब्बोंमें दवाईकी शीशियोंके। चित्रकला गैलरियोंमें चित्रोंके अतिरिक्त तेलके इश्तहार टाँगे जाने चाहिए और तेलकी बोतलोंपर चित्रकला-प्रदर्शिनीकी सूचना चस्पाँ होनी चाहिए। कम्बलों और दुशालोंमें चाय और कोकोके इश्तहार बुने जा सकते हैं। नमदे और गलीचे रबड सोलके जूतोंके विज्ञापनका आदर्श साधन हो सकते हैं। बैंकोंकी दीवारोंपर लाटरी और रेसकोर्सके विज्ञापन दिये जा सकते हैं। रेसकोर्समें बचतकी स्कीमोंका विज्ञापन दिया जा सकता है। रेल और हवाई जहाजके टिकिटोंपर बीमा कम्पनियोंका विज्ञापन हो सकता है और अस्पतालोंकी दीवारोंपर मैट्रिमोनियल विज्ञापन लगाये जा सकते हैं।

यह तो आनेवाले कलकी बात है, वैसे आज भी स्थिति यह है कि मुझे हर जगह विज्ञापन-ही-विज्ञापन दिखाई देते हैं—जहाँ विज्ञापन हो

वहाँ भी, और जहाँ न हो वहाँ भी। मेरा मस्तिष्क हर चेहरे, हर ध्वनि, और हर नामका सम्बन्ध किसी-न-किसी विज्ञापनके साथ जोड देता है। मैं सुबह उठकर सामनेकी दुकानके लडकेको चाय लानेका आदेश देता हूँ तो चायका नाम लेते ही मुझे नीलगिरिकी सुन्दरीका ध्यान आ जाता है जिसका चेहरा मैं रोज अखबारमे देखता हूँ और नीलगिरिके नामसे मुझे तुरन्त काफी प्रदेशकी ढलानें याद आ जाती है। साथ ही एक बुड्ढे राजपूतका चेहरा मेरी आँखोके आगे फिरने लगता है और मैं अनायास बुदबुदाने लगता हूँ— यह अच्छी काफी और यह अच्छा चेहरा दोनो भारतीय है।

खैर, लडका दो मिनिटमे ही चायकी प्याली लेकर मुसकराता हुआ मेरे सामने खडा होता है। उसके अधखुले ओठोके बीच उसकी सफेद दन्त-पंक्ति-को देखकर मुझे लगता है कि वह विशुद्ध क्लोरोफिल मुसकराहट मुसकरा रहा है। अमरीकन मुहावरेमें इसे 'मिलियन-डालर स्माइल' कहते है। और वह लडका है कि रोज छह पैसेको चायकी प्याली मुझे पकडाता हुआ एक मिलियन डालरकी मुसकराहट मुसकरा जाता है। मेरी कई बार ख्वाहिश होती है कि लडकेको किसी क्लोरोफिल कम्पनीके हवाले कर दूँ, जिससे उसके दाँतोका सही मूल्य ससारके सामने आ सके। और जब मैं यह सोच रहा होता हूँ, तभी ईथरमे तैरती हुई स्त्री-कण्ठकी सुमधुर आवाज सुनाई देती है—क्या आपका हाफिज़ा दुरुस्त नही है? अपना हाफिजा दुरुस्त करनेका ओर आज ही ध्यान दीजिए—

मुझे ठीक मालूम नही कि मेरा हाफिज़ा दुरुस्त है या नही। मगर मैं किसी बच्चेको किलकारी मारकर हँसते देखता हूँ तो मुझे लाल टिनमें बन्द बेबी मिल्ककी याद हो आती है। किसी सुन्दर दृश्यको देखता हूँ तो उनतीस रुपयेवाला कैमरा मेरी आँखोके आगे नाचने लगता है। विवाह-मण्डपके [पास खडे होकर मुझे नेशनल सेविंग्ज सर्टिफिकेटकी याद जरूर आती है। मुहल्लेके लाल चौधरी मुझसे मिलने आते है तो मुझे लगता है कि विटामिन बी कम्प्लेक्सका विज्ञापन चला आ रहा है। दफ्तरकी टाइ

टाइपिस्ट रोजीका समूचा व्यक्तित्व मुझे स्कारलेट रंगकी लिपस्टिकका विज्ञापन प्रतीत होता है। और सच कहूँ तो हालत यहाँतक पहुँच गयी है कि मैं आप लोगोंके सामने खड़ा होता हूँ तो मुझे लगता है कि लिवर साल्ट-का विज्ञापन देख रहा हूँ।

◘

## गीतकी खोज

करती है धरती पुकार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया।
टूटी है जीवन सितार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया।

काली घटाएँ, लो, छाया अँधेरा
बिजली लगाती है पल-पलपै फेरा
सहमा है सब संसार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया।
करती है धरती पुकार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया।

साँसों की बाती, है तेल नहीं बाकी
प्राणों के दीपक पै चोटें हवा की
झोंके हैं जैसे कटार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया।
करती है धरती पुकार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया।

कवि — कहो सेठ, कैसा लगा?

सेठ — [ व्यंग्यमें ] कहो सेठ, कैसा लगा! मैं कहता हूँ तुम तीन

हफ्तेसे मुझे उलटा-सीधा समझाते रहे और आखिरमें लिख-
कर लाये भी तो ये ?

कवि — क्यों, इसमें क्या खराबी है ?

सेठ — पूछते हो, क्या खराबी है। मैं कहता हूँ इसमें है ही क्या ? आखिर ये तुमने लिखा क्या है ?

कवि — आपने कहा था न कि एक थीम सॉङ्[1] लिख लाना।

सेठ — तो क्या यह थीम सोन्ग है ?

कवि — और नहीं तो क्या है सेठ ?

सेठ — यह थीम सोन्ग नहीं है, यह वाहियात सॉङ् है। समझे। मैं कहता हूँ तुमसे कुछ नहीं होनेका।

कवि — क्यों ?

सेठ — पूछते हो क्यों ? तुम बुद्धू हो यो !

कवि — देखो सेठ, मुझे कुछ न कहो ।

सेठ — क्यों न कहूँ ?

कवि — इसलिए कि मुझे अपनी आलोचना सुनना गवारा नहीं, चाहे वह सच्ची हो क्यों न हो।

सेठ — और मुझे अपनी फ़िल्म चौपट नहीं करनी है, चाहे कम्पनी ही क्यों न फेल हो जाये।

कवि — लेकिन आपको यह गीत पसन्द क्यों नहीं आया ? देखिए न, एक भी भद्दी बात नहीं है एक भी संस्कृतका शब्द नहीं है, बड़ी चलती ट्यून है, और कहीं-कहीं तो मतलब भी बिलकुल साफ़ है। अब आप ही बताइए थीम सॉङ्में और क्या चाहिए ?

सेठ — चाहिए मेरा सिर ? तुमने कभी थीम सॉङ् लिखा हो, तब

---

१ Theme Song

तो समझो। तुम्हें इतनी बार समझाया कि थीम सॉङ् वह कहलाता है, वह कहलाता है, जो—

कवि — पूरी फिल्ममें दो-तीन बार गाया जा सके।

सेठ — बिलकुल! अब यह दो-तीन बार कैसे गाया जायेगा!

कवि — क्यों, यह तो बिलकुल आसान है। एक बार शुरूमें गवा दीजिए, एक बार आखिरमें, और एक बार कहीं बीचमें—

सेठ — हां, हां, यह तो मैं भी समझता हूं, पर शुरूमें इसे गायेगा कौन ?

कवि — अब यह तो कहानी देखकर ही बताया जा सकता है।

सेठ — फिर वही, फिजूलकी बात। मैं कहता हूं, मैंने तुमसे कितनी बार कहा कि थीम सॉङ् वह कहलाता है, वह कहलाता है—

कवि — जो हर कहानीमें फिट हो जाये!

सेठ — बिलकुल। अब बताओ, यह कैसे फिट होगा।

कवि — आप करना चाहेंगे तो जरूर हो जायेगा।

सेठ — कैसे हो जायेगा ?

कवि — जैसे आप चाहें। कोई मुश्किल काम तो है नहीं।

सेठ — मैं कहता हूं, अगर मुश्किल काम नहीं है, तो जरा करके बताओ।

कवि — अभी लीजिए, हां, तो कहानी क्या है? ओ। आइ एम सॉरी—माफ कीजिएगा, चमड़ेकी जबान जरा फिसल गयी।—हां तो, यों समझिए कि अगर हिस्टोरिकल फिल्म है तो, किलेमें बन्द बागियोंका गिरोह शुरूमें यह थीम सॉङ् गाता है।

सेठ — लेकिन मैं हिस्टोरिकल फिल्म नहीं बनाना चाहता, समझे।

कवि कोई मुजायका नही। मगर माइथोलॉजिकल[1] फिल्म है तो मन्दिरकी आरतीके बाद भक्त गण यह थीम सॉङ् गाते हैं।

सेठ मैं कहता हूँ, फिजूलकी बात मत करो। माइथोलॉजिकल फिल्मसे मेरी विलविडको सख्त नफरत है।

कवि ओ। आइ एम सो सॉरी! क्षमा कीजिए। आइ मीन—माफ़ फरमाइए। हाँ, अगर सोशल फिल्म है तो—

सेठ तो?

कवि तो भी कोई परवा नहीं। अगर सोशल फ़िल्म है तो सिनेमा हॉलपर टिकिटोंके लिए दस आनेवाली लाइनसे यह कोरस गवा दीजिए।

सेठ फायदा?

कवि : फायदा यह कि शुरूमें थीम सोन्गको इण्ट्रोड्यूस करनेकी जो बात है वह पूरी हो जायेगी।

सेठ लेकिन अगर कोई पूछेगा कि इनसे थीम सॉङ् क्यों गवाया, तो क्या जवाब दूँगा।

कवि बहुत सीधा जवाब है।

सेठ क्या जवाब है?

कवि यही कि अगर इनसे न गवाता तो किससे गवाता? बोलिए, इनके बाद कोई कुछ कह पायेगा—सिवाय मेरे।

सेठ तुम भी क्या कह सकते हो?

कवि मैं तो खैर बहुत कुछ कह सकता हूँ।

सेठ मतलब!

कवि मतलब यह कि अनाथालयके बच्चोंसे गवाया होता।

---

1 Mythological

सेठ : वाह, वाह, शाबाश! यह है आइडिया। वाकई यह तो गज़बका थीम सॉङ् है।—और तीसरी बार गवानेके लिए क्या करेंगे, जानते हो?

कवि : जी, आप बता दीजिए।

सेठ : मैं कहता हूँ, तीसरी बारके लिए हीरोइनसे गवा दंगे।

कवि : पर यह फिट कैसे होगा? यह तो 'धरतीकी पुकार' है न?

सेठ : तभी तो कहता हूँ, तुम बुद्धू हो—अरे, इतना भी नहीं जानते? हीरोइनका नाम धरती रख देंगे। बस। पिक्चर कम्प्लीट।—वाह, वाह, भई, क्या थीम सॉङ लिखा है तुमने, मान गये।

कवि : थैंक्यू, थैंक्यू। मैं जानता था कि आप इसे पसन्द करेंगे। शुक्रिया। तो फिर दूसरा गाना—

सेठ : दूसरा गाना मैंने कहा था न—फिमेल सोलो होना चाहिए हीरोइनके वास्ते?

कवि : भला मैं भूल सकता हूँ।—लीजिए ये भी हाजिर है।

सेठ : जरा रुक जाओ।—अरे देखो। ज़रा मिस जुहीको तो बुलाओ। तुम्हें मालूम है, मैं मिस जुहीको इस फिल्ममें लीडिंग रोल दे रहा हूँ।

कवि : वाह, तब तो बड़ा मज़ा आयेगा।

जुही : [फेड इन] कहिए सेठ। क्या बात है?

सेठ : कुछ नहीं, कुछ नहीं, ज़रा दो मिनिटका काम है। प्रोडक्शन नं० २३, जिसमें तुम हीरोइनका काम करोगी, उसका यह एक गाना लिखकर लाये हैं। ज़रा तुम भी सुन लो।

जुही : ये!

कवि : जी हाँ, खाकसारने ही लिखा है।—लो हाजिर है—सुनाऊँ?

तुम सपनों में आये क्यों
आँखों में समाये क्यों
बोलो, पिया बोलो !

मुझे प्रीति का ज्ञान न था
मन में कुछ अरमान न था
तुमने नयन मिलाये क्यों
जी के तार बजाये क्यों
बोलो, पिया बोलो !

मुझे धूप का सोच न था
जलने का सकोच न था
बादल बनकर छाये क्यों
रस के कण बरसाये क्यों
बोलो, पिया बोलो !

फूल रही थी फुलवारी
मैं थी धुन में मतवारी
फूल देख मुसकाये क्यों
तुमने हाथ बढाये क्यों
बोलो, पिया बोलो !

सेठ — कहो डार्लिंग, कैसा लगा ?

जुही — सिली, नॉनसेन्स, मैं कहती हूँ, ये भी कोई गीत है, जिसका सिर न पैर !

कवि — जी नही, यह तो आप ग़लत फरमाती है, क्योंकि इसका सिर भी है और पैर भी। देखिए न, पहली लाइन सिर है—और यह आखिरी लाइन पैर और—

| | |
|---|---|
| जुही | बकवास मत करो।—तुम हमारा मज़ाक उडाते हो। हम यह गाना नही गायेंगी। |
| सेठ | लेकिन डार्लिंग आखिर वजह भी तो बताओ। तुम चाहो तो इसमे कुछ रद्दोबदल कर दिया जाये। |
| जुही | रद्दोबदलसे काम नही चलेगा। देखिए न। इसमे थ्रू आउट एक ऐसी टोन है, मानो मैं भीख माँग रही हूँ। बडा इन्फीरियोरिटी कम्प्लैक्स है इस गानेमे। |
| सेठ | लेकिन यह बात तो सिचुएशनपर डिपेण्ड करती है। अगर इस गानेकी टोन इस तरहकी है, तो हम कहानीमे भी ऐसी सिचुएशन लायेंगे कि यह फिट हो जायेगा। |
| जुही | कैसी सिचुएशन ? |
| सेठ | यही कि—मान लो—आइ मीन—जस्ट सपोज—कि हीरोइन जो है वह विधवा माँकी गरीब लडकी है। और उसे हाल ही मे एक मिडिल स्कूलमे नौकरी मिली है। तब तो ठीक रहेगा। |
| जुही | और ये गाना विधवा माँ गाती है ? |
| सेठ | व्हाट ! ओह डार्लिंग, तुम समझती क्या नही ? |
| कवि | मै बताऊँ ? |
| सेठ | कहो। |
| कवि | हीरोको बुलाइए, वही इन्हे समझा सकता है। |
| जुही | नॉन्सेन्स ! सेठजी, इनसे कहिए, अपनी जबानपर जरा लगाम रखें। मै इस तरहका मज़ाक बिल्कुल पसन्द नही करती। |
| कवि | तो किस तरहका करती है, यह मालूम हो जाये तो— |
| जुही | शट अप ! |
| सेठ | मै कहता हूँ, यह क्या गड़बड़घोटाला है। ए पोएट, जरा तमीजसे पेश आओ।—डार्लिंग। तुम भी जरा एक बार |

फिर सोचो—मुझे तो यह गीत अच्छा लगा। इसकी ट्यून बडी पॉप्युलर होगी। आखिर और कोई वजह ?

जुही — जो सिचुएशन आप बता रहे हैं, ये सिचुएशन भी मुझे पसन्द नही।

कवि — अगर इजाजत हो तो मैं कुछ अर्ज करूँ।

सेठ — हाँ, हाँ।

कवि — इसके लिए आइडियल सिचुएशन तो यह रहेगी कि यह गीत हीरोइनकी बजाय हीरो ही गा दे।

सेठ — कमालकी बात करते हो!—अरे ये फिमेल सोलो है या मेल सोलो है ?

कवि — जी बात यह है कि यह तो सोलो है। अब जरूरतके मुताबिक़ यह फिमेल सोलो भी बन सकता है, और मेल सोलो भी। वैसे फिमेल सोलो ज्यादा जँचता, पर जब इनको मरजी नहीं, तो मेल सोलो ही सही।

सेठ — यह सहीकी भी खूब रही। भले आदमी, गीतकी पहली लाइन है, 'तुम सपनो मे आये क्यो'।—इसका मेल सोलो कैसे बनेगा ?—और इसे यो कर दें—'तुम सपनो में आयी क्यो'—तो बाक़ी सारी लाइनें बदलनी पडेंगी।

कवि : जी नही, कुछ नही बदलना पडेगा। ऐसाका ऐसा ही मेल सोलो हो जायेगा। कवितामें इस तरह भी चल जाता है। और दो-एक फ़िल्ममें भी ऐसा गीत गाया जा चुका है।

सेठ — गाया जा चुका है। तब तो यह पुरानी ट्रिक हो गयी। मैंने तुमको कहा था न कि मैं सारी चीजें एकदम नयी चाहता हूँ।

कवि — जी नही, गीत तो एकदम नया है, रातको ही लिखा है मैंने। लेकिन हाँ, कहनेका ढग जरा पुराना है। और यह

| | |
|---|---|
| | निहायत जरूरी चीज है। क्योंकि अगर कुछ भी पुराना न रहे, तो जो आपके पुराने देखनेवाले है, उनके टेस्टका क्या होगा ? |
| सेठ | हाँ, यह तुम ठीक कहते हो।—तो डालिंग ! अब तो कोई ऑब्जेक्शन नही ? |
| जुही | जब यह मेल सोलो है तो मुझसे पूछनेकी क्या जरूरत, हीरोको बुलाइए। |
| सेठ | लेकिन हीरो तो अभी प्रोडक्शन नं० १८ मे बिजी है।—यह तो बडी मुश्किल है। अब क्या होगा। |
| कवि | यह तो— |
| सेठ | डालिंग। मैं तो कहता हूँ, तुम एक बार और सोचकर देख लो। मेरी रायमे तो यह गीत बहुत ही खूब है। |
| जुही | जी नहीं, रहने भी दीजिए। हर लाइनमे 'क्यो, क्यो, क्यो,' सवालोके मारे नाकमें दम—मानो एक्जामिनेशन हॉलका गीत हो ! नहीं सेठजी, मैं यह गाना नही गा सकती ! |
| कवि | देवीजी, क्यो मेरा नुकसान करनेपर तुली हुई है ? जैसे-तैसे तो एक गीत सेठजीको पसन्द आया है ! और कुछ नहीं तो मेरे लिए ही मंजूर कर लीजिए। |
| जुही | नो, नो, नो, जो चीज मुझे पसन्द नही वह मैं हरगिज पसन्द नहीं कर सकती। मैं यह गाना नही गाऊँगी। |
| कवि | लेकिन आपको थोडे ही गाना होगा। गाना तो प्लेबैक सिंगर गायेगी। आप सिर्फ— |
| जुही | ओह ! यू नॉनसेन्स ! सेठजी, मैं अपनी तौहीन बिल्कुल बरदाश्त नही कर सकती ! आइ कैन नॉट स्टैण्ड इट ! आइ एम गोइंग— |
| सेठ | सुनो तो डार्लिंग, सुनो तो ! भई—मै कहता हूँ, यह तुम |

कर क्या रहे हो। गीत लिखते हो, या मेरी फिल्म चौपट करनेपर तुले हो? अब दो दिन मिस जुहीका मुँह टेढा रहेगा।

कवि — इसमें मेरा कोई कुसूर नहीं—

सेठ — सरासर तुम्हारा कुसूर है, तुम्हीने तो—

कवि — जी नहीं, मैं चाहे कुछ कहता या न कहता, मिस जुहीको नाराज़ होना था सो वह हो गयी।

सेठ — वजह!

कवि — मेरा अन्दाज़ है उनको कोई दूसरा ऑफर मिला है।

सेठ — यह बात है? तो क्या तुम समझते हो मैं ऐसी छोकरियो-की परवा करता हूँ! एक मिस जुही जायेंगी, पचास आयेंगी—

कवि — लेकिन सेठजी, मेरा गीत तो सोलो है। वो नीड ओनली वन, हमें तो सिर्फ एककी ज़रूरत है।

सेठ — अरे! वह तो चुटकी बजाते मिल जायेगी।—हाँ, तो यह गीत एक दम फ़र्स्ट रेट। पास। अब वह डुएट। यानी डुएटकी बात आप एक दम भूल गये?

कवि — जी नहीं, डुएट तो बल्कि मैंने इससे भी पहले लिखा था। वह तो मैं फिल्मके ऑर्डरसे ही गीत सुना रहा था। लीजिए, डुएट सुनिए। वह चीज़ लिखी है कि हिन्दुस्तानको सिरपर उठा लेगी।

सेठ — सुनाओ! अरे, हलो मि० नाथ। क्या शूटिंग खत्म हो गयी?

नाथ — जी नहीं, खत्म क्या शुरू भी नहीं हुई। जिस पुलपर खडे होकर मुझे खुदकुशीके लिए कूदना था, वह पुल ही टूट गया। अभी रिपेयर हो रहा है।

सेठ — कोई परवा नहीं, तबतक तुम यह डुएट सुनो जरा। प्रोडक्शन नं० २३ का है जिसमे तुम्हें हीरो बनना है। हा भई हो जाये।

कवि — अभी लीजिए—ये रहा युगल गान—

हीरोइन — उड़ जा ओ मेरी कोयल ! तू दूर कहीं जा
साजन की खबर ला

हीरो — उड़ जा ओ मेरे भौंरे ! तू दूर कहीं जा
सजनी की खबर ला

हीरोइन — बेदरदी से जा कहना, क्या हमने बिगाड़ा है।
दिल लेके जो हमारा, दो टूक यों फाड़ा है।
कहना कि यह तो कह दो क्या है मेरी खता
साजन की खबर ला

हीरो — प्यारी से जा कहना, मजबूर हुए हैं हम
दिल चूर हुआ जब से यों दूर हुए हैं हम
उम्मीद के सहारे कब तक जियें बता
सजनी की खबर ला

सेठ — वाह, वाह ! क्या कोयल उड़ायी है, क्या भौंरा छोड़ा है !
मान गये दोस्त, तुम सचमुच पोएट हो।

कवि — थैंक्यू ! थैंक्यू !

नाथ — लेकिन सेठजी। आइ एम सॉरी, मेरा मतलब है, आइ बैग टु डिफर, यानी मैं इसको निहायत लचर और दो कौड़ीका गाना मानता हूँ।

कवि — क्या तीन कौड़ीका भी नहीं ?

नाथ — यू मिस्टर पोएट ! मेरे मुँह मत लगना, समझा। तुम्हें मालूम है मैंने प्रोडक्शन नं० १८ में विलेन की गीत दुर्गति की है।

कवि : मैने कहा श्रीमान्‌जी ! ज़रा होशकी दवा कीजिए। वह दुर्गति तो फोटोग्राफ़रने की है, आपका उसमे क्या कमाल है?

सेठ मै कहता हूँ तुम्हारी यह क्या आदत है कि असली बात छोडकर साइड लाइन्समे उलझ जाते हो? हाँ, मिस्टर नाथ! क्या मै आपका ऑब्जेक्शन जान सकता हूँ?

नाथ देखिए सेठजी, फिल्मोके मामलेमे पब्लिकका टेस्ट बडी तेज़ीसे रियलिज़्मकी ओर जा रहा है। और यह गीत रियलिज़्मके खिलाफ है।

कवि किस तरह?

नाथ इस तरह, कि खबर लाने, ले आनेके लिए तार, चिट्ठी, टेलिफोन, रेडियो-जैसे तरीक़े मौजूद होनेपर बेचारी कोयल और भौंरेको जोतना अगेन्स्ट ऑल इण्टेलैक्चुअल डीसेन्सी, यानी दिमाग़ी शराफतके खिलाफ़ है।

कवि वही बात हुई न कि वही बात। अरे साहब, कुछ मौक़ेपर भी तो ग़ौर फरमाया होता।

नाथ यानी इस गीतका कोई मौक़ा भी है?

कवि नही तो बे मौक़े गीत क्या कभी अच्छा लगता है?

नाथ तो वह मौक़ा भी सुना डालिए।

कवि जी, वह मौका यह है कि हीरोइन तो ससुरालमे है, और हीरो—

सेठ और हीरो—

कवि हीरो जेलमे।

नाथ जेलमे। एब्सर्ड!! मै जेलमें क्यो?

कवि अरे साहब! सचमुचकी जेलमें नही, फिल्मी जेलमें।

नाथ जी नही, जेल कैसी भी हो आखिर जेल है और मुझे जेलसे

सख्त नफरत है। इसीलिए मैंने अपना पोलिटिकल कैरियर छोडा। सेठजी! यह गीत बदलवा दें।

सेठ — हद हो गयी मिस्टर नाथ। इस तरहसे मेरा सारा कारबार चौपट हो जायेगा। हीरोइनको फिमेल सोलो पसन्द नही, आपको डुएट पसन्द नही, आखिर फिल्ममें गीत होंगे भी या नही?

नाथ — मैं तो सोचता हूँ बिना गीतोंके ही फिल्म बन सकती है।

सेठ — आपको हुआ क्या है? भला बिना गीतोंके स्टोरी कहाँसे आयेगी? और बिना स्टोरीके फिल्म कैसे बनेगी?

कवि — यही तो यह नही समझते। गीतोंपर ही तो सारा महल खडा होता है। यानी यो समझिए कि गीत एक तरहसे वे दरवाजे है जिनमें होकर स्टोरी फिल्मके अन्दर आती है। इसीलिए तो गीतोंपर इतना जोर है, और इसीलिए गीतोंकी इतनी तलाश है।

नाथ — तो आप करते रहिए तलाश। मेरे पास वक्त नही, मैं चला।

सेठ — अरे! सुनिए तो मि० नाथ। मि०! लो, यह भी गये। लेकिन भई मि० नाथ एक बात पतेकी कह गये। पब्लिक-का टेस्ट तो जरूर बदल रहा है। इधर कई पिक्चर फ्लॉप हो चुकी है। मैं तो सोचता हूँ, तुम अपने गीतोंमें थोडा सा रियलिज्म लगा लो, तो अच्छा ही रहेगा।

कवि — लेकिन यह कैसे हो सकता है?

सेठ — क्यों नही हो सकता?

कवि — इसलिए कि रियल्टी और गीतका मेल जरा मुश्किल है। आप ही बताइए आपने रियल लाइफमें किसीको गाते देखा है? सो भी डुएट और कोरस?

सेठ — क्यों, तमाम लोग गाते है !

कवि — जैसे ?

सेठ — जैम, जैसे मेरा धोवी ही गाता है।

कवि — तो फिर कहिए तो फिल्ममें एक धोवियोंका गीत भी रख दूँ।

सेठ — लेकिन यह तो वहुत पहले एक फ़िल्ममें आ चुका है।

कवि — अच्छा, मान लीजिए म्यूजिक स्कूलमें गीतकी रिहर्सल दिखायी जाये।

सेठ — कई वार हो चुका है।

कवि — यूनिवर्सिटीके जलसेमें कोरस ?

सेठ — पिट चुका है।

कवि — चैरिटी शोमें डान्स ?

सेठ — यह भी हो चुका।

कवि — अच्छा, शादीमें औरतोंका गीत ?

सेठ — बहुत पुराना खयाल है।

कवि — ऊँटोंका काफ़िला गाता हुआ जा रहा है।

सेठ — लेकिन मैं कहानी हिंदुस्तानकी चाहता हूँ।

कवि — मकान वनाते हुए मजदूर गा रहे है।

सेठ — वहुत वार गा चुके है।

कवि — तो फिर आप ही वताइए, मैं कहाँसे गीत लाऊँ।

सेठ — कोई नया वात सोचो।

कवि — नयी वात तो मि० नाथ वता रहे थे, आपको जँची ही नही।

सेठ — क्या ?

कवि — यही कि विना गीतोंके ही फ़िल्म वन सकती है।

सेठ — वाह ! ऐसा कभी हुआ है आज तक।

कवि — इसीलिए तो नयी वात है।

| | |
|---|---|
| सेठ | बेकारकी बातें मत करो। तुम्हें मालूम है, मैंने मिस फातिमाको पाँच सालका कण्ट्रैक्ट दिया है, प्ले बैकका। फिल्ममें गीत न हुए तो उसका क्या होगा ? |
| कवि | सो तो, मेरा भी क्या होगा ? |
| सेठ | बिलकुल ठीक। |
| कवि | तो फिर ? |
| सेठ | तो फिर क्या, कोई नया, फड़कता हुआ रियलिस्टिक गीत लिखो। |
| कवि | यही तो उलझन है। आजकी लाइफमें रियल्टी और गीत दोनों एक साथ नहीं मिलते। |
| सेठ | जरा मेहनत करो, जरा तलाश करो। खोजनेसे सब मिलता है। ऐसा गीत भी मिलेगा ? |
| कवि | यानी अब गीत लिखनेकी बजाय गीतकी खोज करूँ। |
| सेठ | हर्ज क्या है। |
| कवि | यानी गीतकी खोज—गीतकी खोज—लो मारा ! |
| सेठ | क्या हुआ ? |
| कवि | गीत मिल गया सेठ! जैसा गीत चाहते थे, बिलकुल वैसा ही—गीतका गीत और रियल्टीकी रियल्टी। लीजिए सुनिए— |

जीवन की राह में गीत कहाँ है।
गीत कहाँ है।
आओ मन! वहाँ चलें गीत जहाँ है।
गीत जहाँ है।
गीत नहीं है तो फिर जिन्दगी है सूना।

दर्द की अंधेरी यह रात हुई दूनी।
चुप न रहो, बात करो।
रात को प्रभात करो।
गीत भी मिलेगा वहीं प्रीत जहाँ है।
प्रीत जहाँ है।

■

धर्मवीर भारती

# गुलिवरकी तीसरी यात्रा

[ एक समुद्री कहानी ]

जब भाई गुलिवरजी लिलीपुट और ब्राडबिगनैगकी यात्राएँ कर इंग्लैण्ड वापस आये तो उनकी उम्र ढलने लगी थी। एक दिन शीशा देखते हुए उन्हें अपने सिरमें एक सफेद बाल दीख पडा। सफ़ेद बालको देखते ही उनमें आत्मज्ञान जागा और उन्होंने सोचा कि जो कुछ भी करना है वह जल्दी कर डाला जाये। बस झटसे उन्होंने एक शॉपगर्ल ( सौदा बेचनेवाली लडकी ) से शादी कर ली। एक छोटा-सा बँगलेनुमा मकान खरीद लिया। दो-चार मुर्गियाँ और दो-चार बत्तकें पाल ली। घरके सामने थोडा-सा टमाटर पालक धनियाँ वगैरह बो लिया जहाँ सुबह धूपमें आरामकुरसी डालकर वह धूप खाते थे और पत्रिकाएँ पढते थे जिनमें उनकी कविताएँ छपा करती थी। एक प्रति तो उन्हें नियमित रूपसे मिलती थी और दो-चार प्रतियाँ वे सम्पादककी निगाह बचाकर उठा लाते थे जिससे वे उधार चुकाया करते थे।

बहरहाल, चढता हुआ बुढापा, नयी-नयी बीबी, जाडेकी हलकी सुनहली धूप और मुफ़्तकी पत्रिका—ऐसे-ऐसे सयोग जुडे कि भाई गुलिवरजी एका-एक काव्यप्रेमी हो गये। अखबारकी दूकानपर जाकर वे पत्रिकाएँ उलटते-पलटते कविताएँ पढते और रख देते। इस तरह मुफ्त काव्य-रस पान कर तृप्त होकर घर लौट आते।

एक दिन जब उनकी पत्नी बाग़के कोनेमें शलजम खोद रही थी, भाई गुलिवरजी चुपचाप बैठे अनन्तको ओर देख रहे थे। एकाएक उनके हृदय-

पटलपर अतीत स्मृतियाँ चमक उठी—कैसा अजब था वह बौनोका देश ! और उससे भी भयावना था वह देवोका, महामानवोका देश !! लेकिन उनसे एक भयानक भूल हो गयी थी। वह दोनो द्वीपोमें गये किन्तु उन्होंने लिलीपुट और ब्राडविगनैग कहीके भी कविके दर्शन नही किये थे। यह वात उनके मनमे रह-रहकर खटकने लगी। सहसा उनकी पुरानी यात्रा-प्रवृत्ति उदल पडी और उसी क्षण उन्होने निश्चय कर लिया कि वे यह यात्रा करके ही रहेंगे।

जव उन्होने यह निर्णय पत्नीको वताया तो वह रोयी और उसने खाना-पीना छोड दिया। लेकिन गुलिवर भाई घुमक्कड ठहरे। वे तो चल ही दिये। अन्तमें हारकर उनकी जवान पत्नीने आँसू पोछे, आँखोके नीचे वैगनी पाउडर लगाया। परदेशी पतिकी यादमें काले वस्त्र धारण किये और पडोसीके साथ सिनेमा देखकर और पिकनिक जाकर किसी तरह विरहकी घडियाँ काटने लगी।

गुलिवर भाईने अपनी किश्ती मझधारमें छोड दी। पहले दिन तूफान आया, दूसरे दिन नरभक्षी चिडियाने उनके जहाजपर हमला कर दिया। तीसरे दिन उनके रास्तेमें वर्फका तैरता हुआ पहाड आ पडा, चौथे दिन ये एक चट्टानसे टकराते-टकराते वचे, पांचवें दिन ह्वेल मछलीने पूँछ मार दी, छठे दिन इन्हें हाई व्लडप्रेशर हो गया और जव ये अपने जीवनकी सारी आशा छोड चुके थे तो सातवें दिन इन्हें किनारा नजर आया। ये नन्हें-नन्हें हाथ-भरके पेड, दो या तीन वीतेकी ताल-तलैया, दस फीट ऊँचे उत्तुग पर्वत-शिखर—वह लिलीपुटको खूव पहचानता था। लिलीपुटके वौने सभी इन्हें पहचानते थे। गुलिवरजीने उन्हें छोटी छोटी आलपीनें वाँटनी शुरू कर दी जिन्हे वे खुशी खुशी घर लाये।

अन्तमें गुलिवरजीने अपने मतलवकी वातपर आना ठीक समझा। एक वौनेको हथेलीपर उठाकर चेहरेके सामने कर लिया और उससे कविका पता पूछा। यह देखकर कि इन महामानव गुलिवरके मनमें भी काव्य-प्रेम

उमड़ा है, बौना बड़ा खुश हुआ। उछलकर उनके कन्धेपर जा पहुँचा और नाचने लगा। अन्तमें इनके कर्णविवरमें मुँह डालकर उसने भाव-विभोर स्वरमें कहा—'तो तुम हमारे कविको देखने आये हो। कैसा स्वर्गोपम रूप है उसका। उसकी आँखें स्वप्नाच्छन्न हैं। वह बिलकुल देवकुमार है, धूपमें कुम्हला जाता है। वह इन्द्रधनुष है, गुलाबका फूल है, कुम्हड़बतिया है।

'हाँ, हाँ वह रहता कहाँ है। मैं उसके दर्शन करूँगा।'

'दर्शन करोगे?' बौना घबरा गया। उलटकर गुलिवरकी जेबमें गिर पड़ा। गुलिवरने निकाला तो वह काँपते हुए बोला—'लेकिन वह बहुत सुकुमार है। लिलीपुटकी अनिन्द्य सुन्दरियाँ भी उसकी कोमलताके आगे लजा जाती हैं। वह तुम्हें देखकर भयसे प्राण त्याग देगा और हम कवि-विहीन हो जायेंगे।'

खैर, गुलिवरने बहुत समझाया-बुझाया, आश्वासन दिया तो बौना बोला—'बुझे हुए सितारोंकी घाटीमें एक आश्रम है। वहाँ एक महान् सन्त रहता है जो नलीसे पानी पीता है और जिसे झरोखेमें से खाना पहुँचाया जाता है। वह नक्षत्रोंसे बात करता है। खरगोश और चूहे उसके शिष्य हैं। उसी सन्तके आश्रममें हमारा कवि रहता है।

गुलिवर साहब वहाँ पहुँचे तो मालूम हुआ कि कविजी यहाँसे लिली-पुटके दूसरे नगरमें पहुँच गये। गुलिवर साहबने सन्तको प्रणाम किया और कविके नगरकी ओर चल दिये। नगर लिलीपुटके दूसरे छोरपर था क्योंकि गुलिवरजीको वहाँ पहुँचते-पहुँचते पूरे बाइस मिनिट सात सेकेण्ड लग गये।

उस नगरके समीप पहुँचते पहुँचते भाई गुलिवरजीको लगा कि वायु-मण्डलमें अनगिनत ध्वनि तरंगें गुंजन करती हैं। बालूके टीलेके पास झाड़ियों-से घिरा हुआ समुद्र-तटपर कविका नीड़ था। वह नीड़, जिसे गुलिवर लेखक-घर कहेंगे, बड़ा ही सुन्दर बना था और चक्करदार था। यानी वक्त जरूरत उसे उत्तर-पच्छिम पूरब-दक्खिन किसी ओर भी घुमाया जा सकता

था। कविजी जिस तरफ हवाका रुख देखते थे अपने नीडको उधर ही घुमा लेते थे।

गुलिवरको देखते ही कुछ बौने तो डरके मारे भागे, कुछ जो उसके पूर्वपरिचित थे हाथ उठाकर देखने लगे। कुछ झटसे उसके पांवोंके सहारे चढ़कर उसके दामनसे झूलने लगे और उससे उसका कुशल क्षेम पूछने लगे। उन्हें यह जानकर बडी ही निराशा हुई कि भाई गुलिवरजी अब बहादुर जहाजी न रहकर काव्य-प्रेमी हो गये हैं।

पूछनेपर मालूम हुआ कि कवि अभी प्रभुकी वन्दना कर रहा है। गुलिवरने प्रतीक्षा की और जब कवि प्रभु-वन्दना समाप्त कर चुका तब दो बौने एक इमलीकी पत्तीपर थोडा सा नमकीन समुद्रफेन ले आये। कवि इसीमें नाश्ता करता था क्योंकि भारी चीज उसे हजम नहीं हो पाती थी। पहले उसने धरतीमें उत्पन्न होनेवाला पार्थिव भौतिक जीवन-दर्शन आजमाया और फिर स्वर्ग-नक्षत्रसे झरनेवाला आध्यात्मिक जीवन दर्शन लेकिन वह इतना सुकुमार था कि दोनोंको पचा नहीं पाया।

लेकिन कठिनाई यह थी कि वह कविसे बातें करे तो कैसे। जिस घरमें कवि रहता था उसमें तो गुलिवर बैठ भी नहीं सकता था, घुस भी नहीं सकता था। अन्तमें गुलिवरने दोनों हाथोंसे थामकर उस घरको नींव सहित उखाड लिया और सामने एक पेडपर उसे टिकाकर बैठ गया।

गुलिवरने देखा—कवि शान्तिसे बैठा नाश्ता कर रहा है। कवि सचमुच बहुत सुन्दर था। जौके बराबर उसकी नन्ही-नन्हीं आँखें स्वप्नाच्छन्न थीं। उसका रत्ती-भरका माथा था जिसपर स्वर्ण अलकें क्रीडा करती थीं। उसकी बोली, उसका बाल, उसका कोट-पैण्ट, जूता सभी अपने ढंगका अनोखा था।

कविने गुलिवरको देखा और मुसकाकर हाथ बडे कलात्मक ढंगसे हिलाकर कहा—'आइए। गुलिवरने श्रद्धासे हाथ जोडे। कविकी शिष्टता और मधुरता देखकर उसकी आंखोंमें आंसू आ गये। रुँधे गलेसे बोला—

'धन्य ! आज मेरा जीवन सफल हो गया।'

'जीवन' ! कवि बड़े निराश स्वरमें बोला—जैसे शामकी उन्मन घण्टियाँ बज रही हों। 'जीवन क्या है ? हम लोग तो बौने हैं। हमारा जीवन क्या है ? वायुसे भटकती हुई चेतना-तरंगोंका कोई रूप होता है ? कोई नाम होता है ? नाम और रूपसे बँधे हुए तत्त्वका नाम ही तो तरंग है। और यह क्रियाएँ ही जीवन हैं। जैसे यह बिजली है—उस समय लिलीपुटमें बिजली लग गयी थी—इनमें ज्योति दीखती नहीं, बटन दबाइए तो बिजली जगमगा उठती है।' 'बटन' फिर कहते हुए उसने गहरी साँस ली और अधमुँदी पलकोंसे क्षितिजकी ओर देखने लगा। उसकी पलकोंपर स्वप्नोंकी घाटियाँ उतर आयीं। उसका वक्ष श्वास-प्रश्वाससे परिलक्षित होने लगा।

धीरे-धीरे कविने आँखें खोलीं और बहुत धीमे स्वरमें बोला—मैं बहुत थक गया हूँ।' वह गद्देदार सोफेपर लेट गया और गुलिवरने बिजलीका पंखा खोल दिया। कविने करवट बदली और कहा—'बड़ी गरम हवा इस पंखेसे आती है।' गुलिवरने पूछा—'दरवाजा घुमाकर समुद्रकी ओर कर दूँ ?' तो कविने हाथ उठाकर कहा—'नहीं-नहीं ! मेरे लघु-लघु गातपर सागरसमीर आघात करती है।'

अब गुलिवरने कविके कमरेकी ओर निगाह डाली। लिलीपुटमें इससे सुन्दर कमरा कोई नहीं था। नीचे सुन्दर फर्श-तख्तपर मखमली गद्दे—सुन्दर कलात्मक तकिये। एक कोनेकी मेजपर दर्पण, शृंगार मंजूषा, स्नो, तेल, नेलपॉलिश, रूज् और भाँति-भाँतिके इत्र। दीवारपर एक उसी स्नो कम्पनीका कलात्मक कैलेण्डर, दूसरे कोनेमें एक कम उम्रकी लड़कीका चित्र।

'यह लड़की'—कवि लजा गया उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर बाद गहरी साँस लेकर बोला—'प्रेम मनको तपाकर स्वर्ग बनाता है। प्रेम दिव्य है। पावन है। स्वर्गोपम।'

गुलिवरने कविकी बोली सुनी और अपनी इंग्लैण्ड प्रवासिनी पत्नीकी

याद कर उसकी आँखमे आँसू आ गये।

कवि लेट रहा—'यह खिडकी बन्द कर दीजिए। चिडियाँ शोर करती है।' उसने कहा।

'तो आप जनतामे कैसे मिलते होगे ?' गुलिवरने पूछा।

'जनतामें बहुत घुलमिल नही पाता। एकान्त मुझे अच्छा लगता है। कभी-कभी महाराजकी वर्षगाँठपर गीत सुनाने अवश्य जाता हूँ। पर वह बात दूसरी है।' थोडी देर दोनो चुप रहे। फिर कविने पूछा—'गीत सुनिएगा ?'

गुलिवरके मुँहमे पानी भर आया लेकिन बोला, 'आपको कष्ट होगा।'

कवि बहुत अतिथि-सत्कारी था। बोला—'नही, नही मुझे स्वय नही गाना पडेगा। अलिरेसे काम चल जायेगा।'

'अलिरे ? अलिरे क्या है ?' गुलिवरने पहली यात्रामें काफ़ी लिलीपुटीय भाषा सीख ली थी। पर यह शब्द उसके लिए बिलकुल नया था। 'अलिरे आप नही जानते ?' कवि मुसकराया। उसने झुककर कोनेमे पडा हुआ एक कीडा उठाया और उसे टाँग दिया। वह झींगुर-जैसा लगता था। थोडी देर उसमें-से वैसी ध्वनि आती रही जैसे जिन्दा झींगुर झनकारते थे। फिर एकाएक उसमे-से अजब-अजब सगीत आने लगे।

गुलिवर चकित था। यह कैसा जादूका खेल है। यह मुरदा झींगुर गाता कैसे है ? विस्मयसे उसके बोल नही फूट रहे थे।

'झींगुर ?' कवि हँसा—'यह झींगुर नही है श्री गुलिवरजी ! यह 'अलिरे' है।'

'अलि रे ? यानी भँवरा ?'

'नही, हाँ इसका कलात्मक अर्थ तो यही है। वैसे अलिरेके अर्थ है अखिल लिलीपुटीय रेडियो।—पहले यह एक वैज्ञानिक यन्त्र मात्र था। फिर इसका सास्कृतिक चेतनासे समन्वय हो गया तो यह अलिरे हो गया।' उसके बाद फिर एकाएक कविकी आँखें स्वप्नाच्छन्न होने लगी। वह

क्षितिजकी ओर देखने लगा और बोला—'यह अलिरे क्या है ? केवल एक देह रूप मात्र। यह चेतना, भू-चेतना, लोक-चेतना किसीमें भी अपनेको व्यक्त कर सकती है। यह अलिरे, मैं, सभी तो उसीकी अभिव्यक्तिके माध्यम हैं। रूप धारण कर लेते हैं तो हम हैं आप हैं यह अलिरे है। अन्यथा सभी एक अव्यक्त चेतना हैं।' गुलिवरकी समझमें कुछ नहीं आया। लेकिन कविकी वाणीमें सबसे बड़ा सौन्दर्य यही था। उसकी शैलीमें अत्यधिक माधुर्य था, चित्रात्मकता थी, बड़ा सौन्दर्य था। उसकी शैलीमें पॉलिश थी, सोनेका पानी चढ़ा था, भाषा जगमगाती थी लेकिन उसका तात्पर्य समझमें नहीं आ सकता था। गुलिवर इस भाषा-शैलीसे मुग्ध तो था, लेकिन फिर भी बोला—

'लेकिन यह झींगुर-सरीखी चीज तो बड़ी घिनौनी है। कुरूप है। यह सौन्दर्य-प्रदर्शिनी-जैसा आपका कमरा! आपकी नाजुक अभिरुचि और कहाँ यह गन्दा यन्त्र ? नाम अलिरे तो सुन्दर है लेकिन—

'लेकिन परन्तु व्यर्थ है।' कविने बात काटकर कहा—'प्रभुकी इच्छा है। नियतिकी आज्ञा है। अन्यथा मुझे क्या लेना-देना है! हाँ, इससे कुछ मित्रोंसे सम्पर्क बना रहता है।'

'कैसे ?' गुलिवरने पूछा।

'बात यह है कि दिनमें तीन बार सभी कलाकारोंके गीत, अपने नाटक, अपने उपदेश, अपनी डायरी, अपनी आत्मकथा, अपनी कहानी, अपने धोबीका हिसाब, अपनी आलोचना, अपना फीचर, अपने उपन्यास विस्तारित होते हैं। इससे सुननेवालोंका सांस्कृतिक स्तर ऊँचा होता है। अच्छा अब रूप स्नानका समय आ गया सुनिए।'

'रूप-स्नान'के विषयमें जिज्ञासा करनेपर ज्ञात हुआ कि दिनमें तीन बार कार्य-क्रम होता है। प्रातःकाल 'रूप-स्नान', दोपहरको 'स्वप्नविश्राम' रातको 'हृदय-स्पर्श।'

जिस प्रकार अलिरेने अपने यहाँके कवियोंको सम्मान दे रखा था

उनसे गुलिवर बहुत प्रभावित हुआ और उसकी तुलनामें अपने यहाँके बी० बी० सी० के कार्यक्रमोंको गालियाँ देता हुआ कविको श्रद्धासे नमन-कर अपने जहाजको लौट आया।

दूसरे दिन स्वयं कवि उनसे मिलने आया और गुलिवरके भावी कार्य-क्रमके बारेमें पूछता रहा। जब उसने बताया कि वह ब्राडबिगनैगके कविसे भी मिलने जायेगा तो लिलीपुटके कविकी आँखें फैल गयीं और वह दहशतसे देखने लगा।

गुलिवरने कारण पूछा तो वह बोला—ब्राडब्रिगनैगका कवि बड़ा क्रूर है। एक बार मैं उससे मिलने गया तो उसने मुझे अपने हृदयसे लगा लिया। मेरा पाँव उसके बटनमें फँस गया और मुझे मोच आ गयी। मैं दो माह तक अस्वस्थ रहा।'

'लेकिन यह तो उसके स्नेहका प्रभाव है।'

'सो तो है।' कविने लट छिटकाकर भौं मटकाकर कहा—'लेकिन जब कोई पर्वताकार व्यक्ति मुझ जैसे छोटे-से बौनेको अपने हृदयसे लगाना चाहता है तो उससे भी मुझे कष्ट हो जाता है। और वैसे भी वे मुझे तंग करते हैं, वे बड़े क्रूर हैं।'

अन्तमें कवि स्नेह-अभिवादन कर चला गया।

एक दिन विश्राम कर दूसरे दिन गुलिवरने ब्राडब्रिगनैगके लिए जहाज खोला। लिलीपुटसे ब्राडबिगनैगका रास्ता काफ़ी सीधा था। छह रोजमें जहाज पहुँच गया। ब्राडबिगनैग लिलीपुटका सर्वथा उलटा, देवोंका द्वीप था। ऊँचे-ऊँचे साठ सत्तर फीटके लोग हाथीकी तरह झूमते थे। सबसे पहले गुलिवरने जहाजको पहाड़के पीछे छिपा दिया कि कहीं कोई देव उसे खिलौना समझकर उठा न ले जाये। वह इस पशोपेशमें था कि कविका पता किससे पूछे क्योंकि यहाँके निवासी उसे देखते ही खिलखिला उठते थे, उसे एक हाथसे दूसरे हाथमें उछालने लगते थे या आइसक्रीममें तैराने लगते थे।

ब्राडविगनैगमें उस दिन बडा उत्सव मनाया जा रहा था। वह ब्राड-विगनैगकी भाषा समझता था। बग़लमे जाते एक देवने अखबारमे लपेटे खिलौने रखकर अखबार नीचे फेंक दिया। गुलिवर चुपचाप खडा रहा। इतना लम्बा चौडा था वह अखबार कि उसे उठाना तो दूर रहा जब गुलि-वर दस क़दम चल चुका तब वह शीर्षक तक पहुँचा और एक-एक अक्षर जोडकर उसने पढा कि आज ब्राडबिगनगके महाराजके भतीजेका जन्म-दिवस है। 'बस-बस पता चल गया कवि यही होगा।' गुलिवर गिरता-पडता उसी ओर दौडा।

राजमहलमें निगाह बचाकर सिपाहियोंके पैरके नीचेसे होता हुआ किसी तरह अन्दर पहुँचा। अन्दर बडी धूमधाम थी। पहले शहनाई बजी, फिर उसके बाद द्वीप-भरके देश-भक्त जिन्हे परमिट लेना था, हाथके कते-बुने कपडे पहनकर आये और उन्होने उसके चित्र लिये, डाकूमेण्टरी फिल्म-वालोंने उसकी फिल्में बनायी, ब्राडबिगनैग रेडियोने रिले किया। लेकिन कवि कही नही दिखाई पडा। गुलिवर कुछ निराश-सा हो गया।

इतनेमें उसे वह किसान दीख पडा जिसके यहाँ वह पहली यात्रामें रह चुका था। किसान बहुत बूढा हो गया था। उसकी कमर झुक गयी थी। वह हाँफ हाँफकर चलता था। गुलिवर एक छलांग मारकर उसकी जेबमें जा पहुँचा। किसान गुलिवरको देखकर बहुत खुश हुआ। गुलिवरने उससे पूछा—तो उसने कहा—'ब्राडबिगनैगका कवि ? तो तुम तो बहुत उलटी दिशामें चले आये। वह तो वहाँ रहता है द्वीपके उस छोरमे जहाँ ग़रीब गोताखोर लोग रहते हैं।'

'वहाँ ?'

'हाँ, वहीं एक छोटे-से अस्तबलमें रहता है। परसों मेरे पास आया था। मेरे बीमार बच्चेको कम्बख्त उठाकर चला गया। तुम उसके पास जाकर क्या करोगे ?'

'दर्शन करूँगा !'

'दर्शन करोगे ?' गुलिवरको हाथसे दवाये हुए वह वुड्ढा राजमहलमे आया और वाहर आकर ठठाकर हँसा—'तुम उसके दर्शन करोगे ? तुम्हारे-जैसे कीडे मकोडेको तो वह चुटकीमें मसल देता है।'

लेकिन गुलिवर अपनी ज़िद्दपर अडा रहा। अन्तमे वूढेसे विदा होकर वह गोताखोरोकी वस्तीकी ओर चल पडा। वह ब्राडविगनैगके उन गोता-खोरोकी वस्ती थी जो नर-भक्षी मछलियोसे लडकर मूँगा और मोती वटो-रते थे। और शामको आकर राजाके सिपाही उनसे मूँगा और मोती छीन लेते थे। ब्राडविगनैगका सारा वैभव उन्हीके कारण था पर ये चीथडोमें लिपटे रहते थे। ब्राडविगनैगके कविने राजमहल छोडकर अपने लिए यही मुहल्ला चुना था।

वह एक छोटा-सा अस्तवल था और उसमे कवि तनकर खडा भी नही हो सकता था। कवि एक विशाल हिमशिखरकी भाँति था और चलता था तो लगता था पर्वत डोल रहा हो। लगता वह एक हाथ उठाये तो आसमानसे चाँद और सूरज तोड लाये और क़दम उठाये तो तीन कदमोमें वसुधाको नापकर फेंक दे—उसकी सरलता, स्नेह और ममता!

गुलिवरने जाते ही उसके पैरपर सिर रख दिया। पहले तो उसने समझा कि कोई कीडा-मकोडा उसके पाँवोपर चढ आया है, और दो दफे पाँव पटक दिया। गुलिवर दस फीट दूर जा गिरा। लेकिन फिर धूल झाड-कर उठ खडा हुआ और कविके पैरोपर गिर पडा। इस वार कविने नीचे देखा और गरज उठा—'कीडे तेरी यह हिम्मत ?' और उसने गुलिवरको पकडकर लटका लिया। थोडी देर तक उसे हवामें झुलाता रहा और फिर वोला—'पटक दूँ ? तेरी हड्डी-पसली विखर जाये ?' गुलिवरकी घिग्घी वँध गयी। कविने उसे एक खूँटीपर टांग दिया—'कहाँसे आया है ?'

'इगलिस्तानसे।'

'इगलिस्तानसे।'

'वहाँके सम्राट्ने मेरे नाम वारण्ट निकलवाया है। मैं सब जानता हूँ इंगलिस्तानका सम्राट्, मेरे सम्राट्, दुनिया-भरका सम्राट् मेरा राज जानना चाहते हैं लेकिन मैं यूँ चुटकीसे उन्हें मसल दूँगा।'

गुलिवर कुछ नहीं बोला—उसके प्राण कण्ठ तक आ गये थे। इस हत्यारे काव्य प्रेमने उसे कहाँ ला पटका? थोडी देरमें कविने उसे उतारकर जमीनमें रख दिया। 'तुम मेरा राज जानना चाहते हो? भाग जाओ, अभी भागो वरना'—और इसके पहले कि कवि अपने विचारोंको कार्यान्वित करे गुलिवर जान छोडकर भागा। चलते-चलते रात हो गयी और वह सडकके किनारे एक बेंचके नीचे खिन्न मन होकर लेट रहा। उसके घुटने और कोहनियोंमें खरोंच आ गयी। वह सोचने लगा कितना सभ्य और शीलवान् था लिलीपुटका कवि।

रात हो गयी थी। गुलिवर जाडेके मारे ठिठुर रहा था। करवटें बदलता हुआ अपने भाग्यको कोस रहा था कि इतनेमें उसे लगा कि धरती काँप उठी हो। किसीने अपनी विराट् उँगलियोंमें फाँसकर उसे ऊपर उठा लिया। गुलिवरने प्राणकी आशा छोड दी। उसने देखा। कवि था।

'डरो मत।' कविने कहा—'तुम इतनी दूरसे आये और बिना कुछ खाये-पिये चले आये। अपमान करते हो मेरा। चलो!' और गुलिवरको अपनी हथेलीपर आरामसे बिठाकर वापस ले आया। किसी तरह वह झुककर अस्तबलमें पहुँचा और सिकुडकर बैठ गया। कुछ घास सुलगाकर उसने बगलमें एक चायकी केटली चढा रखी थी, उसमें से चाय सिझाने लगा।

गुलिवरने अपने चारों ओर निगाह डाली। बहुत ही गन्दा अस्तबल था। कहते हैं पहले उसमें राजाके घोडे रहा करते थे। उनके लिए अब एक नये अमरीकन स्टाइलका अस्तबल बन गया है। यह बहुत दिनोंसे खाली पडा था और कविको जब कहीं ठिकाना नहीं मिला तो वह इसमें रहने लगा। इस गन्दे अस्तबलमें कवि तनकर तो खडा हो ही नहीं सकता था उसके पाँव भी कैसे फैल पाते होंगे यह गुलिवरकी समझमें नहीं आता था।

लेकिन इसी अस्तबलका कवि ऐसे गीत लिखता था जिसके स्वर-स्वरमें लपटें धधकती हों और ऐसे गीत लिखता था जिसके बोल बोलमें अमृत छलक पड़ता हो। कविकी कल्पना कैसे पंख पसारकर उड़ जाती थी, यह आश्चर्यकी बात थी। और इससे भी आश्चर्यकी बात तो यह थी कि गोताखोरोंके इस दरिद्र मोहल्ले और अस्तबलकी इस गन्दगीसे कवि कहाँसे यह रस खींच लेता है? गुलिवरको लिलीपुटके राजकविका वह कक्ष याद आया जहाँ रेशमी परदे लहराते थे—धूपछाँहकी आँखमिचौनी होती थी। कहाँ वह सौन्दर्य-कक्ष कहाँ यह गन्दा अस्तबल? फिर गुलिवरको याद आया कि ऐसे ही गन्दे अस्तबलमें ईसामसीह भी पैदा हुए थे।

इतनेमें कविने कहा—'पीते क्यों नहीं चाय?' गुलिवरने देखा उसके सामने एक गिलासमें चाय रखी हुई थी और वह गिलास बालटीसे भी बड़ा था। गुलिवरके प्राण सूख गये। 'लेकिन इतना?' उसने डरते हुए पूछा। 'थोड़ा-थोड़ा करके पी लो।' कविने बहुत स्नेहसे कहा। गुलिवरजी पशोपेशमें पड़ गये। 'तुम्हें पीनेमें दिक्कत होगी। लाओ मैं पिला दूँ।' और कविने जलती हुई चाय चुल्लूमें ली और उसे पिलाने लगा। गुलिवर चीखा—'हाथ जल जायेगा।' कवि हँसा और बोला—'यह हाथ जलनेका आदी हो गया है। इससे भी ज्यादा जलती हुई चीज मैं इन हथेलियोंपर रोप चुका हूँ।'

गुलिवर चाय चखते ही घबरा गया। कड़वी चाय! एक दाना शक्करका नहीं। कविने उसका मुँह देखते ही कहा—'शक्कर उसमें नहीं है। पिछले साल-भरसे ऐसी ही चाय पीनेकी आदत पड़ गयी है मेरी। तुम अगर कलतक रुको तो दो-एक गीत बेचकर शक्कर खरीद लाऊँगा।'

आतिथ्य-सत्कारके बाद कविके मुखपर एक अजब-सा आत्म-सन्तोष झलक आया। उसने गुलिवरसे कहा कुछ नहीं, पर बैठा बैठा अपना एक गीत गुनगुनाता रहा। थोड़ी देर बाद उसने गुलिवरसे पूछा—'सोओगे कब? लेकिन बिस्तरा मेरे पास नहीं है। खैर तुम्हारे लिए तो इन्तजाम

हो सकता है। उसने अपना कुरता उतारकर बिछा दिया। इतना बडा था वह कुरता कि बिछाने और ओढनेका पूरा इन्तजाम हो गया। कवि नगे बदन ही लेट रहा। गुलिवरने कुछ बातें करनी चाही तो उसने डांटकर कहा—'सो जाओ अब। कल बातें होगी।'

गुलिवरने करवट बदली। कवि भी वही लेट गया। हालाकि उस पर्वताकार कविके बगलमे चूहे-जैसा गुलिवर मन-ही-मन कांप रहा कि कवि-ने करवट ली और गुलिवरजीकी हड्डी-पसलीका पता न चलेगा।

थोडी देर बाद पतिगोके बराबर बडे-बडे खूंखार मच्छरोने हमला किया। गुलिवर तो कुरतेमें लिपट गया लेकिन कविके नगे बदनपर मच्छर टूट पडे। उनकी खून चूसनेकी आवाज इतनी भयानक थी कि गुलिवर चौककर जाग गया। गुलिवरके उठनेकी आहटसे कवि भी जाग गया। उसने बदनपर हाथ फेरा। जहां मच्छरोने काटा था वह मास फोडोकी तरह फूल आया था। उसने गुलिवरसे कहा—'मै बाहर सो रहूंगा। ऐसे तेरी नीदमे बाधा पडेगी।' गुलिवरको बडी आत्मग्लानि हुई। कहां इन परि-स्थितियोमें आकर वह कविके सिरपर भार बन गया। उसने बहुत विनय की और कविसे कहा—'यह रात जागते-जागते काटी जाये।' अन्तमे दोनो उठकर बैठ गये।

गुलिवर उसे लिलीपुटके कविके बारेमे बताने लगा। ब्राडबिगनैगका कवि सहसा उल्लाससे भर गया—'कैसे है लिलीपुटका कवि अब? तुम जानते हो वह बहुत प्रतिभाशाली है। ससारमे एक ही कवि है जिसे मैं प्यार करता हूं वह है लिलीपुटका कवि।'

'हां, वह भी आपका जिक्र करता था।'

'क्या कह रहा था?' कविने बडी व्यग्रतासे पूछा—जानते हो जिस वक्त सभी लोग ब्राडबिगनैग और लिलीपुट भाषाका विरोध कर रहे थे। उस समय मैंने उसका और उसने मेरा साथ दिया था। लेकिन अब वह राजपथपर है, स्वर्ण पथपर है, मैं जन-पथपर हूं, मूल पथपर हूं, लेकिन वह

मुझे प्यार करता है ।'

'लेकिन वह तो आपके बारेमें—'

'चुप रहो । तुम उसकी बात नही समझ सकते ।' कविने डाँटकर कहा । पर थोडी देर बाद वह गम्भीर हो गया और सजीदा आवाज़में बोला—'अब वह मुझसे नाराज है । मैं जानता हूँ वह मुझसे नाराज है । कभी-कभी विशाल और विराट् होना भी पाप है । बहुत से लोग जिन्हें तुम प्यार करना चाहते हो, जिन्हें तुम अपने समीप लाना चाहते हो, वे तुम्हारी विराटता समझ नही पाते । तुमसे चिढ जाते हैं । और अपनी सीमित सकीर्णताकी रक्षा करनेमें तुम्हारी विराटताको तो अस्वीकार करते ही हैं, तुम्हारे स्नेहको भी अस्वीकार करने लगते हैं ।' और फिर वह बहुत उदास हो गया । गुलिवरकी समझमें कुछ न आया पर वह कुछ बोला नही । कवि कहता गया—'और सच बात है जबतक तुम्हारे साथी विराट् न हो, तुम्हारा वातावरण विराट् न हो, तुम्हारा स्नेह विराट् न हो, तबतक विराट्की कल्पना ही कठिन है । तुम्हें ग्रहण करनेवाली समाज-व्यवस्था ऐसी है कि जिसने इसको समर्पण किया वह लिलीपुटका बौना हो जाता है । अपमानव बनकर रह जाता है । और जिसने भी उसका निषेध किया उसके विरुद्ध विद्रोह किया वह विद्रोहमे अकेला पड जाता है । उसे अतिमानव बनना पडता है । एक स्वस्थ सन्तुलन हो ही नही पाता क्योकि समाज-व्यवस्थामें सन्तुलन है ही नही ।' कवि सहसा उठकर टहलने लगा यद्यपि अस्तबलकी छत नीची थी और उसे झुककर चलना पडता था । गुलिवरकी ओर देखकर बोला—'कितना छोटा कमरा है । लगता है, इसे मैं ओढे हुए हूँ । लेकिन टहलनेकी मेरी आदत है । अच्छी आदत नही । जानता हूँ यह ग्रामीणता है, अशिष्टता है । मैं जानता हूँ मैंने विद्रोह न किया होता, समर्पण कर देता तो मुझमें एक पॉलिश आ जाती । लेकिन ऐसा आदमी आत्म-कायर और निर्वीर्य हो जाता है । वह मन-ही-मन सबसे डरने लगता है । दूसरी ओर जो विद्रोह करता है उसकी आत्मा निर्भीक

हो जाती है। वह तूफानोंको सीनेपर झेल सकता है। पहाड़ोंको उखाड़ फेंकता है, ज्वालाओंको पी जाता है। लेकिन उसे अकेले चलना पड़ता है बिलकुल अकेले। धीरे-धीरे अकेलापन उसकी रग-रगमें बस जाता है। वह अपनेसे अपनी भाषामें बातें करना सीख लेता है। सामाजिक जीवनसे उसका सम्बन्ध टूट जाता है, जैसे मैं। सहज सरल मानवीय जगतसे मेरा सम्बन्ध टूट-सा गया है। उससे क्या मुझे कम कष्ट है? और इससे भी बढ़कर कष्ट मुझे तब होता है जब मैं देखता हूँ कि लिलीपुटके कविकी अनोखी प्रतिभा कितनी गलत दिशामें मुड़ गयी। हिरण्मय पात्रके नीचे ढँका हुआ उसकी आत्माका सत्य कितनी वेदनासे छटपटा रहा है। वह वाणीका अलबेला पुत्र था। मेरी आत्मा एकान्तमें रोती है।' फिर कविकी भृकुटियाँ तन गयीं और वह बाहरके अन्धकारमें देखने लगा। 'लेकिन कोई बात नहीं है। मैं भविष्यमें देख रहा हूँ वह दिन आ रहा है जब यह विषमता, यह असन्तुलन समाप्त होगा। जब आदमीकी आत्मा कुण्ठित न होगी सहज सरल मानवीय स्तरपर उसका विकास होगा। यह दिन मैं नहीं देख पाऊँगा। लेकिन मुझे सन्तोष है कि मेरी हड्डियाँ उस आनेवाली दुनियाकी नींव बनेंगी। मेरी हड्डियाँ।' सहसा किसी अदृश्यकी ओर हाथ फैलाकर अट्टहास किया।—'दधीचि अपनी हड्डियाँ देकर मर गया। वह देवासुर संग्रामका परिणाम देखनेके लिए जीवित नहीं बचा। लेकिन उसीकी अस्थियोंके वज्रने ही इन्द्रको विजय दिलवायी। काफी है। मेरे लिए इतना काफ़ी है।' और कवि घुटनोंमें सिर झुकाकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद भरे गलेसे चौंककर बोला—'तुमने आँखें देखी हैं?'

'कैसी आँख?'

'जिन आँखोंमें मैंने पहली बार उस भविष्यका सपना देखा था। देखोगे?' और उसने अपने गन्दे तकिएके नीचेसे एक मुड़ा-मुड़ाया चित्र निकाला। यह एक तरुणीका चित्र था। कितनी करुण थीं उसकी बड़ी-बड़ी आँखें। गुलिवरको याद आया लिलीपुटके कविकी प्रेमिका उससे रूठ

छोटी ही थी। 'यह आपकी प्रेमिकाका चित्र है?'

'प्रेमिकाका?' कविने रुँधे गलेमे जवाब दिया। 'यह मेरी बेटीका चित्र है। यह बिना दवा और पथ्यके मर गयी थी।' कविने अपनी मैली धोतीके छोरसे बूढी पलकोमें छलक आनेवाला आँसू पोछ लिया और सूनी-सूनी निगाहोसे बाहर अन्धकारमें जाने क्या देखने लगा।

थोडी देर बाद सहसा वह चौंका। 'सुन रहे हो, यह शोर सुना तुमने?'

गुलिवरने चौंककर उसकी ओर देखा—'उठो भागो, जल्दी जाओ। तुम्हारी दुनियामे एक भयानक संघर्ष शुरू हो गया है। उनका नारा है कि वे असन्तुलन मिटाकर छोडेंगे। धरती खूनकी कै कर रही है और नदियाँ और समुन्दरमे आग उडेल रही हैं। जाओ जल्दी करो। आग तुम्हारे नगर तक पहुँच गयी है।'

गुलिवर चौंककर उठ खडा हुआ। इतनी दृढता थी उसकी वाणीमें कि जैसे सचमुच अन्धकारमे कुछ देख रहा है। भागा भागा समुद्र तटपर आया। जहाज खोला।

थोडी देर बाद ब्राडविगनैगका कवि बहुत-से फल-फूल लेकर आया और रास्तेके लिए उसके जहाजपर रखकर बोला—'जाओ उनसे कहना कि इस बार ऐसी दुनिया कायम करें कि उसमें न किसीको अपमानव बनना पडे और न अतिमानव। जहाँ सभी इस प्रेत-योनिसे छुटकारा पा सकें। और रास्तेमें लिलीपुटके कविसे मेरा स्नेह-अभिवादन कहना और बताना कि अब नयी दुनिया कायम होगी जहाँ उसकी प्रतिभा और आत्मा-पर ढँका हुआ हिरण्यपात्र भी उठ जायेगा। उसकी मुक्तिका दिन भी आ गया है।'

गुलिवर चल पडा। इस बार उसने जब ब्राडविगनैगके कविको प्रणाम किया तब उसे ज्ञात हुआ कि श्रद्धा किसे कहते हैं।

उसे जल्दी थी। वह लिलीपुट न रुककर सीधे घर आया। यहाँ पहुँच-कर उसने देखा कि कुछ रक्तपात हुआ जरूर था, पर अब शान्ति है, उप-

द्रवी नजरबन्द हैं। सम्राट्के अधिकार सीमित हो गये हैं। अपने देशमें अपना राज है। सामानपर पड़ोसियोंने कब्ज़ा कर लिया है और मकान राशनिंग अफसरने किसी दूसरेके नाम एलाट कर दिया है।

इससे भाई गुलिवरजीके भावुक हृदयको इतना आघात पहुँचा कि वे एकाएक प्रकाशक हो गये और टेक्स्ट बुक छापने लगे।

इस तरह बहादुर जहाज़ी गुलिवरकी तीसरी यात्रा समाप्त हुई।

●

शारदाप्रसाद श्रीवास्तव 'भुशुण्डि'

# चिमिरखीने कहा था*

प्राइमरी मदरसोंके मुदर्रिसोंकी जबानके कोड़ोसे जिनकी पीठ छिल गयी है, और कान पक गये हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे विश्वविद्यालयके प्रोफेसरों, लड़कों तथा लड़कियोंकी बोलीका मरहम लगावें। जब छोटे-छोटे स्कूलोंमे पढ़नेवाले छात्र, आपसमें गाली-गलौज करते, या एक दूसरेके साथ साला बहनोईका रिश्ता जोड़ते हुए नज़र आते है, तब यहांके शिक्षित स्त्री-लिंग तथा पुल्लिंगवर्ग 'आइए बहनजी, कहिए कुमारीजी, सुनिए भाईजी इत्यादि' मधुवेष्टित शब्द बोलते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। क्या मजाल जो बिना 'आप' और जी' के एक भी लफ्ज़ मुँहसे निकल जाये। उनका शुद्ध शिष्टाचार ऐसा सरस, सरल आडम्बरहीन होता है, जैसे छिलका उतारा हुआ केला। उसपर 'प्लीज़ और थैंक् यू' तो सुन्दरता बढ़ानेमें बिजलीकी लाइटका काम करते है।

ऐसे विमल वातावरणमें पले हुए दो सजीव चलचित्र 'एक सखी दूसरा सखा' दैववशात् साइकिलसे टकराकर हज़रतगंजके चौराहेपर गिर पड़े। एकने साड़ी सभालते हुए कहा—'प्लीज़ इक्सक्यूज़ मी' और दूसरा पैण्टकी क्रीज ठीक करते हुए बोला—'आइ एम सॉरी'। फिर एक क्षण-भर दोनो चुप रहे। लेकिन अन्तमें एकने पूछा

'आप कहाँ पढ़ती है ?'

'आई० टी० कॉलेजमें ? और आप ?'

---

* 'उसने कहा था' नामक प्रख्यात कथाकी पैरोडी।

'यूनिवर्सिटीमें। आप यहाँ कहाँ रहती हैं?'

'सिविल लाइनमें, अंकिलके साथ।'

'मैं भी मुकारिमनगरमें मामाके यहाँ रहता हूँ। इस बार हिन्दीमें एम० ए० करनेका विचार है।'

लडकीने साइकिलके हैण्डिलको मोडते हुए कहा—'मुझको भी हिन्दीमें अधिक प्रेम है। मैंने भी बी० ए० में हिन्दी ही ले रखी है।'

कुछ दूर चलकर लडकेने पूछा—'आप कविता भी करती हैं?'

'आपसे मतलब?' कहकर लडकी आगे निकल गयी और लडका मुँह ताकता रह गया।

इसके पश्चात् कभी छठे-छमासे वे सिनेमा-हाउस या अमीनाबादमें घूमते हुए मिल जाते। लडका मनोरंजनके लिए छेड देता 'आप कविता भी करती हैं?' और उत्तरमें वह कहती 'आपसे मतलब?'

एक दिन जब लडकेने वैसे ही हँसीमें चिढानेके लिए उससे छेडखानी की तब लडकी लडकेकी भावनाके विरुद्ध बोली—'हाँ, करती तो हूँ। देखते नही, इस मासकी 'माधुरी' में मेरी एक कविता प्रकाशित हुई है।'

लडकी चली गयी। लडका भी अपने घरकी ओर रवाना हुआ। रास्तेमें वह अनेक कवियोंकी कविताओंको उलट-फेरकर नवीन रचना तैयार करनेमें निमग्न हो गया। यहाँतक कि वह अपने घरसे दस-बीस क़दम आगे बढ गया और उसे कुछ भी न ज्ञात हुआ। सहसा जब वह एक अन्धेसे टकराया तब उसको होश हुआ कि वह घरसे आगे निकल आया है।

'राम-राम! यह भी कोई कवि-सम्मेलन है। एक पहर बात गया मिठाई और नमकीनकी तो कौन कहे, किसीने एक बूँद पानी तककी सार न ली। भूखके मारे आँख निकली आती है, पेट घुमा जाता है। हमने गवाहियाँ भी दी हैं। मगर ऐसी लापरवाही कहीं नहीं देखी। बेईमान न जाने किस इन्तज़ाममें फँसे हैं कि इधर आनेका नाम तक नहीं लेते। इन्होंने तो कान्यकुब्जोंकी बारातके भी कान काट लिये।'

कवि खजन बोले—'आपलोग इतना घबराते क्यों है ? अभी तो दो ही तीन घण्टे बीते है। जहाँ इतना सहा, वहाँ थोडा और सही। घण्टे-आध घण्टेमें भोजन आने ही वाला है। फिर तो पौ बारह है। नमकीन खाना और खुशीके गीत गाना। मैंने सुना है, कुमारी निबौरीजी स्वय दाना-पानी अपने साथ ला रही हैं। बेचारी बडी शरीफ है। कहती हैं कवि हमारे देशकी नाक हैं। राष्ट्रके उत्थान-पतनका भार इनकी पीठपर इतना अधिक लदा हुआ है कि बेचारे खच्चरसे भी गये बीते हैं।'

'चार दिन बीत गये। पलक नही मारी। कवि-सम्मेलनोमें जागते ही बीता है और अब भी दावा है कि ऐसे कवि-सम्मेलनोको तो मैं चुटकी बजाते अकेले ही चला सकता हूँ। यदि चलाकर न दिखा दूँ तो मुझको इसके मण्डपकी ड्योढी नसीब न हो। गुरु! आज्ञा-भरकी देर है। एक-बार ऐसे ही एक कवि-सम्मेलनमें कविता पाठ करने बैठा तो हद कर दी। मित्र कुछ न पूछो, मैं टससे मस न हुआ और आँखें बन्द किये हुए लगा-तार कविता सुनाता रहा। किन्तु जब मैंने लोचन उन्मीलित किये तब देखा केवल टुटुरूँ टूँ सभापतिजी बैठे ऊँघ रहे थे।'

'इसके माने आप झोला झण्डा लिये हुए कवि-सम्मेलनोकी टोहमें हमेशा चक्कर लगाया करते है?' मुसकराते हुए बगुलेशजीने पूछा।

'ऐसी बात नही। जैसे बिना फेरे पान सड जाता है, अश्व अडियल हो जाता है, वैसे ही बिना सम्मेलनोमे आये-गये कवि भी अडियल हो जाता है, इसलिए कभी-कभी मैं ऐसा कर लेता हूँ, अन्यथा कीचडमें कौन पैर डाले।'

बगुलेशजी बोले—'सच है।' खजनजीने कहा—'पर क्या करें? नस नसमें भूख समा गया है। ओठ अलग सूख रहे है। कुमारीजी अभीतक अपनी पल-टन लेकर नही पलटी। इस समय यदि भिगोया हुआ चना ही मिल जाता तो गनीमत थी। जानमें जान आ जाती, हाथ-पैर बोलने लगते।' मजीराजी, जो जरा ज्यादा मसखरे थे, 'कवेण्डर' जलाते हुए बोले—देखो, मैंने सम्मेलन-

की कपालक्रिया कर दो, अब आप लोगोंको मुसीबतका सामना नहीं करना पडेगा ।' सब लोग हँस पडे और वे चारो खाना चित्त चारपाईपर लेट गये।

खजनजी जुबानसे ओठोको चाटते हुए बोले—'अपने-अपने सम्मेलनोंकी चाल है । इमरतीजीको लाख समझाया गया कि कवि लोग सम नहीं गाते, मगर वे बार-बार खानेके लिए इसरार करती थी, मार्ग-व्यय कम देती हुई कहती जाती थी कि आप लोग चोटीके बाल है । यदि आप लोगोकी सेवा समुचित रूपसे न की जायेगी तो भाषा-भामिनीका सौन्दर्य नष्ट हो जायेगा और आप लोग हम लोगोको सरस रचनाएँ न सुनायेगे ।

एक घण्टा बीत गया । कमरेमे सन्नाटा छाया हुआ है । हाँ, कभी-कभी ओझाजीकी सरौती नीरवताको भग कर देती है । बगुलेशजी क्षुधाके मारे तडप रहे हैं, कहते हैं, 'यदि पेशगी ले लिया होता, तो सीधे घरकी राह लेता, फिर मुडकर भी पण्डालकी ओर न देखता । अब तो नण्डूलकी भाँति आ फँसा हूँ और मजबूर हूँ अपने सकोची स्वभावपर ।'

कवियित्रियाँ बेचारी पेड की हुई फाइलोकी भाँति लाचार थी, किन्तु उनके बिगडे दिल पतिदेव अवश्य पैजामेके बाहर हो रहे थे ।

इस समय लकडबग्घाजी चीखे, 'भूख लगी है ।'

'भूख लगी है ।'

'हाँ, बडो जोरकी लगी है ।'

'अच्छा याद आयी । मेरे झोलेमें घरके बने हुए कुछ लड्डू रखे है, तबतक आप इन्हे खाकर पानी पियें, फिर देखा जायेगा ।'

'सच कहते हो ?'

'और नहीं क्या झूठ ?' यह कहकर खजनजी लड्डू निकालकर देने ही वाले थे कि कमरेके अन्दर वायुके साथ मिष्टान्नकी महक आयी और घ्राण इन्द्रिय-द्वारा कवियोके उदरमे समा गयी । बेचारोंने फटाफट अँखियाँ गाड दीं । मानो मरीजको पेन्सिलीनका इन्जेक्शन लगा । एक महाशयने सुराही, मजीराजीकी ओर तश्तरी बढाते हुए कहा—'श्रीमान्‌जी नमकीन जैसा उन्होने

जम्हाते हुए उसको लेनेके लिए अपना हाथ बढाया, वैसे ही उनका हाथ तश्तरीमे न पडकर देनेवालेकी ठुड्डीमे जा पडा। उसकी तीक्ष्ण खूँटियोका, उनकी कोमल अँगुलियोमे चुभना था कि वे 'वर्र-वर्र' कहकर वर्रा उठे। उनकी इस ऐक्टिङ्से कमरेके अन्दर काफी कहकहा मच गया और कवियोके मलिन मुख धानकी खिली हुई खीलोके समान खिल उठे। इसके बाद सब लोग भूखे बगालीकी भाँति खानेमे जुट गये। किन्तु जब उनका मुखारविन्द गगोत्री और यमुनोत्री बन गया तब उन्हें ज्ञात हुआ कि तरकारीमे लाल मिर्च अधिक थे।

भोजन समाप्त होनेके बाद कविगण बे-परकी उडा रहे थे। कमरा स्टेशनका मुसाफिरखाना हो रहा था। इतनेमे आवाज आयी

'बगुलेशजी!'

'कौन? बमचकजी। आइए महाराज!' कह बगुलेशजीने उनका स्वागत किया और वे छाया पुरुषकी भाति अन्दर धँसते हुए बोले

'अब पण्डाल चलनेकी कृपा करें! स्थानीय कवि उपस्थित हो गये है। देर करनेकी आवश्यकता नही है। आप लोग अपना पेशवाज शीघ्र बदल लें।'

खजनजी पल्ले नम्बरके घुटे थे। आख मारते ही भाँप गये कि ये महाशय यहापर हम लोगोको बनानेके लिए आये हैं। अतएव मुँहका भाव छिपाते हुए बोले—'आप तो बडी जल्दी चोला झाडकर आ गये, मगर वह आनन्द यहा कहाँ, जो रायबरेलीके कवि सम्मेलनमे था, जिसके सयोजक स्वय तूफानमेल थे। कितनी सुन्दर रचनाएँ थी, हुदहुदकी। वाह-वाह, आपने भी उन्हे खूब समझाया था, कि सूरदासकी चौपाइयोमें टियर गैसका असर है, केशवकी कुण्डलियाँ ऐटमबमका काम करती है, बिहारी वीर रसके रसिक थे। आपकी घनाक्षरीको सुनकर तो जाग्रत श्रोताओने भी ऊबाना शुरू कर दिया था।'

दमचकजी खिसियाते हुए बोले—'हे हे, यह सब आपका प्रोत्साहन है।

भला मै तुच्छ जीव किस योग्य हूँ। वास्तवमे तो कविता वही है, जिसको सुनकर भैंस भी पागुर करना छोड दे। यो तो मोहर और दादरा देहातकी दोदियाँ भी गढ लेता हूँ, मगर जब छटकीके ऊपर पव्वा बैठाना पडता है तब चोटोका पसीना एडी तक आ जाता है। टकसाली चीजोका लिखना और ही बात है।'

मजोगर्जीने सुरतीको ओठके नीचे दबाते हुए कहा–'बात तो सत्रा सोलह आने ठीक है। इस समय खजनजी, पैदली मात खा गये।'

खजनजी सिर खुजलाते हुए बोले—'मात राम राम! गुरुजी, यह आप क्या बक गये? एक गीतकार सैकडो घनाक्षरी लिखनेवालोके बराबर होता है। सम्प्रति हिन्दी-साहित्यकी प्रखर धारामे, ऐसे गीतोका लिखना, जिनमें सचारो भावके साथ-ही-साथ निराला, प्रसादका समागम हो, एक टेढी खीर है। कूपमण्डूक बनना दूसरी वस्तु है, किंतु जब समयके साथ चलना पडता है तब आटे-दालका भाव मालूम होने लगता है। आजकल गीत न लिखनेवाले कवियोका जीवन ट्यूबरहित फाउण्टेन पेनकी तरह माना जाता है।'

बीच ही में बगुलेशजी, नाक-भौं सिकोडते हुए बोले—'व्यर्थ बकवाद ही करते रहोगे या चलनेकी भी तैयारी करोगे?'

कवि-सम्मेलन बगुलेशजीके सभापतित्वमे प्रारम्भ हुआ। मच ग्रामो-फोन कविगण रेकॉर्ड थे। सभापतिजी दादकी चाभी देकर चला रहे थे। किन्तु जनताके हूटिंगके कारण स्थानीय कवियोकी दाल न गल पाती थी। वे फटे दूधकी भाति जमनेमें असमर्थ थे। कवि-सम्मेलन क्या था, कवियोकी कसौटी। ऐसे वैसे कवि तो कविता पाठ करनेका साहस ही न करते थे। रग जमता हुआ न देखकर सभापतिजीने कुछ बाहरी कवियोको बुलाना शुरू किया, लेकिन लाख हाथ-पैर मारनेपर भी वे असफल रहे, ढाक वही दाल और रोटी।

पिपीलिकाजीके द्वारा सँभाला हुआ सम्मेलन मुँहके बल गिरने ही वाला

था कि लकडबग्घाजीका नाम पुकारा गया। वे दहलते हुए दिलके साथ मंचपर पधारे और बिना शीर्षक बतलाये हुए ताबड तोड रचनाएँ सुनाने लगे। उनका स्वर टेढे पहियेके समान लहरा रहा था। उनके बैठनेका पोज़ देखकर स्कूली लडकोंने छींटे कसना आरम्भ कर दिया। और वे बेचारे लगे बगलें झांकने। उनको उखडता हुआ देखकर खजनजीने अपनी मधुवर्षिणी वाणी-द्वारा जनताके समक्ष लकडबग्घाजीकी महत्तापर प्रकाश डाला तथा शान्ति-पूर्वक कविता पाठ सुननेके लिए सत्याग्रह किया। इस समय उनका व्याख्यान श्रोताओंकी बदहज़मीको दूर करनेके लिए सोडावाटरका काम कर गया। अब उनको, उनकी रचनाओंमे कच्चे आमका स्वाद मिल रहा था। खजनजी-की दाद पाकर लकडबग्घाजी खूब जमे। सारा पण्डाल वाह-वाहकी ध्वनिसे गूंज उठा। किसीने रजतपदक, किसीने स्वर्णपदक देनेकी घोषणा की। यहाँ-तक कि एक उत्साही साहित्यप्रेमीने श्वेतपत्र-पदक प्रदान करनेकी प्रतिज्ञा कर डाली। क्षण-भरके लिए सारा पण्डाल ढपोरशंख बन गया। 'सहस्र ददामि लक्ष ददामि'की गूँज तो मामूली बात थी। खजनजी उनकी सफ-लतापर फूले नहीं समाते थे। उनका रोम-रोम जनताकी गुण-ग्राहकताकी-भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहा था। उन्होंने गर्वसे मांगा

'मजीराजी, एक कुल्हड़ा चाय, लकडबग्घाजी जम गये।'

इसके बाद खजनजीकी बारी आयी। वे एक होकर अनेक श्रोताओंके नेत्रमें और अनेक श्रोतागण एक होकर उनकी आँखमें थे, जैसे फिल्म फोकस और चलचित्र। फ़रमाइशोंकी बौछारें होने लगीं। उन्होने गीत पढना प्रारम्भ किया। अटलाण्टिक ओशन प्रशान्त महासागरमें परिणत हो गया। जनता मुग्ध हो गयी, किन्तु उसकी काव्य-पिपासा शैशवकी बाढकी भांति बढ रही थी। अधिक कविता पाठ करनेसे खजनजी पूर्णतया थक गये थे। उनके गलेमें बर्स्ट हो गया था। वह चलता न था। अतएव जैसे ही वह मंचको छोडकर जानेवाले थे, वैसे ही बगलमे बैठे हुए दो मुस्टण्डोंने उनको बिठालते हुए कहा—'आपने मांगे थे एक सौ एक रुपये उन्हें हमने बडे

परिश्रमके साथ दोन वक्तोंके मासूम बच्चोंका पेट काटकर भेजे है और अब उनको पेट-भर कविता सुनाकर ही आपको जाने देंगे।'

यह सुनकर उनके चेहरेका रंग फक हो गया, मुँहपर हवाइयाँ उड़ने लगी, बेचारे कर क्या सकते थे, पेशगी ले ही चुके थे। नाहीकी कोई गुंजाइश न थी। बाँसो उछलता हुआ दिल गरियार बैलकी भाँति बैठ गया था।

इलेक्ट्रिक बल्ब अपनी रजत रश्मियोंके द्वारा उनके मुखकी मलिनता-को ढक रहे थे।

उन्होने फिर कविता सुनाना शुरू किया, किन्तु इस बार उनके स्वरमे वह सरसता न थी, जिसको सुनकर जनता भेड बन गयी थी। समीरा भुर्ता हो गया था। खजनजीको, इस समय अपनी कविताकी एक-एक पंक्ति सहाराकी मरुभूमि प्रतीत हो रही थी और वे विवश थे किरायेके ऊँटकी भाँति।

श्रोताओमे खिचडी पकने लगी। सम्मेलन उखडने लगा। कार्य-कर्ताओकी प्रार्थनाका मूल्य नष्ट हो चुका था। उकताया हुआ सम्पूर्ण श्रोता-समाज भर्रं मारकर उठ बैठा और धन्यवादकी लादी लादे बिना ही, 'वियोगमे संयोगका पुट देनके लिए' चल पडा। हाँ, कुछ मनचले युवकोंने अवश्य सभापतिजीकी टिमटिमाती हुई रचनाएँ सुनी और दाद दी। सम्मे-लन करीब दो बजे रातका समाप्त हुआ।

पण्डाल हडताली स्कूलकी भाँति सूना हो गया था। परन्तु जहाँ तहाँ वे कवि, झोला लिये हुए टहलते नजर आते थे जिनको मार्ग व्यय मनी-ऑर्डर द्वारा नही भेजा गया था।

स्टेशनमें भीड अधिक थी। टिकिटका लाना नास्तिकका आस्तिक बनाना था। फिर भी खजनजी हिम्मत करके आगे बढे और कठिन तपस्याके बाद खिडकी तक पहुँचे ही थे कि एक यात्रीने उनका बडे जोर-का धक्का दिया, जिसके कारण बेचारे जहाँसे चले थे वहीपर फिर पहुँच

गये। ( वह उनकी महत्तासे अनभिज्ञ था। ) टिकिट तो मिला नही, मगर भीतरी चोट अधिक मिली। कर्त्तव्यके नाते उन्होने उस समय उसका कुछ खयाल न किया और पुन साहस समेटकर भीडके अन्दर घुसे। इस बार ईश्वरने उनकी सुन ली।

ट्रेन मुसाफिरोसे खचाखच भरी थी। कहीपर तिल रखनेको जगह न थी। हरएक डिब्बेमें फौजियोसे मोर्चा लेना पड रहा था। अन्तमे उन्होने लकडबग्घाजीको सर्वेण्ट कम्पार्टमेण्टमे ही बैठाकर सन्तोषकी साँस ली। गार्डने सीटी दी। गाडी चल दी। खजनजीने नमस्ते करते हुए कहा—'चिमिरखीजीसे 'जयहिन्द' कहिएगा और कहिएगा कि मुझसे जो कुछ कहा था वह मैने पूरा कर दिया।'

उधर ट्रेन बढ रही थी और इधर खजनजीकी पीडा।

खजनजी स्टेशनसे लौटकर डेरेमे आये और चारपाईके ऊपर ढेर हो गये। अब उनमे उठने तककी शक्ति न थी। रह-रहकर चोटकी पीडा सालीकी भाँति चुटकी काट रही थी। उन्होने पुकारा

'मजीराजी, सिगरेट पिलाइए।'

आधी रात बीत जानेके बाद नीद हलकी आती है। दिन-भरकी चिंताएँ, मानव जिनमे अधिक लिप्त रहता है, एक-एक करके उसके सामने स्वप्नके रूपमे परिणत होती जाती है और वह उन्हीमे वास्तविक सुख-दुखका अनुभव करने लगता है।

खजनजी यूनिवर्सिटीमे पढ रहे है। मुकारिमनगरमे रहते है। हज़रत-गज अमीनाबादमे उनको आई० टी० कॉलेजकी छात्रा मिल जाती है। जब वे पूछते है कि आप कविता भी करती है तब 'आपसे मतलब', कह-कर वह चली जाती है। एक दिन जब उन्होने वैसे ही पूछा तब उसने ज्वाब दिया 'हाँ करती तो हूँ। देखते नही, इस मासकी 'माधुरी'में मेरी एक कविता प्रकाशित हुई है।'

सुनते ही खजनजीको द्वेष हुआ। क्यो हुआ ? राम जाने।

छह वर्ष बीत गये। खजनजी अब विश्वविद्यालयमें हिन्दी लेक्चरर हैं। अच्छी कविता करने लगे हैं। दरवाजेपर नाक रगड़नेवालोंकी कमी नही रहती। कारण, वे दिग्गज कवियोंमें हैं। अब उन्हें उस छात्राका ध्यान न रहा। समयकी बलिहारी है उनके पास तारके जरिए मनीआर्डर पहुँचा और थोड़े समयके पश्चात् लकड़बग्घाजीका पत्र। 'मैं भी सम्मेलन चल रहा हूँ। जाते समय हमारे घर होते जाइएगा, साथ ही चलेंगे।'

लकड़बग्घाजीका मकान रास्तेमें पड़ता था। खजनजी वहाँपर उतर पड़े। जब चलने लगे, तब उन्होंने कहा—'श्रीमतीजी आपको पहचानती हैं, बुला रही हैं, जाइए मिल आइए।'

खजनजी भीतर गये। सोचते थे, श्रीमतीजी मुझको जानती हैं, कबसे? कवि-सम्मेलनोंमें तो कभी साथ गयी नही? आँगनमें जाकर 'जयहिन्द' किया और नमस्ते सुनी। खजनजी चुप।

'मुझे पहचाना?'

'नही।'

'क्या आप कविता भी करती हैं? आपसे मतलब?'

'देखते नही, इस मासकी 'माधुरी' में मेरी एक कविता प्रकाशित हुई है।'

भावोंकी टकराहटमें स्मरण हो आया। करवट बदला। पसलीका दर्द बढ़ा।

'मजीराजी, सिगरेट पिलाइए।'

स्वप्न चल रहा है। चिमिरखीजी कह रही हैं, मैंने आपको आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये, पति 'एम० ए० बी० एफ'* मिले। फिर भी भारतीय आदर्शके नाते वे मेरे सब कुछ हैं। ईश्वरने धन दिया है, जमीन दी है। मगर हम अवलाओंका पुरुष-

* एम० ए० बी० एफ०—मैट्रिक अपीयर्ड बट फेल्ड।

जैसा अधिकार क्यो न दिया, जिससे हम कवि-सम्मेलनोमे हूटिंग करने-वालोको विना वारण्ट जेलमे ठूँस देती। मेरे चिरपरिचित, आपको याद है? एक वार आपने हजरतगजके चौराहेपर मुझको गिरनेसे बचाया था। आज वैसे ही श्री पतिजीको लाज आपको बचानी है। बेचारे सम्मेलनोमे हूटिंगसे उखड जाते हैं। मेरी यही भिक्षा है। आपके आगे ऐनक उतारती हूँ।' इतना कहकर वे आँखोमें 'प्रसादके आँसू' लिये हुए रसोईघरमे चली गयी और खजनजी लोचनोमें 'झरना' लिये हुए वाहर चले आये।

'मजीराजी, सिगरेट पिलाइए। चिमिरखीने कहा था।'

खजनजी चारपाईपर करवटें वदल रहे हैं। पास ही मजीराजी वैठे हैं। जब माँगते हैं, सिगरेट पिला देते है, कुछ देर खजनजी चुप रहे। वादमें वाले—'इस वार जो कविताका सकलन प्रेसमें जा रहा है, उनमें-से एक प्रति मैं अवश्य आपको भेंट करूँगा। भइया, मुझको घर तक और पहुँचा देना।'

पुस्तकका नाम सुनकर, मजीराजीकी लार टप-टप टपकने लगी।

दूसरे दिन समाचार-पत्रोमें लोगोने पढा

वेलोगारद् विराट् सम्मेलनमें गला वर्स्ट हो जानेसे, असफल हुए, प्रथम श्रेणीके महाकवि खजन।

•

## ग्रीष्म-वर्णन

मगलाचरण—अष्टयामके कीर्तनोपर छायी हुई, ब्याह-शादी-जनेऊ आदि यज्ञोमे समायी हुई, 'श्रीगणेशाय नम ' की जगह 'श्री अमुक देव्यै नम ' के सम्मानके लिए उकतायी हुई, मीरा जिनकी धूल नही छू पाती और विद्यापति मीलो पीछे है, जिनका नाम लेने मात्रसे दीनसे दीन जनमानस तर [ हो ] जाता है, जिनके चित्रोके दर्शनसे शयनालयमे सुबह और भोजनालयमे शाम होती है, टूथ-पेस्टसे लेकर जूते तक सारे वैभवोग वैभव जिनके कृपा-कटाक्षोपर ही कायम है, जिस ऋतुमे वसन्त उजड जाता है, कामदेव उखड जाता है, और 'स्वकीया', 'परकीया', और 'गणिका' बिखर जाती है, उस ग्रीष्मके प्रतापका भी अतिक्रमण कर जो दमी सूफियोके माशूक-सी सर्वत्र छहरा रही है, 'तारिका' नाम्नी उन मन-नेत्री अभिनेत्रीका मै अभिनन्दन करता हूँ।

अनावश्यक भाषण—न ही मै युरप आदि ठण्डे देशोकी सुकुमारी 'मे' का जिक्र कर रहा हूँ न ही शिमला, दार्जिलिंग और उटीके 'समर' का। न ही चैताकी स्नान मेरा सहारा है, न ह। मै 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' की सीमा लांघना चाहता हूँ। दिशाओके ताप, और हवाकी भाप, के उस स्मर-वर्द्धक सयोगका सयोग भी मेरा सयोग नही जिसको लक्ष्य कर, एक ओर समुद्रके पडोसी कलकत्तेमे रवीन्द्रनाथ बगलाका आवाहन करते हुए गाते है 'एशो हे वइशाख !' और दूसरी ओर विलायतके बाइरनका मत है कि—

What gods call love, and men adultery,

Is more common when the weather's sultery

मैं यह defensive रोना राग भी गाने नही जा रहा हूँ कि यदि ग्रीष्मकी कुरूपता न हो तो वसन्तकी याद कौन करे, मैत्री-जैसी चरम-मधुर वस्तुकी उपमा लोग यो क्यो दें कि 'मैत्रीकी शीतल छाया,'। और यह भी मेरा प्लैन नही कि एप्स्टाइन और पिकैसो गोत्रीय आधुनिक कलाकारोकी करामातोकी तरह, प्राणहर गरमी और प्राणधर सूर्य-रश्मि गरम मुल्कोमें सभ्यताका प्रथम विकास और विभिन्न देशोके सूर्य-वशोके ज्वलन्त इतिहास, may day और बुद्ध-जयन्ती, दीपक राग और फुटबाल सीजन, पर शब्दो-का एक एबस्ट्रैक्ट और ग्रोटेस्क अनगढ लोदा खडा कर दूँ और जब दूसरे दूसने लगे तो एक फतवा दे डालूँ कि 'Let there be Poetry' (तुलनीय Epstein, Let there be Sculpture) और in any case, मैं आपको भाषणका वह विशुद्ध रूप तो दिखलाने ही नही जा रहा हूँ जिसमे दो घण्टो तक सिर्फ यही कहा जाये कि मैं अब आपका और वक्त नही लूँगा, लीजिए, यह चुप हुआ, यह हुआ, यह हुआ, और हुआ! हुआ! हुआ! ग्रीष्म-वर्णन—जेठके मध्याह्नका सूर्य तप रहा है। अमराइयोमे आम, बगीचोमे लीचियाँ, वनोमें जामुन, घरोमें लोग-बाग—जो जहाँ है वही तन्दूरकी रोटीकी तरह पक रहा है। सडकें सुनसान हैं, बगीचे बियाबान है, बस्तीको आक्रान्त कर सरदार ग्रीष्मने मार्शल-ला लगा रखा है। तलवारकी धारकी तरह सडकें लम्बी, उजली और चलनेके लिए कठिन हैं। धूलसे तपे पेड-पौधे अधवैसकी खिचडी दाढी-मूँछ-से लगते हैं। लँगोटीकी तरह नदी क्षीण अपर्याप्त है, अस्त-व्यस्त सिरके केशोमें पसीनेकी गरम धारा-सी सूखे झरबेरीके बीच उचाट मनसे सँभर रही है। कारखानेकी चिमनीसे निकलकर तप्त धूल-धुआँ सफेद खुली पगडी-सा आसमानमे उड रहा है। जिसकी पूँछमे बच्चोने छोटा डण्डा बाँध दिया हो उस कुत्तेकी तरह कभी हवा सडककी धूलपर चक्कर काटती है, भेडेकी तरह कभी पेडोसे रह-रह कर टक्कर लेती है, होली पियक्कडोकी तरह कभी घरो और बरामदोपर

कूड़ा और मिट्टी डालती है—लगता है, बारह बज गये और ग्रीष्मका होशहवास दुरुस्त न रहा।

"पानी वाली नदियाँ तो अलग,
उनकी नक़लमें वेपानी वाली पगडण्डियाँ भी जिला गयी हैं।
जो वेमोल छितरायी रहती थी
वे छायाएँ भी छिप-सिमट गयी हैं।
पत्ते झड़नेसे पेड़ मर से गये हैं,
विडोइआमें धूलके खम्भे उनके भूत जैसे इधर-उधर हाहाकार
करते दौड़ते हैं।"

—उफ, क्या कैपिटलिस्ट शिद्दतकी गरमी है इस सरकारी शहरमें !

सूर्य ढलने भी लगा पर बढ़ती उम्रमें वासनाकी तरह आग कम न हुआ। दिशाएँ सोशलिज्मके मांससे रहित दफ्तर शाही कण्ट्रोलके कंकाल सी धूसर श्वेत चमक रही हैं, निकलना तो दूर, बाहर आँख नहीं दी जाती। इण्डाइरेक्ट टैक्स-जैसी प्यासी हवा हू हू करती प्रकृतिके वीरान खण्डहरोंमें चक्कर काट रही है। दिशाएँ ऊपरसे जितनी चमक रही हैं, अन्दरसे उतनी ही सन्तप्त हैं, मानो वे साधारण औकातके वह इण्डिपेण्डेण्ट एम० एल० ए० हों जो किसी तरह खर्चीले चुनावके पार लगकर अब प्रेस रिपोर्टरोंके सामने दिशा ( विशेष ) विहीन हँस रहे हैं।

'अक्करम मरे न छुनहर फूटे,' के एजेण्टकी तरह गरमीका दिन टारे नहीं टरता, भाषणकी तरह खतम ही नहीं होता, चन्दा माँगनेवालेकी तरह हटता ही नहीं, अपनी बहादुरी बयान करनेवालेकी तरह पिण्ड ही नहीं छोड़ता! हनुमानकी पूँछकी तरह दिशाओंका नाक बन्द करता जायगा, विरह-निशा-सा काटे न कटेगा, आलोचना-सा काट पायेगा।

महीनेकी पहली तारीखका दूधवाले, अखबारवाले, [illegible], [illegible] दूकानवाले, बिजलीवाले, मकानवाले, वह वालेकी तरह गरमीमें [illegible]

जाती है। बिलके कागजों-जैसे कूडा और सूखे पत्तोको घरोमे छोडती दिनकी गरमी उसी तरह मिटा जाती है जैसे बिलवाले तलबके पैसोकी गरमी-को। मगर, धूल, कूडा और सूखे पत्तोमे भरी होकर भी गरमीकी रगीन शाम उतनी ही प्रिय लगती है जितनी तलबके बाकी पैसोसे खरीदी गयी नयी साडीमें नये बिल लिये श्रीमतीजी। मृगकी कस्तूरीकी तरह अपने तलबकी बात ही सुनी जाती है, कुछ अपने हाथ नही लगता।

आँधीके भीषण उत्थान और पन्द्रह-बीस मिनिटोके अन्दर ही सर्वथा शमनपर मेरे मित्रकी 'गरम नरम' चिट्ठीका किस्सा याद आता है। मेरे मित्रके मकानका एक किरायेदार न मकान छोडता था न नियमसे किराया देता था। मामला आखिरी तौरसे तै करनेके लिए उन्होने उसे एक 'गरम-नरम' चिट्ठी लिखी। 'गरम' इसलिए कि वह ऐसा न समझ ले कि वे कुछ कर ही नही सकते। और 'नरम' इसलिए कि कही बिगडकर वह किराया देना एकदम ही बन्द न कर दे। चिट्ठी यो थी—

ओरे ओ श्शाला!

श्शाला, तुम्हारा पासमें चार महीनाका रुपिआ बाकी हाय। हाम फाइनलमे बोलता हाय, श्शाला, तुम पूरा रुपिआ चार दिनका अन्दरमें आके जामा कोरो। जोदी तुम श्शाला अभी तुरत रुपिआ नाहीं देगा—तो हाम, हाम, हाम, क्या कोरेगा, भूखा मोरेगा, कूछ तो शोचिए!

—श्रीचरणेषु।

बिजली-फैन औ बर्फका पानी, खसकी टट्टी और एयरकण्डिशनिंग, हिल स्टेशन और समुद्र-तटके जिक्र मुझे नही करने। निर्गुणकी लगनकी तरह ग्रीष्मका लापकर ग्रीष्मका वर्णन असगत है। यह नही कि मैं माया-वादी, छायावादी या आयावादी * हूँ और मुझे man-made Pleasure से वितृष्णा है। प्रिय बोलनेवाली स्त्रीके कण्ठ-स्वर-सी मधुर कोयलकी कूक

---

* प्रकृतिरूपा मायाके हाथ अपनेको निश्चेष्ट छोडनेवाला।

नहीं होती, और आदमीकी सिद्धियाँ प्रकृतिके सत्रमे नायाब फूल हैं।

"जिय बिनु देह, सभा बिनु मुरवा।
तैसेहि मित्र, प्रकृति बिनु पुरुषा।"

मगर प्रकृतिको तलाक देकर made-to-order आनन्दमे unadulterated martialism भले हो, sense of adventure नहीं होता, और यह न हो तो अगतिशीलता आती है, प्रगतिशीलता नहीं—समाजमे साहित्यमें।

ग्रीष्मके लुत्फोंका वर्णन करनेमे सबसे बडी दिक्कत यह है कि ऐसी चीजें बहुत कम हैं जो ग्रीष्मकी निज अपनी हों। कोयल वसन्तमे आती है, जूही जाडेमें जाती है। ढूँढनेपर तीन चीजें मिली पर मुश्किल दूर न हुई।

यदि मैं releaf के, उत्तप्त दिनके बाद शाम, बन्द हवामे कसमसाहट के बाद बयार, पसीना-स्नानके बाद नदी-स्नान, तने घरसे तर पार्क सूखे कण्ठमे तरबूजेकी तरल मिठासके विशेष आनन्दके लिए उपमा, अँगरेजोंसे आजादी, बीबी बच्चोंसे आजादी, छन्द और लयसे आजादी, 'आगे नाथ न पीछे पगहा' की आजादी आदिसे लेना चाहूँ तो अति पास होनेके कारण वह सबको समान रुचिकर न भी होगी! अति सर्वत्र वर्जयेत।

खुली हुई चाँदनीका जिक्र करता हुआ अगर मैं उसे थोडा रसीला कहूँ, तो अपनी 'पतनी कवि जी को याद करके मेरे कुछ रसिक पाठक गण विवर्ण हो उठें कि जैसे आइसक्रीम खाते वक्त दाँतों तले कहीं से कोई कीडा पड गया हो।'

और कहीं यदि मैं ग्रीष्मको परम [illegible] और चरम आनन्दकार यह कविता कहूँ, कि

'लौट चुके थे धोबी धोबिन ल्यान अभी तक पर [illegible] था,
कर पूरा निज काम खुशी से शान्ति सहित घर [illegible] था
भेद शान्ति सन्ध्या की सहसा थिरक थिरक [illegible] ओर,
हैको-हैको छेड उठा वह गीत उसी [illegible]

गोरज का अन्तिम रजकण था अभी तलक नभ में छाया
देख चाँदनी का सन्नाटा हृदय गान से भर आया
ताक अवज्ञा से जग पर मस्ती से गदहा रेंक उठा
पर अभाग्यवश धोबी गुस्से से दो मुंगडे सेंक उठा
फिर गाऊँगा पेट भरा है
कर डाला मैदान सफाया
कितना है यह चन्दा सुन्दर
जैसे मेरा ही मुँह पाया
हेंको-हेंको-हेंको।
रेंको, रेंको, रेंको'*
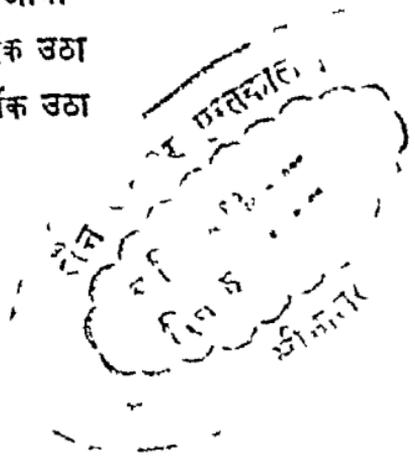
तो कुछ पुरातनवादी समालोचक कविता देवीकी आसन्न मृत्युकी सम्भावनापर एक बार और उसी तरह व्याकुल हो उठे जिस तरह महीनोंसे बीमार बूढ़ी माँके एक और (सन्निपात) delirium पर भक्त बेटा होता है।

कामदेवकी तीरन्दाजीसे बची हुई यह ऋतु ब्याह-शादीकी परम ऋतु है शायद इसलिए कि हमारा सनातन आदर्श है कि विवाह सिर्फ़ वंशवृद्धिके लिए होता है—बिना सेक्सके।

डॉक्टर कृष्ण शुक्ल अपना बनाया गुलाबजल बोतलोंसे जब सब लोगोंपर ढार चुके तो हमारी मजलिस स्थानीय कलाकारोंके संगीतकी ओर मुख़ातिब हुई। 'गुलाबजल' में गुलाबकी बू का तो मुझे पता न चला पर बोतलें रेफ्रिजरेटरसे निकाली गयी थीं सो गरदनसे जाँघों तक उन सब जगहोंपर तरावट मालूम हुई जहाँ-जहाँ कपड़े भीगकर देहसे चिपक गये, और हमलोगोंने 'यंग इण्डियन टेकनीशियन' का हौसला बढ़ानेके लिए उस स्थानीय गुलाबजलकी यथाशक्ति दाद दी।

---

* गुन किशोर कवि मदन, माघ, १९४४।

मजलिसमें तीन खास व्यक्ति थे—एल० सी० (लिटरेट कॉन्स्टेबिल) से बढ़ते-बढ़ते साहब बने एस० पी० (सुपरिण्टेण्डेण्ट) साहब, स्थानीय प्रगतिशील पार्टीके नेताजी, और उस शामके मुख्य गायक कारखानेके एक मशीन-ऑपरेटर। 'सोशलिस्ट पैटर्न ऑव सोसाइटी' में सरकारी अफसरों और प्रगतिशील नेताओंको 'कल्चर' में 'इण्टरेस्ट' लेना अपेक्षित है, इसलिए सरकार और अपनी पार्टीकी हिदायतोंके मुताबिक एस० पी० साहब और नेताजी भी हमारी मजलिसके सदस्य थे।

गायकजी मजलिसके बीचमें एक बड़े तूँबेवाले बाजेको अपने तारतार आलिंगनसे आक्रान्त कर तूँबेपर सवारी कसे हुए बैठे थे। मैंने बाजेका नाम पूछा तो एक मित्रने क्या बताया वह मैं बातचीत और हँसी मजाकके हल्लेमें साफ न सुन सका—शायद उन्होंने 'तानघोड़ा' कहा। हम सब लोग बागेश्री, मालकोस आदि प्रचलित रागोंके लिए सिफारिशोंका हल्ला पेश कर रहे थे, मगर एस० पी० साहबका 'जवन कल्यान' के लिए दबाव था। साम्यवाद विरोधी नेताजी 'दरबारी कानडा' माँग रहे थे कि इतनेमें गायकजीने चारों ओर वीर-मुद्रामें दृष्टिपात करते हुए, ओठोंको आक्रमणशील भंगिमामें मरोड़कर कहा—'देश!'

'देश' नाम सुनते ही मजलिसकी सारी हँसी परदेश भाग गयी। चारों ओर निस्तब्ध सन्नाटा छा गया, मानो बड़ा साहब तशरीफ लाये हों या कोई मर गया हो। गायकजीने वीर-मुद्रामें चारों ओर सर घुमाकर जब देख लिया कि यहाँ कोई सर नहीं उठा रहा है, तो भैंसके पैरोंकी आवाज में शुरू किया—आऽऽऽ!

आज संगीत शास्त्रियोंका नियम है कि गानेवालेकी आवाज चाहे पोडलीकी आवाज-सी ही पतली और मधुर क्यों न हो, मगर उसका दो-चार मिनिट ठीक दैत्यकी आवाजमें 'आऽऽऽ!' 'आऽऽऽ!' कर देना जरूरी है। इनका मत है कि मधुर कण्ठ, सुन्दर कवितामय शब्द, हृदयको प्रिय लगनेवाले लय और उतार-चढ़ाव, संगीतकी शानमें बट्टा लगाते हैं। राग

हो पेंडवे-सा, शब्द या तो हो ही नही या यदि हो तो बेतुके और अत्यन्त पुराने और रूढ और वे भी स्पष्ट सुने न जायें, व्याकरण सगीतपर उसी तरह सवार हो जैसे हमारे गायकजी तानघोडाके टूँवेपर थे, और ताना-रीरी like a very wild bull in a very congested china shop सगीतके आकाशमे हडकम्प मचाये हुए हो। इस आकर्षक सगीतकी लम्बाई—डेढ घण्टा! इसका ध्येय—शास्त्रीय सगीतका प्रचार! इसको सुननेके वाद ( गौर कीजिए—'के वाद' ) श्रोताको वही आनन्द प्राप्त होता है जो सौ वर्षके वैराग्यके वाद मुक्तिकी प्राप्तिसे तपस्वीको।

गायकजीने कुछ क्षण वाद गलेको घोडा और उतारकर शुरू किया—आऽऽऽ! थोडी देर वाद कुछ और नीचे—आऽऽऽ! जव देर हो गयी और उनका गलेको उत्तरोत्तर उतारकर 'आऽऽऽ!' 'आऽऽऽ!' करना न रुका, कोई और भी शब्द निकलने लगे हो ऐसा कानोने नही सुना, तो मुझे उनके स्वास्थ्यके विषयमें आशका होने लगी कि कही मेनन साहवकी तरह इनका भी ब्लड-प्रेशर जोरो न हो जाये।

काफी देर प्रतीक्षाके वाद दूसरे शब्द निकले—'रुमझुम वदरवा वरसे!' उस ऋतुमे ये शब्द भारतीय नव-मानवकी इस उत्कट आशावादिताके परिचायक थे जो ही हमारी पचवर्षीय योजनाओंकी नावको किनारे ( किस किनारे? ) लगायेगी।

उन तीन शब्दोमें वरसते हुए मेघका जो वर्णन था उसे गायकके स्वरोने साकार कर दिखाया। लगा गानेमें तीन ही स्वर इस्तेमाल हो रहे थे, सा सा, और सा ( यानी, मन्द्र, मध्य और तार सप्तकका 'सा' ), सा से सा और सा से सा तक तीव्र गतिसे जाता-आता उनका स्वर-विलास मेघोके वीच विजलीकी कौंध और गडगडाहट सा दिशाओको थर्रा रहा था—सा सा, सा सा सा सा रुम झूम! रुम झूम! रुम झूम! 'तवलोसे निरन्तर प्रतिध्वनि आ रही थी—घम! घम! घम! वारिशके तुरन्त पहलेकी उमसके Extreme annoyance का सर्मा एस० पी० साहव नेताजी

और संगीत-टीमको छोड़कर बाकी सारी मजलिसपर व्याप्त था। मुझे तो लग रहा था कि गाम्भीर्य रागके इस प्रचण्ड आग्रहकी भी उपेक्षा कर अगर निरभ्र आकाश नहीं बरस रहा है तो मैं ही गायकजीपर बरस पड़ूँ।

महारथी 'देश' के सामने ठहरनेकी किसीकी हिम्मत न रही, हम-सबोंके गाम्भीर्य और स्थिरताके पार्जे-पार्जे उड़ गये। प्रचण्ड झंझावातसे चिथड़े-चिथड़े कर दिशाओंमें फेंक दिये गये मेघखण्डोंकी तरह हम अस्त-व्यस्त हो उठे। संगीत उत्तरोत्तर भीषण हो रहा था—रुमझूम! रुमझूम! रुमझूम घम! घम! घम! मानो भाँगके नशेमें दोनों ओरकी सेनाओंको अपने-अपने शिविरोंमें खदेड़कर महारथी भीमसेन और दुर्योधन खाली रथपर अपनी गदा पटक रहे हों—ठायँ! ठायँ! ठायँ! ठायँ!

गायकने लक्ष्य किया कि जनतामें utter demoralization व्याप्त हो रहा है। इसलिए वह हमारी ओर भर्त्सनासे मुँह फेरकर जगतके प्रभुओं, एस० पी० साहब और नेताजी की ओर घूम गये। स्पष्ट था कि वे दोनों उस संगीतमें बड़ा मजा ले रहे थे—समर-पटु हाकिम साहब मैदानसे भागे न थे, बल्कि और उत्साहित थे। एस० पी० साहबकी आँखें बन्द थीं और उनके बन्द ओठोंपर परमानन्द मुसकराहट खिली हुई थी। स्प्रिंगदार गुड्डेकी तरह एक गतिसे सिर हिलाते जा रहे थे। दायें हाथकी उँगलियोंसे वह निरन्तर ठोढ़ीके पास अपना ताल भी सम्हाले जा रहे थे, मानो अहिंसावादके कारण 'झूम! झूम!' के प्रहारोंका [illegible] सिर्फ घावकी जगह मरहम लगाते चल रहे हों। नेताजीकी ओर मुड़कर और कलाकारके उस मेघ-श्याम मुख-छविपर जमी हुई [illegible] चढ़ावसे लग रहा था मानो कलाकी सृष्टिमें कलाकार [illegible] रही हो। नेताजीके आठ दाँत खुले हुए थे। उनके दाहिने हाथकी उँगलियोंमें नृत्यकी मुद्राएँ और गति थी, और दूसरे हाथसे [illegible] गालपर उत्तरोत्तर जोरसे थपकियाँ लगाते जा रहे थे [illegible] बार-बार [illegible] बैठ जाते थे।

जब रातका तीसरा पहर आ गया, रात कुछ शीतल हो गयी, मनको कल पड़ा और आँखोमें नींद आने लगी। खुले काले आकाशमें गंगा यों चमचमाने लगी मानो डेढ़ हज़ार रुपये पानेवाले साहबकी घरवाली कमरसे घुटनों तककी दुग्ध सफेद लँगोटी हो, और पपीहा इस तरह ज़ार-बेज़ार 'पीउ कहाँ, पीउ कहाँ' पुकारने लगा मानो हमारी श्रीमतीजीओंने रिश्वत देकर उसे भेजा हो, तो मजलिस टूटी और हम अपने-अपने घर चले गये।

बोनसके पैसे-सी अति-मीठी ग्रीष्म-ऋतुकी उषा बोनसके पैसे-सी अति-कम भी होती है—लगता है, भूख जागकर रह गयी, कुछ मिला नहीं। नन्ही रातों-सी नन्ही प्रेयसी कलेजेसे छुड़ाये नहीं छोड़ी जाती—क्योंकि दोनोंमें-से किसीको खुर्राटेसे फुरसत नहीं।

हज़ार मक्खियोंसे जुते रथपर, दस हज़ार कौओंकी खुशामदोंके साथ, भगवान् किरण-नेता बिना कामके आदमीकी तरह घण्टे-भर पहले ही उदय हो गये और डिप्टीकी तरह पहले दस साल फिसफिसानेके बजाय आइ० ए० एस० की तरह उदय होते ही तपने लगे।

आज़ादीके बाद शास्त्रीय संगीतका प्रचार बढ़ा है, ऐसा सुनकर, शहनाईपर भैरवीके सपने देखता जब रविवारको कुछ रु से आँखें खोलीं तो फुल और रेडियोमें दिगन्त-व्यापी भगवद्-वन्दना हो रही थी।

"हाय, तेरे दुनिया की हालत
क्या हो गयी भगवान
कितना बदल गया इनसान!"

अगर आपका हाज़मा खराब रहता हो तो सुबह बिस्तरसे उठते-ही-उठते ईनोज फ्रूट साल्टका सेवन कीजिए। ज़रूर कीजिए।

"हाय, तेरे दुनिया की हालत
क्या हो गयी भगवान

ईनो ! ईनो ! ईनो !
जल्दी जल्दी कीनो !
हाय, तेरे दुनियाकी हालत "

सुबह, पर ग्रीष्मकी। सुमनवती, फलवती ( पर divorced ) मेरी इस छोटी नगरीके एक शायरने अपने प्रियको 'शोला रू' ( यानी, आगके शोलेकी-सी मुख-कान्तिवाला ) कहा है, माशूकको आफताब ( सूरज ) तो और लोग भी कह चुके हैं। अपनी-अपनी पसन्द है। वैसे, मेरे एक पडोसीका घरवासी माशूक जब चुने हुए विशेषणो द्वारा आकाशको दोलायमान करता हुआ शोला-रू होता है, तो मेरे पडोसी साहब तेजीसे भागते हुए मेरे घरमे घुस आते हैं और कई-कई दिन लगातार मुझे अपने सहवाससे अनुगृहीत करते हैं। अँगरेजी जमानेमे एक गवर्नरके एक अँगरेज ऐडीकांग साहब थे, जो मौके-बेमौके अपने बँगलेसे रेकार्ड स्पीडसे भागते देखे जाते थे—उनके 'शोला-रू' 'आफताब' के 'करो' से उत्तापित रग-बिरगकी बेशकीमत जनानी जूतियाँ बँगलेके फाटक तक लपक लपककर उनका साथ देती।

गद्यसे अभिन्न मेरी 'प्रयोगवादी कविता' की तरह, अभी दिन चढा नही कि प्रभात और दोपहरमे फर्क न रहा। अन्दरसे विगलित, ऊपरसे विकसित, आजकलके हिन्दी साहित्यके कितने ही नायकोकी तरह, लोग सबेरे सुबह ही पसीना बहाते थक-थककर बैठने लगे।

कामकाजू होकर भी सूर्य असह्य हो उठा, यान्त्रिक प्रशासनकी तरह, कि जिसकी अन्धेर नगरीमें,

"मुँह बाँधे एकत्र जरत अहि मयूर मृग बाघ।
देश नदी तट सो दिया दीरघ दाघ निदाघ॥'
घट-घट-घट घट आग जले!
( राग—'दीपक', यानी उद्दीपक।

आधार-सहगलका
'दिया जलाओ, दिया जलाओ' )

आग जले। आग जले।
धह-धह-धह-धह आग जले।
अनल-किरीट, ज्वलन-मन हे।
रक्त-कुसुम तन वसन वि-चचल
अरुण दोल उन्मत्त हृदय नल
लोहित लोल त्रिलोचन हे।
प्रखर-किरण-शर, निर्मम-शासन,
आया ग्रीष्म सुगन्ध गजासन,
मद-गज चण्ड प्रभंजन हे।
अभ्र दहले। व्योम वले।
धह-धह-धह धह आग जले।
( शास्त्रोक्त राग दीपक
का स्वरूप और समय )"
Reference याद नहीं।

बन्द खिडकीके शीशेसे देख रहा हूं, गरम पानीमें पीले केसर और गुलाबी बदनवाला कमल मुसकरा रहा है। गरम सडकोंपर पीले केश और गुलाबी बदनवाली दो-एक अँगरेज़ महिलाएँ घूम रही है, कोई और नज़र नहीं आता। मसल मशहूर है—

Mad dogs and Englishmen
Go out in the midday sun.

बारह बजनेको आये।

मंगल कामना—शाम जिस ऋतुकी सब शामोंसे नायाब है, चाँदनी जिस ऋतुकी सब चाँदनियोंसे सुहावनी है, नसीम जिस ऋतुकी अंग-अंग-में सुगन्धित है, और प्रियतमाकी लुनाई जिस ऋतुमें खूब खुलकर आती है,

उस ग्रीष्मकी छोटी-छोटी रातें आपको और भी छोटी लगें। आपका कल्याण हो।

आपका प्रान्त गुलमोहर, शिरीष और अमलतास-सा समृद्ध हो। आपके पडोसी प्रान्तपर पतझड आ जाये। आपका हृदय शीतल हो। आपके पडोसी प्रान्तमें आग लगे। आपका कल्याण हो। दूसरों का न हो। आमीन।

•

## प्रोफेसर राही : सौन्दर्य-बोधके मूडमे

आप कहेंगे कि यह सौन्दर्य-बोध कौन-सी बला है ? और इसका हास्य-रससे क्या सम्बन्ध है लेकिन यकीन मानिए सौन्दर्य-बोध और हास्यरसकी मिलावट इस युगकी देन है और इस मिलावटके युगमें इसका एक विशेष रस है। सौन्दय-बोधका मजाक एक नया अन्दाज है। जिसकी रग-रगी और दिल हिला देनेवाली दास्तानमें वह-वह लच्छे हैं कि बस तबीयत ही अश-अश करके रह जाती है और इन सबके नायक है हमारे दोस्त जिनसे आप सब परिचित हैं और जिनका पूरा नाम तो मुझे मालूम नही बस इतना ही जानता हूँ—प्रोफ़ेसर राही—जी हाँ—वही प्रोफ़ेसर राही।

वैसे तो प्रोफेसर राही मेरे दोस्त होते हैं किन्तु दोस्तके साथ-साथ वह एक सौन्दर्यशास्त्रके वक्ता, राजनीतिके कर्ता और साहित्यशास्त्रके घर्ता भी है। जब उनके ऊपर सौन्दर्यशास्त्रका भूत सवार होता है तो वह डेढ रुपये-की मिट्टीवाली महात्मा बुद्धकी मूर्तिके लिए दस रुपयेकी चौकी बनवाते है, मुफ्त अपने किसी चित्रकार मित्रकी स्टूडियोसे उडायी हुई तसवीरमें मोटा, चौडा और पुराना चौखटा लगवाते है, विशालकाय पठाररूपी आँगनमें गुलाबका पेड लगवाते है और बढियासे बढिया गेबरडीन और सर्जके सूटमें ठर्रेवाला बटन होल लगवाते है ताकि कोई गुलावकी कली उसमें फाँसी न जाये वरन् उस ठर्रेमे बाँधी जाये ताकि कभी भी किसी भी हालतमें वह दान-पाहा तुडाकर भागने न पावे और अगर भागनेकी कोशिश करे भी तो महज छटपटाकर रह जाये। लेकिन मुसीबत यह है कि प्रोफेसर राही गुलाबकी कली नही फूल लगाते है—फूल भी इतना बडा कि वह छोटी-

मोटी गोभीके बराबर होता है। गलेके नीचे बायी तरफ दिलके ऊपर यह दिनमें कई बार उगाया जाता है। गुलाब भी उनके घरकी पैदावार है, इसलिए उसमे किफायत नही करते। कही भी जाते समय वह डाल समेत उसे उखाडते है और झाड झखाडके साथ अपने बटन होलमे खोसकर इठलाते हुए रिक्शेपर सवार होकर कमसे कम दिनमे एक बार घरसे जरूर निकलते है। जूडेके फूलके समान उनका फूल भी ऐसा चमकता है कि रास्तेके लोगोकी निगाह उनपर बरबस पड ही जाती है और इस प्रकार उनका सौन्दर्य-बोध हर दिशामे सर्वसम्मतिके साथ स्वीकृतका अनुमोदन पाता हुआ 'गद्-गद्' हो जाता है।

आज सुबह सुबह जब मै उनके यहाँ पहुँचा तो वह एक [illegible] उलझे हुए परेशान बैठे थे। प्रोफेसर साहीको इस तरह परेशान होते मैने दो बार देखा था। एक तो जब उनके कुँआरेपनपर उनके मित्रोकी बीवियाँ उनकी खिल्ली ले रही थी और वह अपने साथी विनोद—जो केवल ऐसे ही मौकोपर उनको धोखा देकर भाग जाता है—के अरदबमे घिरे मुर्गेकी भाँति पिटे-पिटे से बैठे हुए थे और यह महिलाएँ कह रही थी—'क्या किया आपने साही साहब!

यह फूलका घण्टाघर दिलके ऊपर लटकानेसे कुछ नही होता—इसमे थोडे ही कोई आपको दिल दे बैठेगा। और कुछ नरमाहटका काम कीजिए—मशीनमे शौक कीजिए। कुछ पत्र वत्र लिखिए शायद काम बन जाय नहीं तो नहीं [illegible]'

और साही साहब पसीनेसे तर-बतर, विविध भ्रू-भंगिमाएँ बनाते और कुछ बुदबुदाकर रह जाते, अपने कुँआरेपनपर शर्म मार। और [illegible] कडियाँ गिनने लगते। कभी-कभी तो बरामदेमे चाय पिया [illegible], पर अगर उसमे भी नही बच पाते तो पूछते—'आपका कोई उपन्यास [illegible] यह लीजिए यह टेढे-मेढे रास्ते [illegible] [illegible] [illegible] श्यामजीका क्या हाल है' इत्यादि भी [illegible] कुँआरेपनकी [illegible]

लेकिन औरतें भला कब छोडती और खासकर शादी-शुदा पुरायठ क़िस्मकी औरतें कुँआरोको ऐसे ही देखती है जैसे भूखा बगाली भातको देखता है या बिल्ली शिकारमें चूहेको देखती है। उनके लाख कहनेपर भी वह कहती जातीं—'अरे लाला क्या करोगे यह कमरा सजाके, यह बुद्ध मूर्ति, यह गुलाबकी फसल, यह रग-बिरगा कमरा, यह सुरमई परदा—यह सब बेकार है। उमर बीती जा रही है लाला—अब भी ग़नीमत है। कुछ कर गुजरो नहीं तो क्या फ़ायदा ...'

लेकिन राही साहब सब सुनते जाते और जब वह बीवियाँ चली जाती तो गालिबका दीवान उठाते और अपनी किस्मतको कोसते हुए बडे दर्द-भरे लहजेमें गाते—

यह कहाँ थी मेरी किस्मत कि बसाले यार होता,<br>
कुछ और दिन जो जीते यही इन्तजार होता<br>
तेरे तीरे नीमकश को कोई मेरे दिल से पूछे<br>
यह खलिश कहाँ से होती जो जिगर के पार होता

ग़जल गूँजती और गूँजकर रह जाती। कमरेकी ठण्डी मूर्तियाँ सुनती और ज्यादा ठण्डी हो जाती। मीनाक्षीसे लेकर अपरना तककी पेण्टिग्स उन्हें दर्द-भरी निगाहोंसे देखती और फिर खामोश हो जातीं। कोटमें लगा हुआ गुलाब थोडा झुकता लेकिन फिर सँभल जाता—यह होता क्योंकि इसके सिवा कुछ भी और नही हो पाता।

लेकिन आज जिस दुर्घटनामें वह शामिल थे, वह दूसरे प्रकारकी थी। हुआ यह था कि उनके कोटका वह बटन हॉल, जिसमें वह गुलाबकी झाड खोसकर चलते थे, टूट गया था।

उनको बेहद परेशान देखकर मैंने प्रस्ताव किया कि चलिए दर्जीके यहाँ दूसरा बटन हॉल लगवा लें।

और अन्ततोगत्वा हम दोनो दर्जीकी दुकानपर गये। प्रोफेसर राहीने रास्तेमें बटन हॉलपर अच्छी-खासी तकरीर दे डाली। मैं भी सुनता रहा

मसलन यह कि सोलहवी सदीके इंग्लैण्डमे कैसे बटन होल्स बनते थे। फिर सतरहवी सदीके अंगरेजी साहित्यमे वह बटन होल उस साहित्यमे कैसे पहुँचा। फिर अठारहवी सदीके पूर्वार्धमे पेरिसमे इस बटन होलमे क्या क्या लगाया जाता था। उत्तरार्धमे यह कैसे उनकी पोशाकके साथ विक-सित होकर कैसे-कैसे डिकेडेण्ड तत्त्वोका प्रतीक बना—गरज कि साहेब दर्द-के मारे प्रोफेसर राहीने उस दिन वह वह करतब दिखाये कि दर्जीकी दुकान तक पहुँचते-पहुँचते मेरी तबीयत झक हो गयी और फिर भी उनकी बटन होल गाथा पूरी नही हुई। ज्योकी त्यो चलती रही।

दर्जी भी समझिए कि जाना-पहचाना था। प्रोफेसर राहीकी रुचिके बारेमे भी उसने अच्छा खासा अन्दाजा कर रखा था। इसलिए पहुँचते ही उसने प्रोफेसर साहबको आदाब अर्ज किया और बोला, 'कहिए कैसे तश-रीफ ले आये? क्या बटन होल फिर टूट गया?' प्रोफेसर राहीने जरा व्यंग्यके लहजेमे कहा, 'जी हाँ सुना था मुसलमान दर्जियोमे नफासत ज्यादा होती है। अगर वह रंगीन बुलबुलो पर बोल सकते है तो रंगे रेशमसे उसकी फूल बाँधना तो आता ही होगा। लेकिन आपने तो यह सुबूत पेश किया है कि उस रंगे रेशमसे फूल क्या कोई भी नही बाँध सके।'

एक साँसमे इतना कह देनेके बाद जब प्रोफेसर राहीने सांस ली तो तो दर्जीने बात शुरू की। बोला, 'अजी साहब लगता तो फूल ही है और कुछ फूलके लिए तो महज एक इशारेका सहारा चाहिए, पर तो लगता है आप इसमे पूरा पेड़ ही लगा देते है। अगर ऐसा नही होता तो इसके टूटनेकी कोई गुंजाइश ही नही हो सकती थी।'

प्रोफेसर राही अबतक काफी गुस्सा पी चुके थे। झल्लाकर बोले, 'आप बकवास मत करिए। मैं जैसा कहूँ उस प्रकारका बटन होल बनाइए। क्या आप समझते है कि मै उसमे स्वीटपीका फूल लगाऊँगा? मुझे गुलाब पसन्द है मै गुलाब लगाता हूँ गुलाब', दर्जी [illegible]

गया, झुंझलाकर बोला, 'गुलाब भी कई किस्मके होते हैं—आप कली लगाते हैं कि फूल ?'

अबतक मैं सिर्फ सुन रहा था बोला, 'बड़े मियाँ कलियाँ तो नसीबवाले चुनते हैं। यह फूल लगाते हैं, फूल।'

'जी हाँ इसीलिए मैंने पूछा हजूर, क्योंकि यह बटन हॉल दिलके पासकी जगह होती है—गुंजायशका खयाल रखना चाहिए।' दर्जीने कहा।

जीमें आया कह दूँ मियाँ यह बड़ा फूल लगाते इसलिए हैं कि उससे इनके दिलके विस्तारका सही अन्दाज देखनेवालेको लग जाये। अभीतक तो यह वीरान ही है—शायद फूलके पैमानेसे दिलका चमन बाग़-बाग हो जाये, लेकिन अभी तो कोई सूरत नजर नहीं आती। लेकिन मैंने राहीजीकी तेवर देखकर कहा नहीं। दर्जी भी काममें लग गया। थोड़ी देर बाद बटन हॉल बनाकर उसने पेश किया। इस बार उसने रेशमकी डोरीका ठर्रा बनाया था और बट-बटकर उसे इतना तगड़ा किया था कि वह गैबरडीनकी कोटपर उगा हुआ रेशमका कोया लग रहा था। प्रोफेसर राहीने उसमें अपनी मोटी रेड ब्ल्यू पेन्सिल डालकर देखना चाहा और वह फिर टूट गया। उसका टूटना था कि प्रोफ़ेसरने कोटको दर्जीके ऊपर फेंक दिया और गुस्सेसे काँपते हुए बोले—'तुममें कुछ भी एस्थिटिक सेन्स नहीं है—ऐसे बटन हॉल बनता है! जरा-सा सहारा दिया कि चट्ट टूट गया।' और यह कहते हुए वह उलटे कदम घरकी ओर वापस आ गये।

दूसरे दिन लोगोंने देखा कि उनके गैबरडीनपर उगा हुआ रेशमी कोया अब एक चोटकी शक्लका बटन हॉल बन गया था और उसके बीच गुलाब-सा एक पूरा गाछ ठुँसा हुआ था। कुछ दिनों तक लोगोंने टोका लेकिन अब सब चुप हो गये हैं क्योंकि देखनेमें बेढंगा लगनेपर भी अब सबको वही देखनेकी आदत हो गयी है। प्रोफेसरने नये सौन्दर्य-बोधको जन्म दे दिया है। इस घटनाको भी आज तीन साल हो चुके हैं। पास पड़ोसके लोग

कहते हैं कि यह नौजवान अक्सर गुलबकावलीके नायककी तरह आधी रात गये अपनी गुलाबबाड़ीमें यह गाते हुए पाया जाता है—

"यह कहाँ थी मेरी किस्मत कि विसाले यार होता।
कुछ और दिन जो जीते यही इन्तज़ार होता॥"

# सुरखावके पर

रामबाबू ऊपरके कमरेमे ही अपना अधिकाश खाली समय बिताते है, यह तो उनके सभी परिचित जानते है किन्तु कौन-सा ऐसा आकर्षण है जो उन्हें घरके सबसे छोटे कमरेसे बाँधे रहता है, इस रहस्यका पता बहुत ही कम लोग लगा पाये है। उनके कमरेमे प्रवेश करनेकी अनुमति किसीको भी प्राप्त नहीं है--उनकी पत्नी तकको नहीं। अत उनके कमरेको लेकर तरह-तरहकी अफवाहें लोगोमे फैली हुई है। कोई कहता है कि वे कवि हो गये है, किसीका अनुमान है कि वे किसी खोजमे व्यस्त है, कोई उन्हें क्रान्तिकारी घोषित करनेपर तुला है तो किसीके विचारसे वे सिद्धि प्राप्त करनेके चक्करमे है और स्वय उनकी पत्नीका मत है कि उन्होने उस कमरेमे अपनी पूर्व प्रेमिकाओके पत्र छिपाकर रखे है।

होलीकी शामको भोजन कर चुकनेके बाद रामबाबू दबे पाँव ऊपर चले तो उनकी पत्नीने झल्लाकर कहा—

'क्यो जी, त्योहारके दिन भी दस मिनिट बैठकर बात करना मुश्किल है? जब देखो तब मुई कोठरीमे ही बन्द होकर रहते हो। ' राम जाने कौन-सा खजाना गडा है उसमे!'

'तो बातें करो न, मै कब मना कर रहा हूँ। तुम्हें जो कुछ कहना हो नीचेसे कहती रहो मै ऊपरसे जवाब देता रहूँगा।'

'हाँ, हाँ, जवाब तो खूब दोगे! एक मै ही पागल मिली हूँ न जो गला फाड फाडकर चिल्लाती रहूँगा! जाओ, जाओ तुम्हें तो एक एक पल भारी हो रहा होगा।' मौका पाकर रामबाबू 'तो फिर तुम्हारी

मर्जी !' कहते हुए ऊपर चले गये। जीनेमें उन्होंने चौकन्ने होकर एक बार चारों ओर देखा फिर ताला खोलकर फौरन कमरेको भीतरसे बन्द कर लिया। कमरा छोटा होते हुए भी सुरुचिपूर्ण ढंगसे सजा था। एक ओर बेंतकी बुनी हुई लम्बी बेंच पड़ी थी। उसके ठीक सामने शीशमकी लकड़ी-का एक सुन्दर रैक दीवारसे सटा हुआ रखा था। उसके छोटे-छोटे खानों-के ऊपर क्रमसे मुण्डन, कनछेदन, जनेऊ, तिलक, विवाह, कवि-सम्मेलन, हास्य-गोष्ठी, कथा गोष्ठी तथा नाटक लिखा हुआ था। उन खानोंमें रंग-बिरंगे निमन्त्रण-पत्र दीवारोंपर सुन्दर सुन्दर फ्रेमोंमें जड़े टँगे थे। कमरेके बीचोबीच एक मेज और उसके पास एक कुरसी रखी हुई थी। रायसाहब कुरसीपर बैठकर मेजपर रखे रजिस्टरके पन्ने उलटते हुए तीसवें पृष्ठ-पर रुक गये जिसकी हूबहू नकल अगले पृष्ठपर है—

अपने विशेष गुणोंकी दूरदर्शिता एवं सफलतापर रायसाहब विजय-गर्वसे ऐसे मुसकराये जैसे सिकन्दर कभी पारसको देखकर मुसकराया होगा। उन्होंने दीवारोंपर टँगे सूप, अनाज और पाता-दूबोंकी ओर आशाभरी पैनी दृष्टिसे देखा और उन अनुभवोंके आधारपर भावी कुण्डली जुगाड़कर, रुमालपर और खानोंके पीछे छिपाकर डर लगाकर कहानी सभी नगरा आनन्दसे चल दिये।

# निमन्त्रण-पत्र रजिस्टर १९५७



| निमन्त्रणपत्र की तिथि | द्वारा | प्राप्ति-व्यय | आकार | अवसर | समय | विशेष सुझाव |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १-५-५७ | राम खिलावन दरीवाला | कुछ नही । केवल पण्डालकी सजावट मे योग देना पडा | (मौखिक) निमन्त्रण | सगीत-सम्मेलन | रात्रि दस बजे | सूट पहनकर गया था जो इस अवसरपर बिलकुल नही जमा, अगली बार अचकन ट्राई करूँगा । बहुत तिकडम लडानेपर भी मच तक पहुँचनेकी नौबत नही आयी । |
| ५-२-५७ | कविवर मुखरेशजी | पान-सिगरेटपर साढे सात आना । अपने साथ चाय पिलायी और भोजन भी कराया। | ४'×६" छपाई सुन्दर । पत्र जडवाने योग्य है । | वसन्त पचमीके अवसरपर कवि-सम्मेलन | सायकाल आठ बजे | मुखरेशजी-द्वारा भविष्यमे भी निमन्त्रण-पत्र मिलते रहनेकी आशा है अत उन्हे चाय पिलाते रहना चाहिए, विशेषकर जाडेमे । किन्तु उनसे छुट्टीके दिन भेट करनेमे ही कुशल है अन्यथा नौकरीपर बात जानेकी आशका है क्योंकि वे जब भी आते है, छह-सात घण्टेसे कम नही बैठते। पिछलीबार उन्होने अपनी २३ कविताओका पाठ किया । उनपर रग जमानेके लिए मुझे भी कमसे कम दो-चार कविताएँ जुटानी होगी । |
| १६-३-५७ | जग्गूमलजी | चाय—तीन आना पान—दो आना | २"×४" | कहानी-सम्मेलन | सायकाल सात बजे | जग्गूमलजीकी उदारताकी मुक्त-कण्ठसे प्रशसा की, उन्हे इस आयोजनके लिए बधाई दी और यह सिद्ध कर दिया कि समारभमे यदि कोई सच्चा कला-प्रेमी है तो वे स्वय । इससे वे काफी प्रभावित हुए । आगे भी इस नीतिसे काम लिया जा सकता है । |

तुरन्तायई पर

१४

मर्जी !' कहते हुए ऊपर चले गये। जीनेमें उन्होंने चौकन्ने होकर एक बार चारो ओर देखा फिर ताला खोलकर फौरन कमरेको भीतरसे बन्द कर लिया। कमरा छोटा होते हुए भी सुरुचिपूर्ण ढगसे सजा था। एक ओर बेंतकी बुनी हुई लम्बी बेंच पडी थी। उसके ठीक सामने शीशमकी लकडीका एक सुन्दर रैक दीवारसे सटा हुआ रखा था। उसके छोटे-छोटे खानोंके ऊपर क्रमसे मुण्डन, कनछेदन, जनेऊ, तिलक, विवाह, कवि-सम्मेलन, हास्य-गोष्ठी, कथा-गोष्ठी तथा नाटक लिखा हुआ था। उन खानोंमें रग-बिरगे निमन्त्रण-पत्र दीवारोंपर सुन्दर सुन्दर फ्रेमोंमें जडे टँगे थे। कमरेके बीचोबीच एक मेज और उसके पास एक कुरसी रखी हुई थी। रामबाबू कुरसीपर बैठकर मेजपर रखे रजिस्टरके पन्ने उलटते हुए तीसवें पृष्ठपर रुक गये, जिसकी हूबहू नक़ल अगले पृष्ठपर है—

अपने विशेष सुझावोंकी दूरदर्शिता एव सफलतापर रामबाबू विजय-गर्वसे ऐसे मुसकराये जैसे सिकन्दर बन्दी पोरसको देखकर मुसकराया होगा। उन्होंने खूँटियोंपर टँगे सूट, अचकन और धोती-कुरतेकी ओर आलोचककी पैनी दृष्टिसे देखा और पूर्व-अनुभवोंके आधारपर धोती कुरतेको चुनकर, रुमालपर और कानोंके पीछे हिनाका इत्र लगाकर कहानी-सम्मेलनका आनन्द लेने चल दिये।

रामबाबूके सन्तुष्ट जीवनमें एक मात्र महत्त्वाकाक्षा थी किसी दिन मचपर बैठनेकी। किन्तु निरन्तर प्रयत्नशील होते हुए भी वे अबतक इस दिशामें सफल नही हो पाये थे। उस दिन कहानीकारोंकी भीड देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और यह सोचकर कि सम्भव है झपटमें उन्हें भी मच-पर बैठनेका अवसर मिल जाये, वे सीधे उसी ओर अग्रसर हो गये। उनका हृदय धक्-धक् कर रहा था फिर भी वे वीरतापूर्वक मुसकराते हुए आगे बढ रहे थे किन्तु जिस मुसकानके बलपर वे किला फतेह करने चले थे उसने उन्हें ऐन-मौकेपर दग़ा दे दी और मच तक पहुँचते-पहुँचते वे सकपकाये हुए सहमी-सहमी निगाहोंसे इधर उधर देखने लगे। उन्हे इस दशामें

## निमन्त्रण-पत्र रजिस्टर १९५७

| निमन्त्रणपत्र की तिथि | द्वारा | प्राप्ति-व्यय | आकार | अवसर | समय | विशेष सुझाव |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १-५-५७ | राम खिलावन दरीवाला | कुछ नही । केवल पण्डालकी मजावट मे योग देना पडा | (मौखिक) निमन्त्रण | सगीत-सम्मेलन | रात्रि दस बजे | सूट पहनकर गया था जो इस अवसरपर बिलकुल नही जमा, अगली बार अचकन ट्राई करूँगा । बहुत तिकडम लडानेपर भी मच तक पहुचनेकी नौबत नही आयी । |
| ५-२-५७ | कविवर मुखरेशजी | पान-सिगरेटपर साढे सात आना । अपने साथ चाय पिलायी और भोजन भी कराया। | ४'×६" छपाई सुन्दर । पत्र जडवाने योग्य है । | वसन्त पचमीके अवसरपर कवि-सम्मेलन | सायकाल आठ बजे | मुखरेशजी-द्वारा भविष्यमे भी निमन्त्रण-पत्र मिलते रहनेकी आशा है अत उन्हे चाय पिलाते रहना चाहिए, विशेषकर जाडेमे । किन्तु उनसे छुट्टीके दिन भेट करनेमे ही कुशल है अन्यथा नौकरीपर बात जानेकी आशका है क्योकि वे जब भी आते है, छह-सात घण्टेसे कम नही बैठते । पिछली बार उन्होने अपनी २२ कविताओ-का पाठ किया । उनपर रग जमानेके लिए मुझे भी कहीस दो-चार कविताएँ जुटानी होगी । |
| १६-३-५७ | जग्गूमलजी | चाय—तीन आना पान—दो आना | २"×४" | कहानी-सम्मेलन | सायकाल सात बजे | जग्गूमलजीकी उदारताकी भूरि-भूरि प्रशसा की, उन्हे इस आयोजनके लिए बधाई दी और यह सिद्ध कर दिया कि समारोहमे यदि कोई सच्चा कला-प्रेमी है तो वे स्वय । इससे वे काफी प्रभावित हुए । आगे भी इस नीतिसे काम लिया जा सकता है । |

पाकर एक प्रबन्धकर्ता महोदय फौरन उधर लपके और बोले—

'श्रीमान्, क्या आप भी आमन्त्रित कहानीकारोंमें हैं ?'

'जी ?...जी नहीं मैं तो एक प्रबुद्ध श्रोता मात्र हूँ !'

अपने वाक्चातुर्यपर प्रसन्न होकर रामबाबूने मंचपर पहुँचनेके लिए बनी सीढ़ीपर पैर रखा ही था कि प्रबन्धक महोदय उन्हें रोकते हुए कहने लगे—

'आप कैसे भी श्रोता हों, कृपया मंचपर मत जाइए। यहाँ नीचे बैठिए।'

'क्यों जनाब, आप कौन होते हैं मुझे रोकनेवाले ? मैं मंचपर क्यों नहीं बैठ सकता ?' रामबाबूने धमकाते हुए पूछा।

'आप भी विचित्र व्यक्ति हैं ! अरे भाई साहब, कह तो रहा हूँ कि वहाँ केवल लेखकगण ही बैठ सकते हैं। आपके कौन-से सुरखाबके पर लगे हैं जो वहाँ चढ़कर बैठेंगे ?'

रामबाबू खिन्न होकर श्रोताओंमें बैठ तो गये किन्तु सुरखाबके परोंको लेकर उनके मनमें हलचल-सी मच गयी। बार-बार वे सोचने लगे कि जैसे भी हो, कहीं-न-कहींसे सुरखाबके पर अवश्य हथियाने चाहिए। इस रात घर लौटनेपर उन्होंने अपने रजिस्टरमें लिखा—

'सुरखाबके पर ही सफलताकी कुंजी हैं। उन्हें प्राप्त करना आजसे मेरे जीवनका एकमात्र ध्येय होगा।'

उनके इने-गिने मित्र जब उन परोंके प्राप्ति-स्थलपर प्रकाश न डाल सके तो वे अपनी बुद्धिका सहारा ले, शनिवारकी शामको दफ्तरसे लौटते समय सीधे हैटवालेकी दूकानपर जाकर बोले—

'देखिए, कुछ बढ़िया-बढ़िया हैट दिखाइए।'

दूकानदारने उनके सामने हैटका ढेर लगा दिया। रामबाबूने कुछ झुँझलाकर पूछा—

'आपसे कहा न कि बढ़िया हैट दिखाइए जिनमें कुछ पर-वर लगे

हो। ये सब तो बिलकुल बेकार हैं।'

दूकानदारने परवाले हैट भी दिखाये। इन्हें देखते ही रामबाबू खिल-कर बोले—

'अब आपने असली माल निकाला है। इनमें-से किसी हैटमें क्या सुरखाबके पर भी लगे हैं?'

दूकानदार अभी व्यवसायमें कच्चा था, बोला—

'यह सब तो हमें नहीं मालूम। जो माल है, वह आपके सामने है। देख लीजिए, अगर पसन्द हो तो बताइए।'

'पसन्दको तो सभी अच्छे हैं। लेकिन बात यह है कि मुझे एक खास तरहका हैट चाहिए—अच्छा, फिर किसी दिन फुरसतसे आकर देखूँगा, अभी जरा जल्दीमें हूँ' कहते हुए रामबाबू बाहर आ गये। उन्होंने सोचा कि अगर हैटमें सुरखाबके पर लगते होते तो दूकानदारको जरूर मालूम होता, लेकिन उसकी बातोंसे स्पष्ट है कि वह इस बारेमें कुछ नहीं जानता।

इस विषयपर पुनः गम्भीरतापूर्वक विचार करनेके बाद उन्हें ध्यान आया कि वैद्य लोग सोने, चाँदी, मोती आदि बहुत-सी चीजोंकी भस्म रोगियोंको देते रहते हैं। हो सकता है कि सुरखाबके परोंकी भस्म भी रखते हों और अगर भस्म उनके पास होगी तो पर भी जरूर मिल जायगे। यह सोचते-विचारते वे वैद्यराज भगवानदासके पास पहुँचे और उनके पास बैठे अन्य रोगियोंको देख उनके पास झुककर बोले—

'वैद्यजी, आपके पास सुरखाबके पर होंगे?'

वैद्यजीने अपनी अनुभवी दृष्टि उनपर टिकाते हुए पूछा—

'किसके लिए चाहिए बेटा? कौन रोग है तुम्हें?'

'जी रोग आग कुछ नहीं है। आप बता दीजिए कि वे पर आपके पास हैं या नहीं।'

वैद्यजीने लपककर उनकी नब्ज थाम ली और मुँह बनाकर बोले—

'मुझे भी यही सन्देह था। यह वायुके प्रकोपका लक्षण जान पड़ता

है। ऐसा पहले भी कभी हुआ है ?'

कैसा ?'

'यही जो घबड़ाना, अंय-बंय बकना '

'लेकिन मैं बिलकुल ठीक हूं, वैद्यजी।'

'बेटा, मुझसे हर रोगी यही कहता है। खैर मैं एक चटनी दे रहा हूं वह दिनमें तीन बार चाटना और एक चूर्ण दे रहा हूं उसकी पुड़िया प्रात और रात्रिमें सोनेसे पहले फांक लेना। दस-पांच दिनमे ठीक हो जाओगे चिन्ताकी कोई बात नही है।'

इस बार रामबाबूने गरम होकर कहा—

'आप व्यर्थकी बातें मत करिए। साफ-साफ बताइए कि पर आपके पास हैं या नहीं—आप क्या समझते हैं मैं दवा लेने आया हूं—मुझे पर चाहिए पर ?'

वैद्यजीके नेत्रोंमें करुणा झलकने लगी, उन्होंने सिर हिलाते हुए अन्य रोगियोंसे कहा—

'बेचारेकी अभी उम्र ही क्या है! रोग असाध्य जान पड़ता है!

फिर रामबाबूसे पूछने लगे 'कोई तुम्हारे साथ आया है ?'

रामबाबूने आग्नेय नेत्रोंसे वैद्यकी ओर घूरकर कहा, 'मूर्ख कहींका।' और वहांसे सीधे घर लौट गये।

इस घटनासे खिन्न होकर रामबाबूने कुछ दिन सुरखाबके परोंके बारेमें किसीसे कोई चर्चा नहीं की। किन्तु एक दिन अपने चिर-परिचित पान-वालेको, तरह-तरहकी चिड़ियोंके पिंजड़े उठाये हुए एक बहेलियेसे बात करते देख मानो उन्हें अपने प्रश्नका उत्तर मिल गया। उन्होंने अपनी चिर-वांछित वस्तुकी मांग बहेलियेके सामने दोहरा दी। बहेलिया नम्बरी काइयाँ था। झट कहने लगा—

'सरकार, एक सुरखाब क्या, दस सुरखाब आपके चरणोंमे लाकर डाल दूंगा लेकिन उसे पकड़ना बड़े जोखिमका काम है। घने जंगलमें जाना

पड़ेगा मालिक, फिर भी तय नहीं कि वह परिन्दा हाथ लग ही जाये। हां! किस्मत अच्छी हुई तो बात दूसरी है। यहाँ एक डिप्टी साहब रहते थे सरकार—अब तो उनकी बदली हो गयी—वे बड़े शौकीन थे सुरखावके परोंके। एक एक परका पचास-पचास गिन देते थे। बड़े दरियादिल थे सरकार भगवान् उन्हें खुश रखें। हाँ तो सरकारको कितने सुरखाब चाहिए ?'

दाम सुनकर रामबाबूके होश आख्ता हो गये। सकोचके साथ बोले, 'भई, मुझे पूरे सुरखाबका क्या करना है वस दो पर मिल जायें तो काफी है। मेरा काम चल जायेगा।'

बहेलिया बड़े एहसानके साथ चार दिन बाद पच्चीस रुपयोंके दो पर लानेकी बात पक्की करके चला गया और रामबाबू गद्‌गद होकर मचके सपने देखने लगे।

चौथे दिन बहेलियेने पर उनके हवाले किये। क्योंकि इस दिशामें राम-बाबूने 'अथारटी' मान चुके थे इसलिए उन्होंने बिना किसी शंकाके उन परोंको सुरखावका मान लिया। उस अमूल्य निधिको पाकर उन्हें ऐसा लग रहा था मानो वे उनके सहारे ऊपर उड़ते चले जा रहे हों और धरतीके अभागे प्राणी मुँह बाये, आश्चर्यचकित-से टुकुर-टुकुर उन्हें ताक रहे हों।

सौभाग्यसे प्रथम चैत्रको नव-वर्षोत्सवके उपलक्ष्यमें एक विराट् कवि-सम्मेलनका आयोजन हुआ और कविवर मुसरेशजीको घेर घारकर राम-बाबूने निमन्त्रण-पत्र भी हथिया लिया। खूब सज सँवरकर, कोटके बटन होलमें दोनों पर खोंस, हाथमें गुलाबका फूल लिये वे पण्डालमें जा पहुँचे। कार्यक्रम आरम्भ हो चुका था। रामबाबू तीरकी तरह सीधे मचकी ओर बढ़ चले। एक सज्जनने मचके पास उन्हें रोककर विनम्र स्वरमें पूछा—

क्या आप भी आजके कार्यक्रममें भाग ले रहे हैं ?

'नहीं' रामबाबूने आगे बढ़ते हुए निहायत बेरुखीके साथ जवाब दिया।

'तो'''सुनिए 'आप इधर पीछेकी ओर बैठ जाइए''' चलिए मैं जगह दिलवा दूँ।'

'कोई जरूरत नही है, आप कष्ट न करें। हम मचपर ही बैठेंगे' रामबाबूने अकडकर कहा।

'लेकिन वहाँ तो केवल कविगणोके बैठनेका प्रबन्ध है' उक्त सज्जनने प्रार्थना की।

'होगा। इससे मुझे क्या ? आप अपना काम देखिए, बेकार बकवास मत करिए।'

वे सज्जन भी कुछ गरम होकर बोले, 'वाह साहब! आप तो ऐसे बढ-बढकर बोल रहे है जैसे सुरखावके पर लगाकर आये है कि मंचपर जा बैठेंगे।'

अब रामबाबूसे सहन न हो सका और वे चिल्लाकर काटपर लगे परोकी ओर सकेत करते हुए बोले, 'ये सुरखावके पर नही तो क्या है ? अन्धे है आप ? दिखाई नही पडता ?'

और जबतक वे सज्जन परिस्थिति समझें-समझे रामबाबू उचककर मचपर जा बैठे और विजय गर्वके साथ मुसकराते हुए कवि-गण तथा श्रोता-वर्गकी ओर घूम-घूमकर देखने लगे।

•

सैयद शफ़ीउद्दीन

## बक़ौल

एक ( मित्र ) समीक्षक :

"  मानना पड़ेगा कि, 'ईश' आजके प्रयोगवादी कवियोंसे दो क़दम आगे है—

"अ जो लिखा है, अजीबो ग़रीब टेकनीकको अपनाकर। [ जिसे देखकर लाज़िमी है बड़ो-बड़ोके मुँहका खुला रह जाना  और कुछ क्षणोंके लिए दिमाग़में इस तरहके खयालातका मँडरा जाना, कि आसमान ऊपर है या जमीन, अथवा सूरज डूब गया और दिन नहीं निकला ? ?   ]

"व विचित्रताकी धुरीपर आधारित और नयेपनकी इस्त्री-तले प्रेस किये होनेके बावजूद उनकी कविताओंमे छायावादी खुशबूका मिश्रण होता है—यानी बहुत कुछके अलावा उनमे 'कुछ' ऐसा भी है जो बहुत नाजुक, बहुत प्रिय, बहुत मधुर होता है, जो अन्यत्र नही मिलता सिर खपानेपर भी।

उदाहरण देखिए [ 'कोपलें' का ]—

"अभी फूटी
कोई बात नही
अनाद स्थानापन्न है
—सुहानापन ही
किन्तु भ्रम है—अमर है भ्रम
रेत के कण भी चमकते है

किन्तु रेत
( इतिहासके पन्ने देखिए ! )
सहारा 'होना' है,
जो नही होता
अस्तु,
टिके कब तक
खिलेका खिला रहना ..."

"है कही ऐसा अनबूझ आइडिया, है कही ऐसी नजाकत, कोमलता, प्रवाह ? !"

## चाचा 'ग़ुरबत', चायवाले :

कोई एक—"चचा, बड़ा ऐंठू खाँ बना फिरता है !"

कोई दूसरा—"मत कहिए साहब, दिमागकी तो कोई थाह ही नही मिलती ! शायरीकी दुम क्या हिलाने लगा, समझता है, कि दुनिया बेवकूफ है, और सारी अक्लका पिटारा बेटाके पट्टोंमे छिपा है। ..."

चचा 'ग़ुरबत'—"कोई बात नही यारो, 'अपना' ही है !"

## भाभी :

"तुम्हारे-जैसा गैर-जिम्मेदार आदमी तो मैंने आज तक नही देखा ! यह दिन-भर ऊल-जलूल लिखते और फाडते रहनके आखिर क्या मानी ? शादी हो जाती, तो अभी चार बच्चोके बाप होते, मगर इतनी भी अक्ल नही कि आदमीको अपने पैरोंपर खडे होनेकी कोशिश करनी चाहिए। 'भइया' का कोट पहन लिया, 'भइया' का पतलून डाट लिया, चवन्नीका सौदा लाये, तो अधन्ना काटकर सिगरेट पी लिया ... लानत है !

## ज़िला सीतापुर, ज़िला कलकत्ता और मुल्क रूसकी तीन पाठिकाएँ :

नम्बर एक—

"आदरणीय श्रीमान् 'डैश' जी,

सादर प्रणाम। आपकी कविताएँ अकसर पत्र-पत्रिकाओंमे पढनेको मिलती है। अच्छा लिख रहे है। मेरी शुभ कामनाएँ।

भवदीया

फूलवती 'फूल' "

[ पत्रकी दूसरी बगल—

"कविताएँ तुम्हे पसन्द आयी, धन्यवाद। पर यह 'आदरणीय' और 'श्रीमान्' के क्या मानी, प्रिये ?

—'डैश' " ]

नम्बर दो—

"महोदय,

आपकी कविता-कलाकी मै क़ायल हूँ। बहुत ही प्रशमनीय ढग है बातोको कहनेका। और क्या लिख रहे है ?

आपकी, [ पत्र अँगरेजीमे था ]

'प्रेरणा' "

[ हाशियेमें—

"तुम्हारी चिट्ठीकी खुशबूको सूँघता हूँ, मुहब्बतमे तडपता हूँ और अनदेखी पलकोकी तसवीर खीच रहा हूँ।" ]

नम्बर तीन—

प्रिय बन्धु,

कविता-सग्रह मिला, पढा। निराशा हुई—कुछ समझ न सकी।

आपकी,

विमला हॉव"

[ लिफाफेपर—

'मूक जो हो, तो

व्यथाका कारण
दूरियाँ अकमर
समझ नहीं पाती।

—'डैश'—' ]

**एक सम्पादक :**

'जी नहीं, हमारे यहाँ पारिश्रमिककी व्यवस्था नही।'

**झब्बू मास्टर, 'अलबत टेलरिंग शॉप' :**

सीना—२७ इंच
कमर—२४ ,,
गर्दन—९¾ ,,
..
... ..

तैयार देनेकी तिथि—१५
[ दिया गया २९ का। ]

**...का भगिन :**

'देखो बाबू, हम नीच कौम हुए तो क्या, इज्जत हमें भी पियारी है। अबकी-से आँखें मटकायी, तो ठीक नही खायेगा।'

[ इस डरसे, कि रसोईमें तरकारी काटती हुई भाभी न सुन ले, हाथ जोडकर माफी माँग लेना। ]

**शंकाएँ और समाधान :**

'[ सच तो यह कि शंकाका समाधान हो ही नही सकता, क्योंकि जिसे एक समाधान समझे, वह औरके लिए कोई समस्या हो—और मेरी शंकाएँ चूँकि व्यक्तिगत नही। ]

'प्यार ?'

—'सीढियाँ। यह बात और, कि कही कुतुबमीनार-से चक्कर हो, तो कही काशीके घाटो-सा पातालमे धँसाव और कही 'आई० आई० ए०'-सी तडक भडक, कि—

'भर्र-----

'क्या हुआ ?'

'जहाज उड गया, धूल उड रही है।'

'बादे ?'

'—इइया बादल।'

'एक आम ट्रेजेडी ?'

'—१ ९, यानी बहुत दूर तक सफलता रही, पर एक ऐसी कगार है, जो नहीं छुल पाती, नही छुल पाती—अस्थायी है बाढका पानी '

'आस्था क्या है ? क्यो है ?'

'—बचपन'

'क्यो, कि कुछ जानना शेष रहता है। ['मेक-अपका सेन्स समझना जरूरी है।' ]

'नवीनता ?'

'—दुनिया इतनी पुरानी है [घिसी हुई !], कि कुछ भी नवीन नही।

'किन्तु जो कहते हैं ?'

'उन्हे धोखा दिया जाता है।'

क्लब 'रेडरोज' मे ऐडमोशनकी अनुभूति :

'नेम प्लीज ?'

'हंश !'

'हंश ?'

'जी हाँ हंश !'

'फुलस्टाप नही ?'

'नहीं। आप प्रजेण्टमें चल रही हैं या फ्यूचरमें ?।'
धीमी-सी खिलखिलाहट ।
दिल है, कि भमम, भसम, भसम
'काम ?'
'काव्य-रचना ।'
'यह कौन-सा डिपार्ट है ?'
'झखनेका ।'
'बी सीरियस प्लीज़ ! किस डिपार्टमें काम करते हैं ?'
'काव्य-रचना डिपार्ट नहीं ।'
'फर्म है ?'
'जी नहीं ।'
'दूकान है ?'
'जी नहीं ।'
'तब क्या है !' सिनेमा-गेटकीपरका ट्रान्सलेशन ?।'
'नहीं । वर्स-राइटिंग !'
'ओ...ह ! तो यूँ कहिए वर्स-राइटिंग ! पोएट हैं !' खूब
बहुत खूब !'
'क्या मतलब ?'
'मतलब, कि शक्ल भी है !'
'शुक्रिया ।'
वही धीमी-धीमी-सी खिलखिलाहट ।
कान हैं, कि बज रहे हैं—झाँय, झाँय, झाँय
'ऐडरेस ?'
'५०, रहनुमा बिल्डिंग, लालगंज ।'
क्या हसीन उँगलियाँ हैं, क्या हसीन अक्षर—५०—रहनुमा—
बिल्डिंग

'क्या यह ठीक है ?'

'क्या ?'

'जो मैंने सुना है।'

'क्या ?'

'कि वह डैश·· '

'बस-बस भटनागर बाबू  ह ह-ह, खूब  ! वह डैश · हि-हि-हि · फ़ुलस्टाप, कामा, सिल्ली  ! ह-ह-ह ··

और होटल 'डि-बर्जिन'का कमरा नम्बर २७०--

'ह-ह-ह  भटनागर बाबू  ह-ह-ह···'

और कागजी सरसराहट--

'खूब ! भटनागर बाबू···हि-हि हि···'

और शीशेकी टुनक—

हि-हि-हि ·ह-ह-ह '

'हो-हो-हो · '

( चटाख़ ! )

एक चिट--

'Explain Mr Poet

What is O ?

Z-E-R-O ?

Z-E-R-O ?'

यों हो ( जख्मकी गहराई ? )

पिनकी हकीमजी--'म्याँ, कुछ उखड़े-उखड़े दिख रहे हो, सब खैर-सल्ला तो है न ?'

'बस दुआ है, जरा मौसमकी तब्दीलीकी वजहसे '

●

# सम्पादकके नाम एक पत्र

[ है भी और नहीं भी ]

महाशय,

विश्वास कीजिए, यह मेरा प्रथम पत्र है जो मैं किसी अखबारके सम्पादकके नाम लिख रहा हूँ। यह नही कि पत्र लिखना ही नही या कि मुझे पत्र लिखना अच्छा नही लगता। पत्र-व्यवहारमे दफ्तरी दृष्टिकोण रखनेपर भी मै उपयुक्त वर्गके पत्र नही लिख सका और आज जो इस प्रकार पत्र मै लिखने जा रहा हूँ, क्रियाकी दृष्टिसे जिसे मैंने प्रारम्भ कर दिया है, इसका एक विशिष्ट कारण है।

अबतक सामान्य पत्र साहित्यको ( अँगरेज़ीमे कीट्स अथवा लॉरेन्सके पत्र, हिन्दीमे महावीर प्रसाद द्विवेदी अथवा पद्मसिंह शर्माके पत्र ) व्यापक साहित्यका अभिन्न अग माना जाता था। पर अब मै देख रहा हूँ कि इस प्रकारके पत्र साहित्यसे प्राय सर्वथा भिन्न सम्पादकके नाम लिखे गये पत्रों-का साहित्य है। यहाँ शिवशम्भु अथवा विजयानन्द दुबेके छद्म नामसे लिखे गये पत्रों अथवा चिट्ठोंको हमे अलग कर देना होगा। सम्पादकके नाम पत्र उस शृंखलाकी अन्तिम कड़ी है 'जो नहीं छपेंगे' शीर्षकके अन्तर्गत नामोल्लेखन प्रारम्भ होती है।

आज युगका सबसे बड़ा जादूगर कदाचित्, उसका कम्पोजीटर है और इसीलिए मानव-जीवनका सबसे बड़ा लक्ष्य आज अपने नामको 'अधिकसे अधिक बार तथा बड़ेसे बड़े टाइपमें' ( तुल० 'द ग्रेटेस्ट गुड ऑव द ग्रेटेस्ट नम्बर' ) मुद्रित हो गया है। सम्पादकके नाम पत्र इस दिशामे

प्रारम्भका अन्त ( End of the beginning ) है, जिसे आजके प्रजातन्त्र युगने अत्यन्त व्यापक बना दिया है।

सम्पादकके नाम पत्र सचमुच प्रजातन्त्रके जेठ बेटोंमें-से एक है। 'मुहल्लेका नाला साफ़ नहीं किया जाता'से लेकर 'एटम बम मुझसे पूछ कर क्यों नहीं बनाया जाता' तक इस विशिष्ट कॉलमका क्षेत्र-विस्तार है। कभी-कभी इस कॉलमके माध्यमसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वाद-विवाद भी सम्पन्न होते हैं, जिनके द्वारा पाठकोंको विषयकी जानकारी चाहे न भी हो पर नामोंकी जानकारी पूरी हो जाती है।

ब्रिटिश प्रजातन्त्रके विकासमें वहाँके सम्पादकके नाम पत्र साहित्यका महत्त्वपूर्ण योग है। एक अमेरिकन पत्रकारके शब्दोंमें 'जैसे ब्रिटिश न्यायका मूल तत्त्व सामान्य क़ानून है और ब्रिटिश रन्धन-प्रणालीकी आधार-शिला उबाली हुई सब्ज़ी है, उसी प्रकार पत्रकारिताके क्षेत्रमें ब्रिटेनका विचित्र तथा महान् योगदान सम्पादकके नाम पत्र है।' यह बात मेरी मौलिक मान्यताके एकदम अनुकूल पड़ती है, कई दृष्टियोंसे यह सम्पादकके नाम पत्र शैली विशुद्ध रूपमें शौकिया है, प्रस्तुत बहुत की जाती है, उपकारार्थ है और निर्मूल है। यह पारिवारिक वातावरणकी एक निहायत आरामदेह अभिव्यक्ति प्रणाली है, जिसमें उस अनौपचारिक लेखन-शैलीका रूप देखनेको मिलता है, जो अँगरेजी लेखकोंकी अपनी निजी विशेषता है। सम्पादकके नाम पत्र लेखन-विधि अँगरेजी मनोवृत्तिमें विशेष रूपमें अनुकूल पड़ता है। पीढ़ियोंके अभ्यासके कारण यह साहित्य-रूप बहुत अधिक विकसित हो गया है, और अब विभिन्न रूपों तथा आकारोंमें प्राप्य है। एक जातीय नोट 'महाशय—इंग्लैण्डको गुणकी आवश्यकता है समानताकी नहीं। आपका विश्वास भाजन' से लेकर गम्भीरतम वाद विवाद तक जो वर्जित 'मेरीकी कैथोलिक धर्म व्यवस्थामें स्थिति' से सम्बन्ध हो सकता है और जो 'द स्पेक्टेटर' में सप्ताहों तक चर्चित रहता है। वस्तुतः अँगरेजी सम्पादकके नाम पत्रोंके विषय विशेष रूपसे आस्वाद्य हैं। उनके लेखक मेरी स्थापना

लॉर्ड एस्टर तक हो सकते है और विषय 'स्वेज क्राइसिस' से लेकर 'सरकस-का गोला ४२ फीटके व्यासका क्यो होता है' तक परिव्याप्त रहते है।

सामान्यत अँगरेजोके आधुनिक गद्य-साहित्यमें 'महाशय,—' पत्रोकी कला विशेष रूपसे तथा प्राय स्वतन्त्र कृतिपर विकसित हुई है। इस प्रसगमें प्रसिद्ध ग्रीक विद्वान् स्व० गिल्बर्ट मरेका यह पत्र उल्लेखनीय है, जो उन्होने छडीके घटते हुए प्रयोग तथा फैशनके सम्बन्धमें लिखा था—

'महाशय—क्या आपके पत्र व्यवहारी एक चीनी सन्त पुरुषके अँगरेजोके सम्बन्धमे प्रकट किये उस मन्तव्यको भूल गये हैं, कि उनमें-से भद्रसे भद्र पुरुष भी घूमनेके समय छडी लेकर चलते है ? उनका उद्देश्य क्या हो सकता है सिवा इसके कि वे निर्दोष व्यक्तियोको पीटें ?'

आपका इत्यादि इत्यादि

याटसकोम्ब बोअर्स हिल ऑक्सफोर्ड गिल्बर्ट मरे

हमारे यहाँ सम्पादकके नाम पत्रकी लेखन-कला अभीतक मुख्यत सोद्देश्य है। ऐसे पत्रोमे निजी स्वार्थकी भावनाएँ अवश्य ही उतनी प्रमुखता नही रहती जितनी कि जनताकी सेवा-भावना प्रधान रहती है। सुना है कि गाजीपुर तथा कानपुरके दो सम्भ्रान्त नागरिक अपने सम्पादकके नाम पत्रोका सकलन पुस्तकाकार प्रकाशित करा रहे है। पाठकोकी सुविधाकी दृष्टिसे उसमे वर्गीकृत विषय सूची तथा नामानुक्रमणिका यथास्थान रहेगी। एक प्रस्तावित सकलनकी विषय-सूची देखी गयी है—'अण्डोके मूल्य' से प्रारम्भ होती है तथा 'सम्यक् ज्ञानकी सम्भावना ?' पर समाप्त होती है।

हिन्दी साहित्यके सन्दर्भमे कुछ नये लेखकोके 'कैरियर' बनानेमे महाशय, पत्रोने विशेष योगदान दिया है। इतिहासकार ऐसे लेखकोको विशेष सम्मानपूर्वक देखेंगे जो किसी पत्र-विशेषमे पहले सम्पादकके नाम पत्र लिख-लिखकर अन्तत उस पत्र अथवा पत्रिकाके लेखक होकर ही रहे। पर जैसा मैने कहा, यह तो महाशय —पत्रोकी सोद्देश्य प्रणाली है। आशा करता हूँ कि विकासकी अगली अवस्थाम सम्पादकके नाम पत्रके लिए पत्र-

शैलीका अनुसरण होगा और तब इस साहित्य रूप तथा विशेष कलाका समुचित विकास हो सकेगा। हमारी हिन्दीमें पेशेवर सम्पादकके नाम पत्र लिखनेवालोंकी बड़ी कमी है। बिना उसके साहित्यकी समृद्धि खतरेमें है। इस कलाकी उन्नतिके लिए सम्पादकोंको सपारिश्रमिक पत्र छापने चाहिए। आशा है आप सहमत होंगे।

आपका, इत्यादि इत्यादि

चक्रराचार्य

[ आजके बहुत-से हिन्दी लेखक और सम्पादक अँगरेजी ज्ञानको दर्शाना बड़ा बुरा समझते हैं। इस पत्रमें जितना अँगरेजीका हवाला है, उसे यदि वे न पढ़ें तो भी मेरी बात उनकी समझमें आ जायेगी। शुभमस्तु। ]

●

केशवचन्द्र वर्मा

# मीरा प्रगतिशील कवयित्री

अगर हिन्दी भाषाका एक ढाँचा बनाया जाये (जैसा प्राय हाईजीनकी किताबोंमे ढाँचा दिखाई देता है) तो दिलकी जगह मीराबाईको रखना पड़ेगा ताकि ढाँचा धड़क भी सके। मीराने हिन्दी भाषाका साहित्य लायक बनानेके लिए उतना ही काम किया है जितना एक माँ अपने नालायक बेटेके लिए करती है। आज जब हिन्दी भाषाके साहित्यकारोंका पुनर्मूल्यांकन हो रहा है तब इस बातकी जरूरत महसूस की जाती है कि जिस प्रकार अन्य कवियोंको उनकी गद्दी दी जा रही है, मीराबाईको भी उचित बैठकी दी जाये। मीराबाईका साहित्य बहुतोंने देखा-भाला है लेकिन फिर भी आजकी सामाजिक सापेक्षता और प्रगतिशील तत्त्वोंको ध्यानमें रखते हुए किसीने भी उसपर कलम न उठायी, सो मैं करता हूँ।

## पूर्वाभास

मीराके बचपनसे ही उसके जीवनमें एक असन्तोषकी भावना जाग्रत हो गयी थी। मीरा एक सामन्तवादी वातावरणमें पलकर भी जनजीवनके प्रति आकर्षित हो गयी थी और उसे सबके साथ उठने बैठने, खेलने कूदनेमें मजा आता था। मीराने तय कर लिया था कि वह विवाह नहीं करेगी। यहीं हमें उसके भीतरका नारी-विद्रोह जो कि रूढ़िग्रस्त परम्पराओंका विरोधी था, स्पष्ट देखनेको मिलता है। वह अपनी जनवादी विचारधाराको किसी भी जड़तासे बाँधना नहीं चाहती थी। महलोंकी फ्यूडल सम्पदा उसके लिए खास अहमियत नहीं रखती थी। उसके विचार निश्चय ही भौतिकवादी रहे होंगे।

## 'सन्तन' पार्टीका विकास और मीरापर प्रभाव

उन दिनो विश्वमे सन्तन आन्दोलन चल पडा था और भारतमे भी इस पार्टीका विकासक्रम स्पष्ट दिखाई पडता है। ऐतिहासिक तथ्योसे पता लगता है कि कोई 'सेण्ट-एन' साहब थे, जिनके नामपर इस 'सन्तन' पार्टीका अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन चल पडा था। जनवादी सन्तन पार्टी सदैव साम्राज्य-वादी तथा सामन्तवादी शक्तियोसे दुर्धर सघर्ष करती रही। भारतके अनेक विचारक और कवि जिनमें सूरदास, तुलसीदास और कबीरदास भी थे, इसी सन्तन पार्टीकी विचारधारासे प्रभावित थे और अपनी कृतियोमे प्राय इस पार्टीका उल्लेख किया करते थे। राजस्थानमें सामन्तवादी रजवाडोका जोर था अत सन्तन पार्टीने अपना एक जोरदार नेता खडा करनेकी बात सोची। पार्टीका सगठन इतने आश्चर्यजनक रूपसे सफल था कि उसने उदयपुरके राणाकी महारानी मीराबाईको ही अपनी जननायिका बनाया और उसीके नेतृत्वमें सामन्तवादी सस्कृतिका विनाश प्रारम्भ हुआ। पतनोन्मुख सामन्त-वादी सस्कृतिके गिरनेमे मीराको पूरा विश्वास था अत मीराने सन्तनपार्टी-का सदस्य होना स्वीकार किया और इस तरह जनसघर्षमे पहला मोहरा पीट लिया गया। बताते है कि हिमालयके उस पारसे कोई प्रसिद्ध योगी साधक जो इस सन्तन पार्टीके हर पहलूसे वाकिफ था, भारत आया था, और उसने मीराको पार्टी कॉमरेड बनानेमें बडी भारी सहायता की थी। मीरा उसे अपना गुरु मानती थी और वह जब पार्टीका सगठन कर वापस जाने लगा तो मीराने उसकी विदाईमे सहभोजके अवसरपर जो कविता पढी थी उसका पाठ हमें यो मिलता है—

> "मत जा, मत जा, मत जा जोगी
> पांव पडूं मै तेरे जोगी ॥ मत जा ॥
> अगर चन्दन की चिता बनाऊं
> अपने ही हाथ जला जा
> अपनी ही गैल बता जा ॥ जोगी ॥"

सन्तन पार्टी होते-करते बहुत मजबूत हो गयी। ऐतिहासिक व्याख्या बताती है कि आगे भी सतनामी विद्रोह और बंकिम बाबूके आनन्दमठमें जिन विद्रोहियोंका उल्लेख मिलता है, हो सकता है कि वह सन्तन पार्टी-की परम्परामें रहे हों।

## मीराका साम्राज्यवाद और सामन्तवादसे संघर्ष

मीराको स्पष्ट दिखाई पड रहा था कि अगर उसने सन्तन पार्टीके साथ सहयोग नहीं किया तो भारतमें शीघ्र ही मुगल बादशाह अपनी साम्राज्यवादी चालोंसे इन छोटे-छोटे रजवाडोंको अपने वशमें कर लेगा और इस प्रकार सर्वहारा वर्गके नाशका अध्याय प्रारम्भ हो जायेगा। मीराने अपने कार्यक्षेत्रको अध्यात्मवादी रंग दिया लेकिन वस्तुतः उसका 'एप्रोच' बहुत ही पदार्थवादी रहा। रूढिवादी परम्परा तथा नारीके सीमित क्षेत्रको छोड-कर वह जनताके बीच आ खडी हुई, उसने पीडित जनताके दुःखको पहचाना।

"भाई छोड्या, बन्धु छोड्या, छोड्या जगसोई।
मीरा अब लगन लागि होनी हो सो होई॥"

यहाँ यह तथ्य कितना उभरकर सामने आता है कि मीराने सबका विरोध करके वह आन्दोलन उठाया था और उसके पीछे वह इतनी दीवानी हो गयी थी कि आगे पीछे क्या होगा, इसकी उसे कोई चिन्ता नहीं रह गयी थी। मीराके सामने शासक और शासितका वर्ग-भेद बिल्कुल साफ था। वह यह जानती थी कि बिना वर्ग-संघर्षकी भावना पैदा किये हुए सन्तन पार्टीका भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता। पीडितों और शोषितोंकी बात समझनेके लिए स्वयं घायल बनना पडता था। यथा—

"घायल की गति घायल जाने कि जिन घायल होय।"

## मीराके कॉमरेड

जैसा कि पहले ही मैं कह चुका हूँ सन्तन पार्टी उस समय सारे अन्त-र्राष्ट्रीय क्षेत्र और विशेषकर भारतमें बहुत ही संगठित पार्टी थी। अनेक

कवि, विचारक और कलाकार पार्टी कम्यूनसे सम्बन्धित थे। इतिहासके पन्नामें मीराके कॉमरेडोंका जिक्र कहीं नहीं मिलता क्योंकि साम्राज्यवादी इतिहास लेखकोंने प्रोलेटेरियट वर्गके इन जननायकोंका नाम मिटा देना ही उचित समझा। तो भी मीराकी रचनाओंमें ही हमें इतने स्पष्ट ढंगसे इन कॉमरेडोंका उल्लेख मिल जाता है कि इसी अन्त साक्ष्यके बलपर हम अपनी बात खड़ी कर सकते हैं—

"जोगी आये जोग करन को तप करने सन्यासी।
हरीभजन को साधू आये वृन्दावन के वासी॥"

सन्तन पार्टीके इस देशव्यापी आन्दोलनके फलस्वरूप सभी स्थानके लोग इसमें सक्रिय सहयोग दे रहे थे। पता चला है कि जोगकरन नामक एक पंजाबी जाट था जो इस सन्तन पार्टीका एक प्रमुख कार्यकर्ता था। हिमालय पारसे जो जोगी आये थे उनके साथ ही यह व्यक्ति आता जाता रहता था। तपकर्णे नामक एक महाराष्ट्र व्यक्ति भी सन्तन पार्टीका नायक था। तपकर्णे एक विशिष्ट जाति हुआ करती थी।* तपकर्णोंका पार्टीपर बहुत गहरा प्रभाव था। कुछ विचारकोंने, जिनमें सूरदास भी एक थे, तपकर्णोंकी हरकतोंको नापसन्द किया था और बताते हैं कि उधोके रूपमें उन्होंने गोपिकाओंसे तपकर्णोंका ही मजाक बनवाया था। तुलसीदास भी तपकर्णोंको बहुत पसन्द नहीं करते थे फिर भी इन्होंने इसका उपहास नहीं किया। तीसरा और सबसे प्रमुख व्यक्ति था हरिभजन, जो अपने नामसे ही पता देता है कि वह उत्तर प्रदेशके गोरखपुर जिलेका रहनेवाला था। हो सकता है कि सन्तन पार्टीका सचेतक वही रहा हो क्योंकि प्रायः हर विद्वान् विचारक लेखक और कविने हरिभजनकी प्रशंसामें बहुत कुछ लिखा है। उन दिनों वृन्दावन सन्तन पार्टीका एक महान हेडक्वार्टर था और हरिभजन स्वयं अधिकतर वृन्दावनमें ही बसा करते थे। समकालीन

* दे०—भारतकी विभिन्न जातियाँ—( गुलगोंवकर )

साहित्यपर विचार करनेसे पता लगा है कि हरिभजनको इसी पार्टीके कामके लिए पकड़े जानेपर फाँसी हो गयी थी।

"अँखियाँ हरि दर्शन को प्यासी।
नेह लगाय, त्याग गे तृण सम,
डारि गये गल फाँसी॥"

इस प्रकार साम्राज्यवादी शक्तियोंने मीराके कॉमरेडोंको मीरासे अलग कर दिया।

## लोक-लॉजकी स्थापना

मीराने इस महान् आन्दोलनको सफल ढंगसे चलानेके लिए जो योजना बनायी उसमें पहली बात यह थी कि एक लोक-लॉजकी स्थापना की। बताया जा चुका है कि सन्तन पार्टीका आन्दोलन एक अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन था। अतः लॉज शब्द जिसे विदेशोंमें होटल या निवास-स्थान कहते हैं भारतमें प्रचलित हो गया। लॉज (Lodge) की स्थापनाके लिए मीराको राणाजीको बहुत ऊँच-नीच समझाना बुझाना पड़ा लेकिन अन्ततोगत्वा वह सफल रही। आज हमें अनेक होटलों और स्थानोंके नाम 'जनता होटल', 'जनता रेस्तराँ' 'जनता क्लब' आदि मिलते हैं लेकिन इसकी परम्परा मीराने ही शुरू की थी जब उसने अपने लॉजका नाम लोक-लॉज रखा। लोक-लॉज वास्तवमें सन्तन पार्टीका पार्टी-आफिस था। वहीं सब लोग इकट्ठा होते थे और महत्त्वपूर्ण निर्णय किये जाते थे। राणाकी दमननीति जब चली तो सबसे पहले उसने लोक-लॉजमें सरकारी ताला लगा दिया और पार्टी-आफिस छीन लिया गया। मीराने इसी बानीके साथ इसका उल्लेख किया है।

"सन्तन सग बैठ बैठ लोक-लॉज खोई।"

## राणाकी फासिस्ट प्रवृत्तियाँ

[illegible] जनताकी उठती हुई आवाजको दबा डालनेके लिए ऐसा

कुछ भी नहीं बचा, जो राणाने न किया हो। मन्दिर उड़वानेके लिए तोप चलानेसे लेकर मीरापर 'स्लो प्वाइजनिंग' (क्रमश विष देनेकी क्रिया) तकके टेकनीकका प्रयोग राणाने किया। नाजियोंकी तरह राणाकी निगाहों-में सन्तन पार्टीका हर सदस्य एक यहूदी हो उठा। उन्हें हर तरहसे दबानेके कुचक्र रचे गये। मीराको मारनेके लिए सर्प भेजा गया, विष दिया गया। लेकिन पार्टीने अपना भीतरी जाल महलके भीतर ऐसा फैला लिया था कि मीराके पास पहुँचते-पहुँचते वह चीज शालिग्रामकी बटिया या शर्बत बन जाती थी। इस प्रकार दैवी सहायताकी आड लेकर मीराको बचाया गया और इसका प्रभाव यह भी हुआ कि राणा मीराकी पार्टीसे डरने लगा।

## मीरा और गिरधर गोपाल

मीराका पार्टी-कार्य बिना गिरधर गोपालकी हरकतोंपर प्रकाश डाले हमेशा अधूरा हो रहेगा। मीराकी प्रत्येक रचनामें इस व्यक्तिका नाम इतने ढगसे आया है कि हर आलोचकने अपने ढगसे उसका मतलब समझनेकी कोशिश की है। जहाँतक अन्त साक्ष्य और बहि साक्ष्यका मेल खाता है तहाँ स्पष्ट पता चलता है कि गिरधर गोपाल नामका व्यक्ति अत्यन्त प्रभाव-शाली व्यक्तित्व रखता था और उसका भी देशव्यापी दौरा हुआ करता था। सन्तन पार्टीके अनेक लोगोंने गिरधर गोपालको जन-नायक माना है। गिरधर गोपाल हर जगह मौजूद रहता था और एक स्थानका समाचार दूसरी जगह पहुँचाया भी करता था। सम्भव है कि वह एक सवाददाता भी रहा हो। मीरा इस व्यक्तिकी प्रतिभासे बहुत अधिक प्रभावित थी और एक तरहसे यदि समझा जाये तो उसके प्रति उसकी बडी ममता-सी हो गयी थी। बताया जाता है कि आगे चलकर सहसा यह व्यक्ति पार्टीसे बिल्कुल अलग-सा हो गया और बहुत गैरजिम्मेदार तरीकेसे काम करने लगा। पार्टीसे हटकर उसकी तबीयत कलाकारिताकी ओर चली गयी और वह नाटक-नौटकीमें भाग लेने लगा। उसने अपनी पार्टीकी वेश-भूषा भी

बदल दी और वह मोर मुकुट पीताम्बर और वैजन्तीकी माला वगैरह पहनने लगा। उसके भीतर पतनोन्मुख सामन्तवादी जडताके अंश एकाएक आ बसे और वह पार्टीके दृष्टिकोणसे बिलकुल निकम्मा साबित हो गया। मीराकी ममता फिर भी उसपर बराबर बनी रही और यही कारण था कि बहुत से सज्जन पार्टीके सदस्य मीरासे प्रसन्न नहीं रहते। राणा गिरधर गोपालको पार्टीका प्रमुख कार्यकर्ता मानता ही था इसलिए एक बार उसने गिरधर गोपालका मोर मुकुट छिनवा लिया और महलमें जाकर सो गया—

"जाके सिर मोर मुकुट—मेरो पति सोई।"

अर्थात्—

जिसके सिरसे मुकुट (लेकर) मेरा पति सो गया (है) मीरा फिर भी बराबर यही कहती रही—

"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।
तात मात भ्रात बन्धु अपना न कोई॥"

गिरधर गोपालके प्रति मीराका यह दृष्टिकोण कभी भी सफल न हो सका और मीराके लाख प्रयत्न करनेपर भी जिम्मेदार तरीकेसे गिरधर-गोपाल पार्टीका काम दोबारा न चल सका। गिरधर गोपाल वृन्दावन जाकर रहने लगा और मीराको भी अपने अन्तिम दिनोंमें उसीके हित वृन्दावन जाना पड़ा। यूँ मीरामें व्यक्तिपरक तत्त्व इतना नहीं था लेकिन सभी [illegible] अपवाद तो होते हैं।

## मन्दिर मूवमेण्ट और सशस्त्र क्रान्ति

मीराको ऐसा लगा कि इनका आन्दोलन अब अधिक दिन इन [illegible] नहीं निभा पायेगा। मीराके कई [illegible] हो गये थे। इसलिए तो एक अलग पार्टी बनानेकी भी [illegible]। [illegible] मन मोहन के [illegible] था। 'हे,कृ-

लाज' पर सरकारी ताला पड चुका था। ऐसी हालतमें मीराके सामने बिलकुल अन्धकार था। लेकिन उसने अपनी हिम्मत नही हारी। उसने भारतमें मन्दिर मूवमेण्ट प्रारम्भ किया। मन्दिरके बहुत-से अर्थ आलोचकोने किये है लेकिन वस्तुत वह मन्दिर एक भवनका, एक सस्थाका प्रतीक था। भारतकी जनताको यह मन्दिर मूवमेण्ट बहुत सरलतासे ग्राह्य हुआ। मीराकी सूझ बडी पैनी थी और उसने सोच लिया था कि इस मूवमेण्टसे वह आसानीके साथ सभी कार्यकर्ताओ और विचारकोका सहयोग प्राप्त कर सकेगी। सो वही हुआ। भारतके हर भागमें इस मूवमेण्टको प्रोत्साहन मिला। सन्तन पार्टीके सदस्य एक बार पुन सक्रिय हो उठे। साम्राज्यवादियोकी ओरसे ऐसी चाल चली जा रही थी कि उस समय धार्मिक सहिष्णुताका प्रचार किया जा रहा था। लेनिनकी जीवनी-लेखिका प्रसिद्ध जर्मन क्लेरा जेटकिनने लिखा है कि लेनिनका भी मत था कि पार्टीका काम सिनाकारो और लेखकोके बीचमे छिपकर करना चाहिए। (जिसके अनुसार शान्ति-सम्मेलनका कार्यक्रम चल रहा है।) मीराने भी वहा 'टैक्टिक्स' अख्तियार किया। इस मन्दिर मूवमेण्टके द्वारा मीराने सशस्त्र क्रान्ति करके प्रोलेटेरियट राज्य कायम करना चाहा। सन्तन पार्टीने अण्डरग्राउण्ड काम करना शुरू कर दिया। इसके लिए सन्तन पार्टीने बहुत ही आधुनिक टेकनीक इस्तेमाल की। पार्टीने रणछोडजीकी उपासना शुरू की और विष्णुके अनेक आयुधोकी अर्चना मन्दिरमें एकत्र होकर करना प्रारम्भ कर दिया। घण्टे ऐसे बनवाये गये जैसे स्कूलोमें बजानेके लिए रखे जाते है और उन्हें पीटनेके लिए लोहेकी डेढ मनकी गदाएँ बनवायी गयी थी। (मेरा विश्वास है कि आगेके इतिहासकार इस तथ्यको प्रमाणित कर देंगे।) लम्बी लम्बी पांच फीटकी बांसुरियां बनवायी गयी जो बांसुरीका काम कम, लाठीका काम अधिक देती थी। झांझ और करताल भी लोहे और पीतलके बनवाये गये जो वजनमें इतने भारी थे कि अगर किसीके सिरपर पड जाते तो चकनाचूर कर देते। मीराने इस मूवमेण्टका सगठन इतना अच्छा किया था

कि लोग प्राय सन्ध्या समय इकट्ठा हो जाया करते थे और मीरा आसानीसे फासिस्ट-विरोधी नीतियोका प्रतिपादन किया करती थी। यूं ये लोग आधी रातको अपने पार्टी लीडरसे मिलकर सलाह-मशविरा भी किया करते थे—

'आधी रात प्रभु दर्शन दीन्हो प्रेम नदी के तीरा।'

इसके पहले कि इस आन्दोलनकी एक विशाल प्रतिक्रिया हो सकती राणाके फासिस्ट गुर्गोने इसका पता लगा लिया क्योंकि सन्तन पार्टीके कुछ लोग फूट गये थे और नतीजा यह हुआ कि सन्तन पार्टीके सभी आयुध जो पूजाके कामसे रखे गये थे जब्त कर लिये गये। खुफिया पुलिस हाथ धोकर पीछे पड गयी। सन्तन पार्टीका यह आन्दोलन भी विफल हुआ।

## मीरा : क्रान्तिकी मूर्ति और जननायिका

मीराके प्रयत्नोका आकलन करनेवालोने यही समझा कि मीराके आन्दोलन विफल रहे लेकिन बात ऐसी नही है। भले ही दुर्धर पाशविक फासिस्ट शक्तियोने साम्राज्यवादियोसे हाथ मिलाकर जनताकी उठती हुई वाणी को उस समय दबा दिया हो लेकिन वह आवाज मर नही सकी। मीराकी वाणी जनवाणी बनी। मीरा क्रान्तिकी देवी बनी। मीरापर लाछन लगाया जाता रहा है कि वह प्रतिक्रियावादी आध्यात्मिक शक्तियोको प्रोत्साहित करती रही लेकिन वह ठोस भौतिक उपादानोको लेकर जनताको आन्दोलित करती रही। वह [illegible]वादी चिन्तनको तोडकर पदार्थवादी [illegible] [illegible]को सामने लायी। मीराने बुर्जुआ मनोवृत्तिको [illegible] दिया [illegible] उसने [illegible]-विद्रोह सामाजिक क्रान्ति और प्रजा-[illegible] [illegible] करनेकी पूरी [illegible] की। फासिस्ट एव सामन्तवादी [illegible], जो [illegible] [illegible] जनता को [illegible] चाहते थे, मुँहकी खानी

पड़ी। उसने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शनका मूल रूप अपनी कार्यनीतिके रूपमें स्वीकार किया था। सामाजिक परिस्थितियोंका जैसा डटकर मुक़ाबला मीराने किया था, वह इतिहास, किसी भी प्रगतिशील लेखकके लिए लेनिनके भाषणोंसे बड़ी धरोहर बन सकता है।

●